प्रकाशकीय

साधुमार्गी जैन परम्परा मे महान् क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा की पाट–परम्परा मे षष्ठ युगप्रधान आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा विश्व–विभूतियो मे एक उच्चकोटि की विभूति थे अपने युग के क्रातदर्शी सत्यनिष्ठ तपोपूत सत थे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन वैराग्य से ओत–प्रोत साधुत्व प्रतिभा–सम्पन्न वक्तृत्वशक्ति एव भक्तियोग से समन्वित व्यक्तित्व स्व–पर–कल्याणकर था।

आचार्यश्री का चिन्तन सार्वजनिक सार्वभौम और मानव मात्र के लिए उपादेय था। उन्होने जो कुछ कहा वह तत्काल के लिए नही अपितु सर्वकाल के लिए प्रेरणापुज बन गया। उन्होने व्यक्ति समाज ग्राम नगर एव राष्ट्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए अनेक ऐसे तत्त्वो को उजागर किया जो प्रत्येक मानव के लिए आकाशदीप की भाँति दिशाबोधक बन गये।

आचार्यश्री के अन्तरग मे मानवता का सागर लहरा रहा था। उन्होने मानवोचित जीवनयापन का सम्यक धरातल प्रस्तुत कर कर्तव्यबुद्धि को जाग्रत करने का सम्यक प्रयास अपने प्रेरणादायी उद्‌बोधनो के माध्यम से किया।

आगम के अनमोल रहस्यो को सरल भाषा मे आबद्ध कर जन–जन तक जिनेश्वर देवो की वाणी को पहुचाने का भगीरथ प्रयत्न किया। साथ ही, प्रेरणादायी दिव्य महापुरुषो एव महासतियो के जीवन–वृत्तान्तों को सुबोध भाषा मे प्रस्तुत किया। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से सजाने–सवारने का काम पूज्यश्रीजी ने किया है। अस्तु! आज भी समग्र मानवजाति उनके उद्‌बोधन से लाभान्वित हो रही है। इसी क्रम मे पाण्डव चरित्र किरणावली का यह अक पाठको के लिए प्रस्तुत है। सुज्ञ पाठक इससे सम्यक् लाभ प्राप्त करेगे।

युगद्रष्टा युगप्रवर्तक ज्योतिर्धर आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा का महाप्रयाण भीनासर मे हुआ। आपकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने और आपके कालजयी प्रवचन–साहित्य को युग–युग मे जन–जन को सुलभ कराने हेतु समाजभूषण कर्मनिष्ठ आदर्श समाजसेवी स्व सेठ चम्पालालजी बाठिया का चिरस्मरणीय श्लाघनीय योगदान रहा। आपके अथक प्रयासो और समाज के उदार सहयोग से श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर की स्थापना हुई। सस्था जवाहर–साहित्य को लागत

मूल्य पर जन–जन को सुलभ करा रही है और पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के सम्पादकत्व मे सेठजी ने 33 जवाहर किरणावलियो का प्रकाशन कर एक उल्लेखनीय कार्य किया है। बाद मे सस्था की स्वर्ण–जयन्ती के पावन अवसर पर श्री बालचन्दजी सेठिया व श्री खेमचन्दजी छल्लाणी के अथक प्रयासो से किरणावलियो की सख्या बढाकार 53 कर दी गई। आज यह सैट प्राय बिक जाने पर श्री जवाहर विद्यापीठ मे यह निर्णय किया गया कि किरणावलियो को नया रूप दिया जावे। इसके लिए सस्था के सहमत्री श्री तोलाराम बोथरा ने परिश्रम करके विषय–अनुसार कई किरणावलियो को एक साथ समाहित किया और पुन सभी किरणावलियो को 32 किरणो मे प्रकाशित करने का निर्णय किया गया।

ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्यजी म सा के साहित्य के प्रचार–प्रसार मे जवाहर विद्यापीठ भीनासर की पहल को सार्थक और भारत तथा विश्वव्यापी बनाने मे श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ बीकानेर की महती भूमिका रही। सघ ने अपने राष्ट्रव्यापी प्रभावी सगठन और कार्यकर्ताओ के बल पर जवाहर किरणावलियो के प्रचार–प्रसार और विक्रय–प्रबन्धन मे अप्रतिम योगदान प्रदान किया है। आज सघ के प्रयासो से यह जीवन निर्माणकारी साहित्य जैन–जैनेतर ही नही अपितु विश्व–धरोहर बन चुका है। सघ के इस योगदान के प्रति हम आभारी हैं।

धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती राजकुवर बाई मालू धर्मपत्नी स्व डालचन्दजी मालू द्वारा आरम्भ मे समस्त जवाहर साहित्य के प्रकाशन के लिए 60 000 रु एक साथ प्रदान किये गये थे जिससे पूर्व मे लगभग सभी किरणावलियॉ उनके सौजन्य से प्रकाशित की गई थी। सत्साहित्य प्रकाशन के लिए बहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

प्रस्तुत किरणावली का पिछला सस्करण श्रीमान् हजारीमलजी सेठिया ट्रस्ट करीमगज भीनासर एव श्रीमान् नरेशकुमारजी खिवसरा दिल्ली के सौजन्य से प्रकाशित किया गया और प्रस्तुत किरण 11 (पाण्डव चरित्र) के अर्थ–सहयोगी स्व भवरलालजी सुराणा व स्व श्रीमती मूलीदेवी हैं। सस्था सभी अर्थ–सहयोगियो के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

निवेदक

चम्पालाल डागा
अध्यक्ष

सुमतिलाल बाठिया
मत्री

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	थादला मध्यपदेश
जन्म तिथि	वि स 1932 कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	श्री जीवराजजी कवाड
माता	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	लिमडी (म प्र)
दीक्षा तिथि	वि स 1948 माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद स्थान	रतलाम (म प्र)
युवाचार्य पद तिथि	वि स 1976 चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	वि स 1976 आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	भीनासर (राज)
स्वर्गवास तिथि	वि स 2000 आषाढ शुक्ला अष्टमी

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा.

आचार्य श्री जवाहर–ज्योतिकण

विपत्तियो के तमिस्र गुफाओ के पार जिसने सयम साधना का राजमार्ग स्वीकार किया था।

ज्ञानार्जन की अतृप्त लालसा ने जिनके भीतर ज्ञान का अभिनव आलोक निरतर अभिवर्द्धित किया।

सयमीय साधना के साथ वैचारिक क्राति का शखनाद कर जिसने भू–मण्डल को चमत्कृत कर दिया।

उत्सूत्र सिद्धातो का उन्मूलन करने, आगम–सम्मत सिद्धातो की प्रतिष्ठापना करने के लिए जिसने शास्त्रार्थो मे विजयश्री प्राप्त की।

परतत्र भारत को स्वतत्र बनाने के लिए जिसने गाव–गाव, नगर–नगर पाद–विहार कर अपने तेजस्वी प्रवचनो द्वारा जन–जन के मन को जागृत किया।

शुद्ध खादी के परिवेश मे खादी–अभियान चलाकर जिसने जन–मानस मे खादी–धारण करने की भावना उत्पन्न कर दी।

अल्पारभ–महारभ जैसी अनेको पेचीदी समस्याओ का जिसने अपनी प्रखर प्रतिभा द्वारा आगम–सम्मत सचोट समाधान प्रस्तुत किया।

स्थानकवासी समाज के लिये जिसने अजमेर सम्मेलन मे गहरे चितन–मनन के साथ प्रभावशाली योजना प्रस्तुत की।

महात्मागाधी विनोबाभावे, लोकमान्य तिलक, सरदार वल्लभ भाई पटेल, प श्री जवाहर लाल नेहरू आदि राष्ट्रीय नेताओ ने जिनके सचोट प्रवचनो का समय–समय पर लाभ उठाया।

जैन व जैनेत्तर समाज जिसे श्रद्धा से अपना पूजनीय स्वीकार करती थी।

सत्य सिद्धातो की सुरक्षा के लिये जो निडरता एव निर्भीकता के साथ भू–मडल पर विचरण करते थे।

"हुक्म सघ के आचार्य"

1. आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा – दीक्षा वि स 1870 स्वर्गवास वि स 1917
   ज्ञान-सम्मत क्रियोद्धारक साधुमार्गी परम्परा के आसन्न उपकारी।
2. आचार्य श्री शिवलालजी म सा – दीक्षा वि स 1891, स्वर्गवास वि स 1933
   प्रतिभा–सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान, परम तपस्वी महान शिवपथानुयायी।
3. आचार्य श्री उदय सागरजी म सा – दीक्षा 1918 स्वर्गवास वि स 1954
   विलक्षण प्रतिभा के धनी, वदीमान–मर्दक, विरक्तो के आदर्श विलक्षण।
4. आचार्य श्री चौथमलजी म सा – दीक्षा 1909, स्वर्गवास वि स 1957
   महान क्रियावान, सागर सम गभीर, सयम के सशक्त पालक शात–दात, निरहकारी, निर्ग्रन्थ शिरोमणि।
5. आचार्य श्री श्रीलालजी म सा – दीक्षा 1944 स्वर्गवास वि स 1977
   सुरा–सुरेन्द्र–दुर्जय कामविजेता अद्भुत स्मृति के धारक, जीव–दया के प्राण।
6. आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा – दीक्षा 1947, स्वर्गवास वि स 2000
   ज्योतिर्धर, महान क्रातिकारी क्रातदृष्टा, युगपुरुष।
7. आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा – दीक्षा 1962, स्वर्गवास वि स 2019
   शात क्राति के जन्मदाता, सरलता की सजीव मूर्ति।
8. आचार्य श्री नानालालजी म सा – दीक्षा 1996 स्वर्गवास वि स 2056
   समता–विभूति विद्वद्शिरोमणि जिनशासन प्रद्योतक धर्मपाल प्रतिबोधक, समीक्षण ध्यानयोगी।
9. आचार्य श्री रामलालजी म सा – दीक्षा 2031 आचार्य वि स 2056 से
   आगमज्ञ तरुण तपस्वी तपोमूर्ति उग्रविहारी सिरीवाल प्रतिबोधक व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक बालब्रह्मचारी प्रशातमना।

अर्थ–सहयोगी परिचय

शासन निष्ठ, समाजसेवी, श्रेष्ठीवर्य स्व भवरलाल जी सुराणा व स्व श्रीमती मूलीदेवी

वि स 1974 जेठ बदी 4 गुरुवार को देशनोक मे जन्मे स्व भवॅरलाल जी का पाणिग्रहण सस्कार स्व श्री सेठ रावतमलजी बोथरा (रासीसर वाले) की सुपुत्री स्व मूली देवी के साथ हुआ। आपने सर्वपथम दलकोला (बगाल) मे पाट व कपडे का व्यवसाय पारभ किया और अपनी प्रतिभा, लगन, श्रमनिष्ठा व व्यावसायिक कौशल से निरन्तर सफलताएँ अर्जित की। अर्थोपार्जन कर सामाजिक, धार्मिक, जनकल्याणकारी प्रवृत्तियो मे मुक्तहस्त से दान देना आपका स्वभाव था। आपसे शासन निष्ठता व जन–कल्याण तथा आपकी धर्मपत्नी से धर्मपरायणता व सेवा का सुसस्कार विरासत मे प्राप्त कर आपके पुत्र–द्वय सर्व श्री रतनलाल जी एव गोरधनलाल जी एव पुत्री–द्वय श्रीमती कचनदेवी धाडीवाल व सरलादेवी सुखाणी ने इन्हे वृद्धिगत रखते हुए समाज मे विशिष्ट पहचान बनाई।

आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री रतनलाल जी (जन्म वि स 1992 जेठ सुदी 14 शनिवार, गगाशहर) सेवा कार्य मे अग्रणी हे ओर सघ के विकास हेतु सदैव प्रयासरत तत्पर व सलग्न रहना ही आपकी पहचान है। गगाशहर के ही स्व श्री चॉदमल जी डागा की आत्मजा सुन्दर देवी के साथ वि स 2011 वैशाख बदी 3 को आपका विवाह हुआ। 'विश्व सेवक मेडिकल स्टोर' नाम से गगाशहर मे दवाई की दुकान खोलकर आप व्यवसाय मे प्रविष्ट हुए और तदनन्तर लगन, परिश्रम, पामाणिकता से अन्य क्षेत्रो मे भी आशातीत सफलता अर्जित की। आपके छह पुत्र एव दो पुत्रिया सर्व श्री जेठमल इन्द्रचन्द, अशोक कुमार जसकरण राजेन्द्र कुमार एव कमलचन्द व सुपुत्री श्रीमती सुमन देवी सुखाणी एव बबीता देवी सेठिया हें। आपके हर कार्य मे इन सभी का सहयोग व योगदान रहता हे।

श्री जेठमल जी धार्मिक सस्कारो से ओत–प्रोत, सामाजिक कार्यो के प्रति समर्पित एव गुरु–भगवन्त के प्रति अटूट आस्थावान युवक हैं। आपकी बीकानेर मे "एस जी ट्रेडिग कम्पनी" के नाम से अनाज की दुकान है और इनके अनुज श्री इन्द्रचन्द जी दिल्ली मे कोनार्क होजयरी नाम से फैक्ट्री का कुशलता से सचालन करते हे। तृतीय पुत्र श्री अशोक कुमार के बेगलोर मे 'कोनार्क कार एसेसरीज' का व्यवसाय है।

श्री जसकरण व श्री राजेन्द्र कुमार बैंगलोर मे "कोनार्कस" एव श्री कमलचन्द बैंगलोर मे ही "कोनार्क ऑटो एसेसरीज" नाम से फर्म का सचालन कर रहे हैं।

सभी भाई सघ के प्रति समर्पित आचार्य श्री रामेश के प्रति अनन्य श्रद्धाचित्त, धार्मिक सामाजिक कार्यो के लिए सदैव तत्पर रहते हैं, जो इनको विरासत मे प्राप्त सस्कारो का ही सुफल है।

सद् साहित्य के प्रकाशनार्थ प्रदत्त आर्थिक सहयोग हेतु सघ श्री रतनलालजी सुराना और उनके पुत्रो के प्रति आभार ज्ञापित करता है। विश्वास है कि सुराना परिवार का सहयोग भविष्य मे भी इसी प्रकार मिलता रहेगा।

अनुक्रम

पाण्डव चरित्र - प्रथम भाग

पाण्डव चरित्र - द्वितीय भाग

1 विषय–प्रवेश

शास्त्रो के चार अनुयोग है। उनमे चरितानुयोग का स्थान सामान्य जनता के लिहाज से महत्वपूर्ण है। सर्वसाधारण जनता के लिये चरितानुयोग जितना उपयोगी है इतने दूसरे अनुयोग नही। चरितानुयोग के द्वारा गहन तत्त्व सरलता के साथ जनता के सामने रक्खा जा सकता है। उसे समझने मे विशेष कठिनाई नही होती। जो गहन बात दूसरी रीति से समझाना कठिन होता है वही बात अगर चरित द्वारा समझाई जाय तो सहज ही समझ मे आ जाती है। चरितानुयोग की शैली अन्य अनुयोगो की अपेक्षा सरस, मधुर और आकर्षक होती है। यही कारण है कि जनता नीरस तत्त्व–विवेचना की अपेक्षा चरित–वर्णन को बडे चाव से सुनने को उत्कठित रहती है।

किसी बालक को रग की डिबिया दिखाकर यह समझाया जाय कि इस रग मे हाथी है तो इस कथन को बालक नही समझ सकेगा। लेकिन रग से अगर हाथी का चित्र बनाकर उसे दिखा दिया जाय तो वह समझ जाएगा। इसी प्रकार कथा की मूलभूत भावरूप वस्तु को कथा का रूप दे देने से वह बात जीवो के लिए सुगम हो जाती है। इस प्रकार कथा कहने का प्रधान उद्देश्य तो उस भावरूप वस्तु को समझाना हे मगर उसे समझाने के लिए कथा को स्थूलरूप देना पडता है ठीक उसी प्रकार जैसे चित्र के खाके–आकार मे रग भरा जाता है।

यद्यपि भावरूप वस्तु मे कथानक का रग समयानुसार भरा जाता है फिर भी वह रग भावरूप वस्तु की वास्तविक मर्यादा को लाघकर नही भरा जा सकता। मर्यादा का उल्लघन करने से भाववस्तु विकृत हो जाती है। चित्र बनाने और रग भरने के लिए जो रेखाए खीची गई हैं, उनसे बाहर रग न चला जाय इस बात की कुशल चित्रकार बडी सावधानी रखता है। इसी प्रकार कथाकार को भी ध्यान रखना चाहिए कि भाव–वस्तु मे समय के अनुकूल रग भरते समय वह रग उस रेखा के बाहर न निकल जाए। तात्पर्य यह है कि पहले खिची हुई रेखओ मे समयानुकूल रग भर देना ही कथाकार का कर्त्तव्य है। अतएव कथा कहते समय मुझे भी यह ध्यान रखना हे कि मेरे द्वारा पूर्व निर्दिष्ट रेखा का उल्लघन न हो पर समयानुकूल रग भरा जाए।

2 ब्रह्मचर्य की महिमा

सब मिल जय बोलो ब्रह्मव्रतधारी भीष्म की।।टेर।।
हस्तिनापुर नगर मनोहर, जन–मन–रजनहार
कौरव–कुल–नभ चन्द्र समान, है शान्तनु नृप सुखकार।
गगा महारानी के अगज है, श्री गागेय कुमारजी ।।1।।

आज ससार मे जिस ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकता है आधुनिक वैज्ञानिक भी जिसके बल के मुकाबले मे दूसरा कोई बल नहीं मानते जिसकी शक्ति कल्पना से अतीत और तर्क के अगोचर है, जिसका प्रभाव अद्भुत है जिसका चमत्कार अपूर्व है, जिसकी महिमा अपरिमित है जो ब्रह्मानन्द का दाता है, आध्यात्मिक तेज उत्पन्न करने वाला है जीवन का सौन्दर्य है और जिसके बिना शारीरिक, मानसिक और वाचनिक शक्तिया सोई पडी रहती हैं, जो इस शरीर का जीवन है, इस जीवन का प्राण है, प्राणो की आत्मा है आत्मा का सर्वस्व है और सर्वस्व का सार है उस ब्रह्मचर्य की पूर्ण महिमा का गान नहीं किया जा सकता। शास्त्र मे कहा है–

देवदाणव गधव्वा जक्ख–रक्खस किन्नरा।
बभयारि नमसति दुक्कर ज करति ते।।–श्री उत्तरा

अर्थात्–देव दानव, गधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर सभी प्रकार के देवता भी ब्रह्मचारी के सामने झुक जाते हैं।

जब देवता भी ब्रह्मचारी पुरुष के चरणो पर लोटते है तो मनुष्यो का कहना ही क्या है? ब्रह्मचर्य मे ऐसी अलौकिक शक्ति होती है कि समस्त प्रकृति उसकी दासी बन जाती है समस्त शक्तिया उसके हाथ का खिलोना बन जाती हैं, सिद्धिया उसकी अनुचरी हो जाती हैं ओर ऋद्धिया उसके पीछे–पीछे दौडती फिरती हैं।

जिस ब्रह्मचर्य की ऐसी महिमा है उसका लक्षण क्या हे? आज ब्रह्मचर्य का प्राय सकीर्ण अर्थ किया जाता हे। स्त्रीससर्ग न करना ही ब्रह्मचर्य है यह तो एक सकीर्ण परिभाषा हे। ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ इससे कही अधिक व्यापक है। जिसके सहारे यह विश्व टिका हुआ हे उस ब्रह्मचर्य का अर्थ इतना सकुचित नही हो सकता। वस्तुत ब्रह्मचर्य का पालन स्त्री के साथ रहकर भी किया जा सकता है ओर ब्रह्मचर्य का विनाश स्त्री के अभाव मे भी किया जा सकता है। इसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि ब्रह्मचर्य के लिए आवश्यक मर्यादा का जिसे वाड भी कहते हें– पालन न किया जाय। बल्कि

इस कथन का आशय यह है कि ब्रह्मचर्य का अर्थ–स्त्रीससर्ग के त्याग मे ही सीमित नही है वरन् उससे भी व्यापक है। ब्रह्मचर्य के लिए शास्त्र मे बाड आदि रूप जिस मर्यादा का वर्णन किया गया है उसका पालन तो करना ही चाहिए। मगर ऐसा करना उचित नही है कि केवल बाड की रक्षा की जाय और खेत उजड जाने दिया जाय अर्थात ब्रह्मचर्य की बाह्य मर्यादा का तो ख्याल रक्खा जाय और ब्रह्मचर्य नष्ट होने दिया जाय। डिबिया हीरा की रक्षा करने के लिए है। हीरा की रक्षा के उद्देश्य से ही डिबिया की रक्षा की जाती है। डिबिया की रक्षा करने वाला ओर हीरा को गवा देने वाला विवेकवान नही कहला सकता। समय पडने पर डिबिया अलग कर दी जाती हे लेकिन हीरे की तो सर्वदा रक्षा ही की जाती है। समय आ पडने पर गौण बात छोडी जा सकती है पर मुख्य का त्याग नही किया जा सकता।

सती सीता घोर सकट मे पड गई थी। रावण जैसे प्रचड पराक्रमशाली राजा ने उसे सतीत्व से विचलित करने के लिए कोई प्रयत्न न छोडा। लेकिन सीता ने अपने सतीत्व का परित्याग नही किया। रावण के लाख प्रयत्न करने पर भी वह विचलित नही हुई।

मैंने एक चित्र देखा था। उसमे राम लक्ष्मण, सीता और रावण की बहिन सूर्पनखा के चित्र थे। सूर्पनखा अपने चरित्र से पतित होकर लक्ष्मण को शृगारिक हावभाव दिखलाती हुई उस को भी पतित करने का प्रयत्न कर रही थी। उस वन मे लक्ष्मण के लिए कौन–सी बाड थी। जगल मे एकान्त स्थान था। सामने सुन्दरी का रूप धारण किये सूर्पनखा खडी थी। वहा अकेला हीरा था बाड रूपी डिबिया न थी फिर भी क्या लक्ष्मण तिल भर भी विचलित हुए थे। जैसे हीरे की छोटी–सी कणी बडे–बडे काचो को काट डालती है, उसी पकार लक्ष्मण ने अपने चरित्र की रक्षा की ओर जैसे बडे काच हीरे की कणी का कुछ भी नही बिगाड सकते इसी प्रकार सूर्पनखा के हावभाव लक्ष्मण के चरित का कुछ भी नही बिगाड सके। साराश यह हे कि मर्यादा का पालन तो करना ही चाहिये परन्तु मुख्यत यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि जिस हीरे की रक्षा के लिए मर्यादा का पालन किया जाता है वह हीरा ही कहीं नष्ट न हो जाय।

आज भारतवर्ष मे भी ब्रह्मचर्य सकट मे पडा हुआ है। स्वार्थी लोगो ने भाति–भाति की दवाए खोजकर और सतति–नियमन के कृत्रिम उपायो का आविष्कार करके ब्रह्मचर्य पर भीषण प्रहार किया हे। आज ब्रह्मचर्य की मर्यादा

किस प्रकार नष्ट की जा रही है यह बात प्रत्येक बुद्धिमान जानता है। ऐसे समय मे भीष्म जैसे ब्रह्मचारी की जय बोलने की शक्ति किसमे है? भीष्म की जय बोलने का वास्तविक अधिकारी वही है जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो या कम से कम देशविरत ब्रह्मचारी हो। जिसके समीप ब्रह्मचर्य का कोई मूल्य नहीं है वह भीष्म की जय बोलने का अधिकारी कैसे हो सकता है?

भीष्म अखण्ड, नैष्ठिक या पूर्ण ब्रह्मचारी थे। भारत के प्राचीन महापुरुषो मे उनका स्थान बहुत ऊचा है। मगर जिस देश मे भीष्म–सरीखे महान ब्रह्मचारी हुए है उस देश की आज क्या दशा है? उस देश का वातावरण कितना गदला हो रहा है, लोग किस प्रकार कुमार्ग पर चल रहे हैं? भीष्म की सन्तान होने का गर्व करने वाले आज किस भीषण विनाशपथ पर अग्रसर होते जा रहे हैं? हे भारत! तेरे मस्तक पर बहुत बडा बोझ है। तुझे ससार को मार्ग दिखलाना है। अगर तू ही सन्मार्ग पर नहीं चलेगा और अधो की तरह भटक जायेगा तो ससार को सन्मार्ग कौन सुझाएगा? सावधान होकर अपने पूर्वजो के उज्ज्वल चरित्र को देख! अपने 'पितामह' का स्मरण कर! सभल और ससार को सभाल।

इस युग मे भीष्म–सरीखे महापुरुषो के जीवनचरित से प्रेरणा पाने की बहुत आवश्यकता है। इसलिये मैं ब्रह्मचारी भीष्म की कथा कहना चाहता हू।

3 शान्तनु का विवाह

हस्तिनापुर नामक एक नगर था। यो तो हस्तिनापुर अभी मेरठ के पास है पर कहा जाता है कि पाचीन हस्तिनापुर वहा था, जहा आज दिल्ली नगर बसा हुआ है। मगर धर्मकथा को इतिहास की दृष्टि से देखने की आवश्यकता नही है। धर्मकथा इतिहास प्रकट करने के लिए नही धर्म को प्रकाशित करने के लिए होती है। अतएव यहा ऐतिहासिक गवेषणा मे न पडकर तात्त्विक बातो पर ही ध्यान दिया जायेगा। धर्मकथा आचरण बनाने का नक्शा है। हम धर्मकथा द्वारा जनता के जीवन को उन्नत बनाना चाहते है। अतएव इतिहास सुनने की आशा न रखते हुए धर्मकथा सुनने की इच्छा से ही आप मेरा वक्तव्य सुने।

कहा जाता है कि भगवान् ऋषभदेव के सौ पुत्रो मे से एक का नाम कुरु था। उन कुरु के वशज ही कौरव कहलाए। कहीं-कही यह उल्लेख मिलता है कि भगवान् ऋषभदेव के पौत्र (बाहुबली के पुत्र) राजा सोमभद्र और श्रेयास के वश मे कुरु राजा हुए और उनकी सन्तान-परम्परा कौरव कहलाई। कुरुवश मे बडे-बडे प्रतापी पुरुषो ने जन्म लिया है। भगवान् शातिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ इसी वश की विमल विभूतिया हैं। सनत्कुमार चक्रवर्ती महापद्म चक्रवर्ती तथा अनेक इतिहास-पुराण-प्रसिद्ध राजाओ और महर्षियो ने कुरुवश को देदीप्यमान किया है। इस प्रतापशाली वश के सैकडो राजा धर्मपरायण हुए और उनमे से अनेको ने मुक्ति प्राप्त की है। कहा भी है-

शत्रपुत्र्यामभून्नाभि-सूनो सूनु कुरुर्नृप ।
कुरुक्षेत्रमिति ख्यात राष्ट्रमेतत्तदाख्यया।।
कुरो पुत्रोऽभवद्धस्ती तदुपज्ञमिद पुरम्।
हस्तिनापुरमित्याहुरनेकाश्चर्यसेवितम्।।

अर्थात-भगवान ऋषभदेव के सौ पुत्रो मे से एक का नाम कुरु था। कुरु को जिस प्रदेश का राज्य दिया गया था वह प्रदेश कुरुक्षेत्र कहलाया। कुरु राजा का पुत्र हस्ती हुआ। इस राजा हस्ती के नाम पर हस्तिनापुर नगर कहलाया। हस्तिनापुर मे अनेक आश्चर्य प्रकट हुए।

हस्ती राजा के वश मे एक अत्यन्त पराक्रमी ओर चन्द्रमा की भाति शाति देने वाले शान्तनु नामक राजा हुए। शान्तनु की गगा नाम की महारानी से ही भीष्म का जन्म हुआ था।

भीष्म महारानी गगा के पुत्र थे। इसी कारण उन्हे गागेय भी कहते हे। गगा के साथ शान्तनु का विवाह किस प्रकार हुआ था यह आगे कहा जायेगा। यहा इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक हे कि दूसरे ग्रन्थो मे शान्तनु के विवाह का आलकारिक वर्णन किया गया हे लेकिन उस आलकारिक वर्णन का विकृत अर्थ किया जाता है। इन सव वातो पर विस्तारपूर्वक विवेचन किया जाय तो काफी समय लग सकता है। वह वर्णन वहुत विस्तृत भी होगा। अतएव उसे छोडकर सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त हे कि ग्रथो के आलकारिक वर्णन का विकृत अर्थ करने से कथा मे अन्तर जान पडता है। अगर उस विकृति को अलग कर दिया जाय तो कथा की विपमता हट जायेगी ओर मूल–वस्तु एक–सी प्रतीत होने लगेगी। वास्तविक वात यह है कि जह्नु नामक एक राजा थे। शान्तनु की रानी गगा इन्हीं राजा जह्नु की पुत्री थी। इसलिए गगा का दूसरा नाम जाह्नवी भी पडा था जेसे जनक की पुत्री होने के कारण सीता का दूसरा नाम जानकी था। इसी गगा या जाह्नवी के साथ राजा शान्तनु का विवाह हुआ था।

राजा शान्तनु का जन्म श्रेष्ठ कुल मे हुआ था। कुल क्रम से उन्हे अच्छे सस्कार प्राप्त हुए थे। उनमे अनेक सद्गुण थे। लेकिन जेसे चन्द्रमा मे भी कलक होता है, उसी प्रकार शान्तनु मे भी एक मृगया (शिकार) का दुर्व्यसन था।

शिकार खेलना और निरपराध मूक प्राणियो का घात करना वुरा है। कोई भी विवेकशील पुरुष शिकार जेसे कार्य का समर्थन नही कर सकता। लेकिन ज्ञानीजन प्रत्येक वात मे समभाव रखते हें। उनका कथन है कि आस्रव भी सवर के रूप मे पलट सकता हे ओर सवर के कार्य से भी आस्रव हो सकता है। शास्त्र मे कहा है–

जे आसवा ते परिसवा जे परिसवा ते आसवा।

–श्री आचाराग सूत्र प्र. श्रु.।

उदाहरण के लिए सयति राजा के वृत्तान्त को देखिए। वह मृगया करने गया था ओर उसने मृग पर वाण भी चलाया था। मगर उस मृग क निमित्त से ही वह गर्दभिल्ल (गर्भभाली) मुनि के पास जा पहुचा। अतएव किस निमित्त से क्या होगा यह नही कहा जा सकता। यही कारण ह कि ज्ञानीजन प्रत्येक वात मे समभाव रखते हें। ऐसी अचिन्तनीय वाता का दृष्टिगाचर रखकर ही कहा गया हे–

न जाने ससारे किममृतमय कि विषमयम्?

अर्थात्–कौन जाने ससार मे क्या अमृतमय है और क्या विषमय है?

सयति राजा मृगया के लिए गया था। वही मुनि के साथ उसकी भेट हो गई। यह क्या बुरा हुआ? यो देखा जाय तो मृगया करना बुरा ही है मगर मृगया के कारण मुनि से जो भेट हो गई उस भेट को कौन बुरा कहेगा? इसलिये ज्ञानीजन परिणाम की ओर देखते है और पत्येक कार्य मे समभाव धारण करते है।

वनक्रीडा को जाते राय ने मृग–दम्पति को पाय।
मृग के पीछे छोडा अश्व को, दया न मन के माय।
घोर जगल मे पहुचा राजा, मृग की छिप गई काय।।2।।

राजा शान्तनु को मृगया का बडा शौक था। एक दिन वह महावेगवान अश्व पर सवार होकर अपने साथियो के साथ मृगया के लिए वन की ओर चल पडा। यद्यपि मृगया हिसा– कार्य है तथापि देखना चाहिए कि इसका क्या परिणाम हुआ? किसी बात की बिना सोचे–समझे आलोचना करना उचित नही है। कदाचित् शान्तनु की बात कथानक की कही जा सकती है परन्तु सयति राजा की बात तो आगम मे भी आई है। शास्त्र मे सयति राजा का वर्णन करते हुए कहा है–

हयाणीए गयाणीए रहाणीए तहेव य।
पायत्ताणीए महया सव्वओ परिवारिए।।2।।
मीए छुहित्ता हयगओ कपितालुज्जाणकेसरे।
भीए सन्ते मिए तत्थ बहेइ रसमुच्छिए।।3।। उ०अ० 18

इस पकार शास्त्र मे कहा है कि सयति राजा चतुरगिनी सेना लेकर मृगया के लिए गया था। कहा जा सकता है कि धर्मकथा मे मृगया के वर्णन की क्या आवश्यकता है? ऐसा कहने वाले को यही उत्तर दिया जा सकता है कि पत्येक बात पर समभाव से विचार करना चाहिए और प्रत्येक वस्तु के यथायोग्य स्वरूप को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

आज जैनधर्म का अनुयायी कोई राजा नही रहा। इसके अन्यान्य कारणो के साथ एक प्रधान कारण जैनो की सकुचित मनोवृत्ति भी है। आजकल का जैन–समाज सीमातीत असहनशील बन गया है। वह शास्त्रो के विषय मे अपनी ही दृष्टि को सर्वोपरि मानने लगा है। जैनशास्त्र को यह मान्य नही है कि पत्येक व्यक्ति सैद्धातिक बातो को अपनी दृष्टि से देखे या माने। जैनशास्त्र का कथन है कि हिसा के स्थान पर हिसा ओर अहिसा के स्थान पर अहिसा समझो। यह हठबुद्धि छोड दो कि जो हम कहते हैं वही होना

चाहिए, दूसरा क्यो होता है? ससार मे स्वर्ग भी है नरक भी हे। पाप भी हे पुण्य भी है। आप अपनी हठबुद्धि से इनमे से किसी को नहीं मिटा सकते। शास्त्र पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म सभी का वर्णन करता है। आप स्वय अधिक से अधिक पाप से बचे, लेकिन सहसा किसी बात की आलोचना न करने बैठे। समभाव रखकर प्रत्येक बात के स्वरूप ओर परिणाम पर विचार करे।

राजा शान्तनु शिकार खेलने के लिए वन को गया। वह सोचता होगा कि लोग शिकार की निन्दा करते हैं, लेकिन शिकार करना मेरे लिए आनन्द की बात है। इससे मन को प्रसन्नता होती है, बल और साहस की वृद्धि होती है। राजा मानो यही सोच रहा था कि इतने ही मे उसकी दृष्टि एक मृग–युगल पर पडी।

कवियो का कथन है कि नरजाति की अपेक्षा नारीजाति मे अधिक सौन्दर्य होता है। इसी कारण मृग की अपेक्षा मृगी अधिक सुन्दर समझी जाती है। यो तो स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे रूप की कमी नही होती लेकिन पुरुष मोहवश मानने लगते हैं कि रूप स्त्रियो मे ही है। मगर विचारणीय यह है कि जो पुरुष स्त्रियो की अपेक्षा श्रेष्ठ है वह स्त्रियो से कम रूपवान कैसे हो सकता है? जो हो, शायद सौन्दर्य की हीनता या अधिकता की कोई निश्चित तराजू नही है। जिसकी जैसी दृष्टि होती है वैसी ही सृष्टि उसे दिखाई देने लगती है।

मृग का जोडा देखकर राजा सोचने लगा–'मैं नगर का रहने वाला वन मे भटक रहा हू, लेकिन वन मे रहने वाले वन मे ही रहते है। ऐसी दशा मे इन वनचरो के प्रति नागरिक का क्या कर्त्तव्य है? फिर मैं साधारण नागरिक ही नही, राजा हू, जिस पर प्रजा की रक्षा का भार है।

राजा को यह विचार आया मगर शिकार के आवेश मे वह क्षण भर से ज्यादा नही टिका। दूसरी ओर मृग के जोडे ने भी राजा को देखा। मृग मृगी और राजा के बीच मे हो गया। मानो वह अपने ऊपर सकट झेलकर भी मृगी की रक्षा करना चाहता था ओर प्रकट करना चाहता था कि कोन हे ऐसा जो हमारे निर्दोष जोडे को भग कर सके? राजा ने भी मृग का यह कार्य देखा। राजा ने मृग का कार्य देखकर सोचा–स्नेह की भावना केवल हम मनुष्यो म । नही है वरन् जगल मे स्वच्छद विचरने वाले पशुओ मे भी यह भाव पाया जाता हे। इसी–स्नेह भावना से प्रेरित होकर मृग–मृगी को वचाना चाहता हे। लेकिन मै ऐसा नही कि इस सुन्दर जोडे को छोड दू।

राजा ने मृग का पीछा करने के लिए अपना घोडा छोड दिया। मृग लम्बी–लम्बी छलागे भरता हुआ तेजी से भागा। राजा ने उसका पीछा किया। उसने धनुष पर बाण चढाकर ज्यो ही मृग पर छोडने का उपक्रम किया कि मृग आखो से ओझल हो गया। राजा यह देखकर चकित रह गया। मृग अभी–अभी मेरी आखो के सामने था और अभी–अभी कहा गायब हो गया? इस प्रकार मेरे सामने से मृग का निकल जाना और विलीन हो जाना मेरी हार है। मगर शान्तनु हरिण से हार जाने वाला नही है। आखिर वह जाएगा कहा?

इस प्रकार सोचकर राजा मृग का पता लगाने को उद्यत हुआ। घोडे पर चढे–चढे पता लगाने मे कठिनाई होगी यह सोचकर वह नीचे उतर पडा। वह मृग को नजर फैलाकर इधर–उधर देखने लगा। राजा को मृग के चिह्न तो दिखाई पडते थे मगर मृग कही दिखाई नही देता था। राजा बडे असमजस मे पड गया। वह सोचने लगा–आजतक तो ऐसा कभी नहीं हुआ था। यह पहला ही अवसर है कि शिकार धोखा देकर चम्पत हो गया और मै देखता ही रह गया।

राजा गया तो था शिकार खेलने, लेकिन देखना चाहिए कि वहा अकस्मात् क्या घटना घटती है। ऐसी बातो को दृष्टि मे रखकर ही कहा गया है कि आस्रव के स्थान पर भी सवर हो सकता है और सवर के स्थान पर भी आस्रव हो सकता है लेकिन ज्ञानी पुरुष को तो समभाव ही रखना चाहिए। राजा सयति को शिकार खेलने के लिए जाने पर मुनि का समागम हुआ था, परन्तु शान्तनु के विषय मे दूसरी ही घटना घटती है।

अश्व से नीचे उतरे राजा भटके जगल माय।
सुन्दर रगमहल इक देखा मन को अति लोभाय।
राजा को ले चली दासिया, गगा पासे आय।।3।।

शिकार का कार्य आस्रव का अर्थात् कर्मबध का है। लेकिन कौन जानता है कि इस निमित्त से भी कभी कोई अच्छा काम हो सकता है। इसी कारण वस्तु पर अनेकान्त दृष्टि से विचार किया जाता है।

राजा शान्तनु घोडे से उतर कर मृग को खोजने के लिए एक टीले पर चढा। उसी समय उसे एक सुन्दर महल दिखाई दिया। महल को देखकर राजा सोचने लगा–इस वन मे और ऐसा सुन्दर महल? यह कहा से आया? किसका यह महल होगा? महल सूना नही जान पडता। इसमे कोई रहता मालूम होता है। इस घोर वन मे महल का दिखाई देना मेरे छोटे–से त्याग का ही फल है। अगर मैने घोडे का त्याग न किया होता तो यह महल देखने को कैसे मिलता? घोडा छोडे बिना इस टीले पर चढ ही कैसे सकता था?

वास्तव मे घोडा भी एक प्रकार का वन्धन हे। कल्पना कीजिए एक आदमी घोडे को पकडकर उस पर सवार होकर चला। आगे उसके मित्र का घर आया। मित्र घोडे– सवार को बुला रहा है और सवार को भी अपने मित्र के घर जाना पसन्द है। ऐसी स्थिति मे घोडे की सवारी त्याग कर ही वह मित्र के घर जा सकता है। जब तक वह घोडे पर सवार रहेगा घर मे प्रवेश नही कर सकेगा। अब देखना चाहिए कि उसने घोडे को पकडा हे या घोडे ने उसे पकड रखा है?

राजा सोचता है–इस महल का नजर आना त्याग का ही फल है। साथ ही मृग का भी उपकार हुआ कि वह मुझे इस ओर ले आया। इस प्रकार मन ही मन अनेक बाते सोचता–विचारता राजा शान्तनु उस महल के समीप पहुचा। उसे स्त्रियो का एक झुड मिला। सब स्त्रिया 'महाराज! पधारिए स्वागत है' कहकर राजा का अभिवादन करने लगी। उन्होने कहा– 'हम आपकी प्रतीक्षा मे ही खडी थी। अच्छा हुआ, आप पधार गए।'

राजा भौंचक्का रह गया। सोचने लगा–इनसे मेरी कोई जान–पहिचान मालूम नही होती। इधर मैं पहले कभी आया ही नही। मेरे आगमन की पहले कोई सूचना भी इन्हे नही थी। फिर भी ये मेरी प्रतीक्षा मे खडी हैं। यह कैसा आश्चर्य है।

राजा ने अपने आपको सभाल कर कहा–आप मेरी शुभचिंतिका हैं इसलिए ऐसा कहती हैं।

स्त्रियो मे से एक ने कहा–आप जैसो के लिए ससार मे सभी सज्जन हैं। दुर्जन कौन हो सकता है?

आखिर वे स्त्रिया राजा को साथ लेकर महल मे दाखिल हुईं। महल मे राजा जह्नु की कुमारी गगा बैठी थी। सुन्दरी गगा को देखकर राजा को बहुत विस्मय हुआ। उस समय तक राजा अविवाहित था।

प्राचीन काल मे आज की भाति बाल–विवाह नही होते थे। विवाह उस समय माता–पिता की हवस पूरी करने का साधन नहीं था। जव सोते हुए नव अग जागृत हो जाते थे तभी उस समय विवाह होता था।

महाराज शान्तनु गगाकुमारी की असाधारण रूपराशि देखकर चकित रह गया। वह ज्यो ही गगा की ओर अग्रसर हुआ कि गगा ने उठकर राजा ; स्वागत किया यथोचित आसन दिया। राजा आसन पर वेठ गया। तदन्तर । न्तनु ने किंचित् शान्तचित्त होकर गगा से कहा– आपका रूप और स्वभाव बहुत ही आनन्ददायक हे। लेकिन मैं समझ नहीं सका कि आप कोन हें? किस

कारण इस बीहड वन मे वास कर रही है? कोई हानि न हो तो बतलाइए कि आपके माता–पिता कौन है?

राजा का प्रश्न सुनकर गगा सोचने लगी–मैं अपने मुख से अपना वृत्तान्त कैसे सुनाऊ? यह सोचकर गगा ने अपनी धाय की ओर सकेत किया।

सकेत से भी बात समझी जाती है। स्वामी–सेवक तथा गुरु–शिष्य मे इगित–चेष्टा से ही बात समझ ली जाती है। बल्कि श्रेष्ठ शिष्य वही है, जो इगित से ही गुरु का अभिप्राय समझ जाए। गगा के सकेत को उसकी धायमाता समझ गई।

पूछा राय ने कहा धाय ने, गगाचरित उदार।
गिरी वैताढ्ये रत्नपुरी का जह्नुराय गुणधार।
उनकी पुत्री है यह राजा, इसका यह निरधार।।4।।
विद्याकला मे पूरी प्रवीणा सरस्वती सम जान।
स्वतन्त्रता की है उपासिका, नही स्वच्छदी बान।
स्वकृत व्रत के पालन मे, यह करे जान कुर्बान।।5।।
ब्याह योग्य जब हुई बाल तब पूछा पिता ने आय।
करे ब्याह तव योग्य पति से जिससे सब सुख पाय।
परतन्त्रता मे सुनो पिताजी, सुख का नही उपाय।।6।।
एक प्रतिज्ञा करी है मैने, जो है अति सुखरूप।
जो मेरी आज्ञा मे रहेगा वह नर मम अनुरूप।
ब्रह्मचर्य को पाल अन्यथा बन जाऊगी अनूप।।7।।
सुनके बात कन्या की राय ने, खोज करी भरपूर।
सुनके प्रतिज्ञा राजकुवर सब, रह जाते है दूर।
चिंतित रहने लगे पिता जब मिला ने कोई नूर।।8।।
पिता– दु ख का कारण मै हू, छोड यहा का वास।
जगल मे जाकर रहू तो न हो पिता को त्रास।
वनदेवी सम वन मे रहकर पाले प्रतिज्ञा खास।।9।।
मेरी आज्ञा को जो माने वह मेरा भरतार।
इस निश्चय को सुनकर कोई वर नही हुआ तैयार।
इस कारण यह वन मे रहकर पाले प्रतिज्ञा–सार।।10।।
मत्रमुग्ध–सा रूपमुग्ध हो बोला यो राजान–
आज्ञाकित मै सदा रहूगा सुन लो मेरी बान।
पति रूप से मुझे स्वीकारो छोडो अपनी तान।।11।।

धाय ने राजा की ओर उन्मुख होकर कहा– वेताढय पर्वत पर रत्नपुर नामक एक नगर है। वहा के राजा का नाम जह्नु है। आपके सामने विराजमान कुमारी गगा उन्ही राजा जह्नु की कन्या हे।

महाराज जह्नु ने पुत्र ओर पुत्री मे भेद न करके इन्हें यथोचित सभी कलाए सिखलाई हैं। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन्होने विचार किया–स्वतन्त्रता मे ही आत्मा को सुख प्राप्त हो सकता है ओर कहा जाता हे कि स्त्रियो का जीवन पराधीन हे। ऐसी दशा मे स्त्री होने के कारण ही मुझे क्या स्वाधीनता के सुख से वचित रहना पडेगा? नहीं, में पराधीनता स्वीकार नहीं करूगी। चाहे कितने ही कष्टो का सामना क्यो न करना पडे मगर मैं अपनी स्वतन्त्रता का परित्याग नही करूगी। मैं अपनी अन्य बहिनो को भी स्वतन्त्र बनाने का प्रयत्न करूगी।

जब कुमारी गगा की उम्र विवाह के योग्य हो गई तो महाराज जह्नु ने एक दिन इनसे कहा–पुत्री, कन्या जीवनभर पिता के घर नहीं रह सकती। उसे विवाहित होकर पति के घर जाना पडता हे। तुम्हे भी ऐसा करना होगा। लेकिन मैं जानना चाहता हू कि तुम कैसा पति चाहती हो?

पिता का प्रश्न सुनकर पहले तो गगा सकुचाई। फिर सोचा–इस तरह सकोच करने से कैसे काम चलेगा? मन का भाव प्रकट न करने से अनिष्ट होने की ही सभावना है। इस प्रकार विचार कर गगाकुमारी ने पिता से कहा–पिताजी! आपने ही मुझे शिक्षा दी है, ओर में यह वात भली–भाति समझ गई हू कि प्रत्येक आत्मा को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है। फिर यह प्रश्न करके क्या आप मुझे पराधीनता की बेडी पहनाना चाहते हें? जव आपने प्रश्न किया ही है तो उसका उत्तर मुझे देना पडेगा। मेरा उत्तर यह हे कि प्रथम तो ऐसा पति होना चाहिए जिसे पाकर में कभी विधवा ही न वन सकू। अगर ऐसा पति न मिले तो में ऐसे पुरुष के साथ विवाह करना चाहती हू जो मेरी आज्ञा का पालन करे मेरे कथन का उल्लघन न करे और कदाचित् उल्लघन करे तो उसका और मेरा सवध–विच्छेद हो जाय।

गगा का यह कथन सुनकर महाराज ने सोचा–गगा इतनी सुन्दरी है कि इसकी समता करने वाली दूसरी कन्या दुर्लभ हे। अतएव काई इसकी आज्ञा मे रहने को अवश्य तेयार हो जायेगा। यह साचकर ने कहा–अगर तुम्हारी इच्छा के अनुकूल पुरुष मिल जाय तव ता विवाह करने मे आनाकानी नही करोगी?

इस प्रश्न के उत्तर मे गगा चुप रही। महाराज ने सोचा– मौन सम्मतिलक्षणम। अर्थात मौन रह जाना सहमत होने का लक्षण है।

इस प्रकार निश्चित करके महाराज जह्नु ने अनेक राजकुमारो को आमन्त्रित किया। राजकुमार आये और गगा को देखकर मुग्ध भी हुए। मगर गगा की पतिज्ञा किसी ने स्वीकार नही की। जो आया उसी ने कहा– हम अपने पुरुषत्व की उपेक्षा करके राजकुमारी के अधीन किस प्रकार रह सकते है? हम उनकी आज्ञा का पालन नही कर सकते। आज्ञा पालन न करने की अवस्था मे वह हमे त्याग कर चली जाय, इससे अच्छा तो यही है कि हम पहले ही यह शर्त स्वीकार न करे।' इस तरह कहकर सभी राजकुमार लौट गये।

किसी राजकुमार को गगा के साथ विवाह करने को तैयार न होते देखकर राजा को बहुत चिन्ता हुई। वह मन ही मन सोचने लगे–'गगा की प्रतिज्ञा पूरी नही हो रही है और वह सयानी हो गई। युवती गगा को घर मे रखना निन्दा का कारण है।' इस प्रकार राजा सदैव चिन्ता मे डूबे रहते।

गगा को अपने पिता की चिन्ता और व्याकुलता का पता लगा। यद्यपि उसे अपने विवाह की परवाह नही थी वह आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने के लिए तैयार थी और इतनी तैयारी होने पर ही उसने यह प्रतिज्ञा की थी, मगर अपने कारण पिता को चिन्तित देखकर उसे बहुत खेद हुआ। किसी उपाय से उसने पिता की चिन्ता कम करने की बात सोची। एक दिन अवसर पाकर गगा ने महाराज जहु से कहा–

गगा–पिताजी! मेरी इच्छा अब वनवास करने की है। आपकी आज्ञा हो तो मैं वन मे ही रहना चाहती हू।

जहु राजा गगा की ओर से अकुलाए हुए थे। फिर भी उन्होने ऊपर के मन से कहा–'जगल मे भीलनी और किराती रहती हैं। तू राजकुमारी है। जगल मे कैसे रहेगी? तुम राजमहल मे रही हो और राजमहल मे ही रहने योग्य हो। जगल मे रहना तुमसे नही बनेगा। क्या कोई राजा तुम्हारे योग्य नही है? या तुम किसी राजा के योग्य नही हो जिससे वनवास करना चाहती हो?'

गगा–मै किसी को दोष नही देना चाहती। में अपने ही लिए कहती हू कि मे स्वय किसी राजा के योग्य नही हू। पुरुष स्त्रियो पर शासन करते आ रहे हे अब भी कर रहे है। सभी स्त्रिया पुरुषो के अधीन हैं। सभी पुरुष स्त्रियो को अपने अधीन किये बैठे हैं। पुरुष–समाज मे इतनी उदारता नही है कि वह एक भी स्त्री को स्वाधीन रहने दे। वह एक भी स्त्री के शासन को

सहन नही कर सकता। अतएव जब कोई भी पुरुष मेरी शर्त स्वीकार करने को तैयार नही है तो मै अपनी आत्मा को ही क्यो न अपने वश मे करू? मैंने जो प्रतिज्ञा की है उसमे किसी प्रकार के अहकार की प्रेरणा नही है। वह आवेश से प्रेरित होकर भी नही की गई है। में नारीजाति मे जागृति उत्पन्न करना चाहती हू। मैं नारियो को उनके स्वत्व का वोध कराना चाहती हू। मेरी प्रतिज्ञा के पीछे मेरा दृढ सकल्प है, उत्सर्ग के लिए पूर्ण उद्यतता है। इस प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए मैं सभी कुछ त्यागने को तैयार हू। ससार के आमोद–प्रमोद और भोग–विलास मुझे विचलित नही कर सकते। मैंने पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की तैयारी करके ही यह प्रतिज्ञा की है। मैं हसती हुई समस्त आपदाओ का सामना करूगी और पुरुषजाति के पुरुषार्थ पर नारीजाति की प्रबल सकल्पशक्ति की मोहर लगाऊगी।

पिताजी! आप मेरे विषय मे व्यर्थ चिन्तित होते हैं। अतीत काल की अनेकानेक ब्रह्मचारिणी सतियो का आदर्श जिसके सामने प्रस्तुत हो उसके लिए चिन्ता की बात ही क्या है?

गगा के उत्तर मे न उद्दडता है न आवेश है न चचलता है वरन गभीरता, दीर्घदृष्टि सकल्प की अटलता और त्याग की प्रबल भावना है। यह देखकर राजा जह्नु को आश्वासन मिला। उन्होने गगा के वनवास के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उन्होने उसके लिए जो महल बनवा दिया था वही यह महल है, जिसमे आप इस समय विराजमान हैं। और यही वह राजकुमारी गगा है, जो आपके सामने बैठी है। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वर न मिलने के कारण इन्हे न किसी प्रकार की चिन्ता ही है और न कोई मनस्ताप ही है। यह प्रसन्नता और सतोष के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करती है।

एक बार महाराज जह्नु यहा पधारे थे। वह कहते थे कि एक निमित्तज्ञानी ने यह बतलाया है कि हस्तिनापुर के राजा शान्तनु मृग का पीछा करते हुए इस वन मे आएगे। और वे गगा की प्रतिज्ञा मानकर उसके साथ विवाह करेगे। हम सब तभी से आपकी प्रतीक्षा कर रही हे। अब सोभाग्य से आप पधारे हैं। जो आपको उचित लगे वह कीजिए।

शान्तनु बडा राजा था। उसे एक से एक बढकर सुन्दरी राजकन्याए ·।प्त हो सकती थी। वडे से बडे राजा की राजकुमारी भी शान्तनु को पाकर ` को धन्य मानती। ऐसी स्थिति मे क्या वह स्त्री के अधीन रहन की तिज्ञा कर सकता था? लेकिन शान्तनु ने गगा मे कोन जाने क्या दखा? उसन न मालूम क्या सोचा? ओर वह गगा की प्रतिज्ञा अस्वीकार न कर सका।

गगा मे ब्रह्मचर्य का असाधारण पताप था। पथम तो वह जन्मजात सुन्दरी थी ही फिर ब्रह्मचर्य ने उसके सौन्दर्य मे एक विचित्र पकार की तेजस्विता उत्पन्न कर दी थी। इस तेजस्विता के सयोग से गगा का सौन्दर्य अनुपम हो गया था जो राजमहल के विलासपूर्ण वातावरण मे कभी सभव नही है।

आगे चलकर भीष्म इतने बलवान और ब्रह्मचारी हो सके इसका कारण भी उनकी माता गगा का ब्रह्मचर्य था। माता के ब्रह्मचर्य से भी बालक बलवान् होता है। हनुमानजी की माता अजना ने जो ब्रह्मचर्य पाला था उसके फलस्वरूप ही हनुमान जैसे बलवान् पुत्र का जन्म हुआ था। सभी लोग अपनी सतति का बलवान होना पसन्द करते हैं, दुर्बल और निर्वीर्य सतान कोई नही चाहता। लेकिन उसके लिए आवश्यक ब्रह्मचर्य पालने को कौन तैयार होता है? भोग के कीडे सिह पैदा नही कर सकते। जिन्हे सचमुच सबल और वीर्यवान सन्तान की कामना हो उन्हे ब्रह्मचर्य का समुचित पालन करना चाहिए।

राजा शान्तनु के अन्त करण मे उस समय क्या भाव उत्पन्न हुआ यह कहना कठिन है। सभव है वह सौन्दर्य के मोह मे पड गया हो। सम्भव है उसने यह सोचा हो 'गगा ने जो प्रतिज्ञा की है, उसके कारण इसे इतने समय तक कुआरी रहना पडा है। ब्रह्मचर्यमय जीवन बिताते हुए इसने अपनी प्रतिज्ञा नही तोडी। अतएव यह विषय–विकार को जीतने वाली है। ऐसी देवी अगर मेरे महल मे रहे और मुझे इसकी आज्ञा मे भी रहना पडे तो हानि क्या है? यह तो बल्कि अच्छा ही होगा।

इस पकार निश्चय करके शान्तनु ने मुस्कराते हुए कहा–मैं राजकुमारी की आज्ञा मे रहना स्वीकार करता हू।

धाय की प्रसन्नता का पार न रहा। उसने हसते हुए कहा–लो देवी। अब तो आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई?

गगा–धाय मा। पतिज्ञा करना सरल है किन्तु पालना कठिन होता है। उस हालत मे तो पतिज्ञा का पालना और भी कठिन हो जाता है जबकि वह हृदय से न की गई हो किन्तु अपना मतलब निकालने के लिए की गई हो। महाराज रूप मे तो मुग्ध नही हो गए है?

मेरे मोह मे पडकर राजा कहते हो यह बात
यदि न मानी मम आज्ञा तो छोडूगी मै साथ।
अपने प्रण को पूर्ण जानकर लग्न किया साक्षात्।।12।।

नैमित्तिक से जान बात सब आये जह्नु महाराज
सत्कारित हो शान्तनु राजा, गगा लाये राज।
बडी उमग से किया महोत्सव, तब रानी के काज।।13।।

गगा दूरदिर्शनी थी। उसने राजा की प्रतिज्ञा सुनकर उनसे कहा– महाराज मेरी धृष्टता को क्षमा करे। विवाह थोडी देर का सोदा नहीं है। वह जीवन भर का पवित्र गठबधन है। विवाह के बाद पति–पत्नी पर एक गभीर उत्तरदायित्व आ पडता हे। अतएव विवाह से पहले ही सब बाते स्पष्ट हो जानी चाहिए। मैं सोचती हू कि आप कहीं मेरे रूप पर मोहित होकर ही तो यह प्रतिज्ञा नहीं कर रहे हैं? आप जैसे प्रतापशाली नरेश अन्यथा क्यो पत्नी के वश मे रहना स्वीकार कर रहे हैं? अनेक सुन्दरिया आपकी रानी बनने की अभिलाषा रखती होगी। फिर भी आप पत्नी के अधीन रहने की प्रतिज्ञा कर रहे हैं, यही मेरी शका का कारण है। मैं चाहती हू, आप अपनी प्रतिज्ञा के विषय मे फिर एक बार विचार कर ले। यह आप निश्चय समझ ले कि जिस दिन आपकी यह प्रतिज्ञा भग होगी, उसी दिन मैं राजमहल त्याग कर चल दूगी।,

प्राय पुरुषो की अपेक्षा स्त्रिया अपने वचन की पक्की होती हैं। पुरुष बोलते भी देर नही करते, और बदलते भी देर नही करते।

गगा का कथन सुनकर राजा विचारने लगा–गगा कितनी निस्पृह ओर कितनी दृढ है? उसकी दृढता से प्रकट है कि यह विषयभोग की कीट नही हे। इसी कारण यह अपनी प्रतिज्ञा के लिए पति को त्यागने की बात कहती है पर प्रतिज्ञा को नही त्यागना चाहती।

राजा ने प्रकट मे कहा–राजकुमारी इसमे तो सदेह नही कि में तुम्हारे सोन्दर्य पर मुग्ध हुआ हू। तुम्हारा शारीरिक सोन्दर्य असाधारण हे यह तो साफ दिखाई दे रहा है। पर शारीरिक सोन्दर्य की अपेक्षा भी एक विशिष्ट सौन्दर्य तुम्हारे अन्त करण मे है, जिसे में देख सका हू। वाह्य सोन्दर्य की अपेक्षा तुम्हारा आन्तरिक सोन्दर्य ही मुझे अधिक मुग्ध वना रहा हे। में असली ओर नकली सौन्दर्य की पहिचान जानता हू। असली सौन्दर्य अन्तर से उत्पन्न होता हे और वह अन्तरग तथा वहिरग को प्रकाशमान वना देता हे। वाह्य सोन्दर्य मे यह विशेषता नही होती। इसलिए यह सच हे कि में तुम्हारे सोन्दर्य पर मुग्ध हुआ हू, लेकिन इसमे मेरा अपराध क्या हे? अगर किसी का अपराध हा भी तो वह तुम्हारे सौन्दर्य का ही हो सकता हे। राजकुमारी! मन जा प्रतिज्ञा की है उसमे किसी प्रकार का स्वार्थ नही हे। वह मतलव निकालन की चाल नहीं

है उसमे विषय–वासना की प्रधानता नही है। मैने हृदय से प्रतिज्ञा की है। मेरु चाहे डिग जाए मगर मै अपनी पतिज्ञा से नही डिग सकता।

इतने मे राजा जह्नु भी अचानक वहा आ पहुचे। दूसरी ओर शान्तनु के अन्य साथी भी आ गये। जह्नु राजा ने सब वृत्तान्त सुना और अपना निर्णय दे दिया कि गगा की पतिज्ञा पूर्ण हो गई है। उन्होने गगा की सम्मति ली बाद मे उसकी महाराज शान्तनु के साथ विवाह–विधि सपन्न हुई।

गगा को पाकर शान्तनु बहुत पसन्न हुआ। वह कहने लगा उस मृग ने मेरा बडा उपकार किया है जो मुझे इस ओर ले आया। लोग कहने लगते हैं– यह बुरा हुआ वह बुरा हुआ परन्तु क्या बुरा है और क्या भला है– यह कहना इतना आसान नही है। किस बुराई मे कौन–सी अच्छाई छिपी हुई है यह जान लेना बडा कठिन है। जो होता है सो भले के लिए ही होता है। यह लोकोक्ति एकदम मिथ्या नही है। उस मृग के भाग जाने की बदौलत मुझे मृगाक्षी गगा की पाप्ति हुई। अब मेरे लिए यह उचित होगा कि मैंने जो वचन दिया है उसका पूर्ण रूप से पालन करू।

राजा शान्तनु पत्नी के वश मे रहने की अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहता है इस पर आप विचार करे। आप स्त्री से पतिव्रत पालने की अपेक्षा करते हैं पर कभी यह भी सोचा है कि स्त्री के लिए पतिव्रतधर्म है तो पुरुष के लिए पत्नीव्रत भी धर्म कहा गया है। पति अगर स्वामी है तो पत्नी क्या स्वामिनी नही है? पति अगर मालिक कहलाता है तो पत्नी क्या मालकिन नही कहलाती? ऐसी दशा मे पत्नी के प्रति आपका क्या कर्त्तव्य है और आपको किस प्रकार पत्नीव्रत का पालन करना चाहिए? इन प्रश्नो पर आप शातचित्त से विचार कीजिए।

पति और पत्नी मे से किसे किसके अधीन रहना चाहिए इस सबध मे कोई एकान्त निर्णय नही किया जा सकता। पति और पत्नी का दर्जा बराबर है तथापि दोनो मे जो अधिक बुद्धिमान हो उसकी आज्ञा कम बुद्धिमान को मानना चाहिए। ऐसा करने से ही गृहस्थी मे सुख–शाति कायम रह सकती है।

4 पावन प्रतिज्ञा

जैसे मेघ विद्युत से शोभा पाता है उसी तरह राजा शान्तनु गगा के साथ शोभा पाने लगा। शान्तनु के साथी वर–वधू को हाथी पर सवार कर हस्तिनापुर लाये। हस्तिनापुर मे सर्वत्र राजा शान्तनु के विवाह की चर्चा होने लगी। जितने मुह उतनी बाते। कोई कहता– महाराज को क्या सूझा कि वनवासिनी से विवाह कर लिया। कोई कहता– महाराज का ही नहीं हम सबका भी अहोभाग्य समझना चाहिए कि हमे गगा देवी सरीखी तपस्या करने वाली रानी प्राप्त हुई है। ऐसी पवित्रात्मा के योग से प्रजा मे भी सुख और शाति बढेगी।

कोई कहता– भाई, और तो सब ठीक हे लेकिन महाराज का विवाह जगल मे हो गया, यह ठीक नहीं हुआ। हम लोग विवाह के उत्सव को देखना चाहते थे सो हमारी चाह यो ही रह गई।

कोई उत्तर देता हुआ कहता–तुम उत्सव के लिए ही रो रहे हो मगर महाराज और महारानी की ऊची भावना को क्यो नही देखते? जब महाराज ने भी वन मे विवाह–सस्कार कर लिया तो प्रजा पर इसका क्या प्रभाव पडेगा? यही न कि सादगी से और बिना आडम्बर ही ऐसे कार्य कर लेने चाहिए।

राजा शान्तनु का यह वन–लग्न आजकल की विवाह की वृथा व्यय वाली पद्धति पर क्या प्रकाश डालता है यह विचारणीय बात है। आज विवाहो मे जो खर्च किया जाता है उसके कारण समाज के अधिकाश लोगो को अत्यन्त कठिनाई उठानी पडती है। उनके लिए शादी बर्बादी बनी हुई हे। अधिकाश लोग इतने तग हो जाते हें कि उनके यहा जान क्या आती हे मानो उनकी जान निकलने लगती है। राजा शान्तनु एक बडा राजा था फिर भी उसने सादगी के साथ शादी की थी। लेकिन आज आपका काम अग्रेजी बाजो के बिना नही चल सकता। इस प्रकार की खर्चीली पद्धति के कारण समाज की बडी हानि हो रही है।

राजा शान्तनु शिकार खेलने गया था। वह न बारात सजाकर ल गया था और न विवाह के लिए बहुमूल्य सामग्री साथ ले गया था। अतएव सक विवाह कितनी सादगी से सम्पन्न हुआ होगा। ओर विवाह करने म कतनी देर लगी होगी? राजा के इस विवाह के साथ आजकल क विवाहा की तुलना तो कीजिए।

हस्तिनापुर के लोग भिन्न–भिन्न पकार के विचार पकट करने लगे। मगर अधिकाश की सम्मति यही रही कि यह आदर्श विवाह है। जैसे वर वैसी ही वधू। महाराज इतने दिनो तक अविवाहित रहे मगर आज तक कभी किसी की बहू–बेटी को बुरी नजर से नही देखा। इसी पकार गगा देवी ने भी इतने दिनो तक बह्मचर्य पाला है। अतएव यह विवाह शुभ है और राजा का शुभ विवाह पजा के लिए भी शुभ होता है। इसलिए आशा की जाती है कि इस विवाह से जगत का कल्याण होगा।

राजा शान्तनु पजा को आनन्द देने वाला था। उसके साथ गुणवती गगा के जुड जाने से सोने मे सुगन्ध की कहावत चरितार्थ होने लगी। सुन्दर मणि–काचन–सयोग हो गया। पजा कहने लगी–सबध तो बहुत होते है पर यह अनूठा सबध बडा ही उत्तम है।

पति और पत्नी के दो–दो हाथ और पैर मिलकर चार हाथ और चार पैर हो जाते हैं। पति और पत्नी ने मिलकर अगर अच्छे काम किये तब तो वे चतुर्भुज अर्थात् ईश्वरीय रूप हो जाते हैं। अन्यथा चतुष्पद यानि पशुरूप बन जाते हैं। किसी आदमी की निन्दा करनी होती है तो उसे गधा कहा जाता है। लेकिन गधे की निन्दा क्यो? निन्दनीय व्यक्ति को गधा कहना क्या गधे का अपमान नही है? बेचारा गधा बोझ लादने के समय कितना शात रहता है? ऐसी दशा मे बुरा काम करने वाला आदमी गधे के समान भी कैसे रहा?

शान्तनु के साथ रहती हुई गगा शान्तनु के चरित्र का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगी। पत्नी दूसरो के कहने से ही पति के चरित्र को अच्छा या बुरा नही मान लेती है वरन वह स्वय उसके चरित्र का अभ्यास करती है। गगा भी अपने पति के चरित्र का अभ्यास करने लगी। वह सोचती थी कि मेरे सौभाग्य से ही मुझे ऐसे पति मिले हें मगर मेरे और इनके सहयोग से कोई विशेष अच्छा कार्य होना चाहिए। अभ्यास करते–करते उसे मालूम हुआ कि पति मे अनेक गुणो के साथ एक दुर्गुण भी है और किसी प्रकार उसे दूर करना चाहिए। वह मृगया का अवगुण है जो अन्य गुणो के साथ शोभा नही देता। अगर किसी तरह वह दूर हो जाय तो बहुत कल्याणकारी होगा।

इस प्रकार विचारकर और अवसर देखकर वह शान्तनु के पास गई और नम्रतापूर्वक हाथ जोडकर खडी हो गई। शान्तनु ने उससे कहा–कहो क्या इच्छा है?

> निर अपराधी वन पशुओ का मृगया खेलन काज।
> करते हो तुम घात राय यह मुझे है आती लाज।।
> कहा रानी ने करो प्रतिज्ञा सजू न मृगया–साज।।14।।

शान्तनु के प्रश्न के उत्तर मे गगा ने कहा—महाराज! मेरी इच्छा तो यह है कि मैं अपनी इच्छा पर ही विजय प्राप्त करू, किन्तु अभी तक ऐसी शक्ति मुझे प्राप्त नही हो सकी है। एक वात कई दिनो से मेरे दिमाग मे घूम रही है। आज आपके सन्मुख रखना चाहती हू। मेरी समझ मे यह नहीं आता कि जगल के निरपराध पशुओ ने आपका क्या बिगाड किया है जिससे आप उन पर चढाई करते हैं। वे मुह मे तृण दबाए रहते हैं फिर भी आप उन्हे मार डालते हैं। ऐसा उनका क्या अक्षम्य अपराध है? बडे से बडा अपराध करने वाला भी अगर तृण मुह मे दबा लेता है, तो उसे क्षमा किया जाता है। ऐसी दशा मे मृगो के वध का क्या कारण है? आप जैसे न्यायनिष्ठ महान नृपति के लिए यह अन्याय शोभा नही देता। आत्मा जैसे मनुष्य मे है, वैसे ही पशुओ मे भी है। फिर क्या कारण है कि हमारे सद्व्यवहार की, नीति की और शिष्टाचार की सीमा मानवजाति तक ही समाप्त हो जाय? क्यो न वह पशु–पक्षी एव कीट–पतग तक भी फैले?

गगा का भावपूर्ण कथन सुनकर राजा बोले—देवी! तुम भावुक हो। होना ही चाहिए, क्योकि भावुकता स्त्रीजाति का सहज गुण है। मगर भावुकता से पुरुषो का काम नही चल सकता। उनमे यथोचित निष्ठुरता भी चाहिए। विशेषत राजाओ मे तो उसका होना आवश्यक भी माना जाता है। कीडी और कुजर मे भी आत्मा की समानता प्रकट करके तुमने दर्शनशास्त्र की अभिज्ञता प्रकट की है, मगर मेरा प्रत्यक्ष सबध राजनीति–शास्त्र से है। जहा दोनो शास्त्र एक दूसरे के विरुद्ध हो, वहा राजा का क्या कर्त्तव्य होगा? वह दर्शनशास्त्र पर आख मूदकर विचार करेगा अथवा राजनीतिशास्त्र का अनुसरण करके अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा?

गगा—नाथ! स्त्रीजाति का सहज गुण होने के कारण ही भावुकता क्या पुरुषजाति के लिए अवगुण सिद्ध हो सकता हे? भावुकता हृदय की एक सवेदनाशील वृत्ति है। हृदय क्या स्त्रियो मे ही होता हे पुरुषो मे नही होता? या उन्हे हृदयहीन होना चाहिए? स्त्री और पुरुष मे मोलिक अन्तर न होने के कारण एक का गुण दूसरे का अवगुण नही बन सकता। रही निष्ठुरता की वात सो शासन–मार्ग मे कभी–कभी निष्ठुर कार्य करना पडता होगा फिर भी ,ुरत की आवश्यकता नही हो सकती हे।

शान्तनु—क्या कहती हो! निष्ठुरता के बिना ही निष्ठुर कार्य हो सकत है?

गगा–जी हा यही तो कह रही हू। चिकित्सक जब ऑपरेशन करता है तो ऊपर से ऐसा जान पडता है मानो वह कसाई को मात कर रहा हो। मगर उसके हृदय मे भी क्या निष्ठुरता होती है? निष्ठुर कार्य करते हुए भी चिकित्सक का हृदय तनिक भी निष्ठुर नही होता। यही बात शासन–कार्य के सबध मे कही जा सकती है।

शान्तनु–देवी! तुम फिर दर्शनशास्त्र की गहराई मे उतर रही हो।

गगा–सो तो उतरना ही पडेगा। बिना दर्शनशास्त्र के मनुष्य–समाज अधा नही हो जायेगा? दर्शनशास्त्र मनुष्य–समाज का पथ–दर्शक है। दर्शनशास्त्र को मानव–जीवन से जुदा नही किया जा सकता। आप जिस राजनीतिशास्त्र का उल्लेख करते है वह क्या है? वह दर्शन का ही एक अग तो है। ऐसी स्थिति मे दोनो का विरोध जहा दिखाई पडता हो वहा समन्वय–बुद्धि का अभाव समझना चाहिए। विरोध के विष का मथन करके उसमे से अमृत निकालने की कला हमे सीखनी होगी। इस कला के अभाव मे ही अनेक विरोधाभास विरोध बनकर हमारी बुद्धि को विकृत एव भ्रान्त बना देते हैं। ससार के इतने मत–मतान्तर किस बुनियाद पर खडे हैं? इनकी बुनियाद है सिर्फ समन्वय–बुद्धि का अभाव। अगर हम विभिन्न दृष्टिकोणो मे से सत्य का स्वरूप देखने की क्षमता पाप्त कर ले तो जगत के एकान्तवाद तत्काल विलीन हो जाएगे और वह विलीन होकर भी नष्ट नही हो जाएगे वरन् एक अखड और विराट सत्य को साकार बना जाएगे। नदिया जब असीम सागर मे विलीन होती है तो वह नष्ट नही हो जाती वरन सागर का रूप धारण कर लेती हैं। इसी पकार एक दूसरे से अलग–अलग प्रतीत होने वाले दृष्टिकोण मिलकर विराट सत्य का निर्माण करते है। शास्त्रो मे सत्य को भगवान् कहा है और भगवान की स्तुति मे यह कहा गया है–

उदधाविव सर्वसिन्धव समुदीर्णास्त्वयि नाथ! दृष्टय ।

अर्थात–हे नाथ! जैसे समुद्र मे समस्त नदिया मिल जाती है उसी पकार तुममे सब दृष्टिया दृष्टिकोण समाविष्ट हो जाते हैं।

इससे स्पष्ट है कि उचित समन्वय के यत्र मे ढलकर जब विरोधी मालूम होने वाले–पर जो वास्तव मे विरोधी है नही ऐसे विचार एक दूसरे के साथ मिलते है तभी सम्पूर्ण परिपूर्ण सत्य का ठीक स्वरूप बनता है। दर्शनशास्त्र और राजनीतिशास्त्र के विरोध को भी हम इस प्रकार दूर कर सकते है। पर जाने दीजिए इस गहराई मे हम न उतरे। हम अपनी मूल बात पर ही आ जाते है।

मै आपसे शिकार के विषय मे निवेदन कर रही थी। इस विषय मे तो राजनीति ओर दर्शन का कोई विरोध भी नही हे। राजनीति शिकार का समर्थन नही करती। ऐसी स्थिति मे दोनो के विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता।

शान्तनु— देवी! आखिर ये पशु किस काम के हे? मे वन मे जाकर और उन निरर्थक पशुओ को मारकर अपनी वीरता जागृत करता हू, अपना स्वास्थ्य अच्छा रखता हू और वल बढाता हू। इसलिए शिकार खेलने मे कोई हर्ज नही है।

गगा—महाराज! कौन जीवधारी किस काम का हे या निरर्थक हे इसका निर्णय करना सरल नही हे। मनुष्यो के लिए अगर मृग निरर्थक हैं तो मृगो के लिए क्या मनुष्य निरर्थक नही हें? निरर्थकता और सार्थकता की कसौटी मनुष्य का स्वार्थ होना उचित नही है। मानवीय स्वार्थ की कसौटी पर किसी की निरर्थकता का निर्णय नही किया जा सकता। मृग प्रकृति की शोभा हैं। उन्हे जीवित रहने का उतना ही अधिकार है जितना मनुष्य को। क्या समग्र विश्व का पट्टा किसी ने मनुष्य—जाति के नाम लिख दिया? अगर नही तो जगली पशुओ को सुख—चैन से क्यो न रहने दिया जाये?

आप कहते हैं कि पशुओ को मारने से वीरता जागृत होती हे। मे नम्रतापूर्वक यह जानना चाहती हू कि वीर पुरुष की वीरता का उपयोग क्या है? अगर वीरता निर्बलो और असहायो की सहायता के लिए नही बल्कि सहार के लिए है तो ऐसी वीरता जगाने से वीरता न जगाना ही अधिक उचित हे। सत्पुरुषो की वीरता रक्षा मे हे प्राणियो के सहार मे नही। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य—रक्षा की वात भी आपने कही हे। पर स्वास्थ्य—रक्षा के उचित उपाय दूसरे वहुत है। अपने मनोरजन के लिए दूसरो के प्राण लेना उचित नही कहा जा सकता। यह क्रम वहुत खतरनाक भी हे। कभी प्रजा पर भी यह क्रम आ पडेगा।

किसी कवि ने मृग की ओर से कहा हे—

पदे पदे सन्ति भटा रणोत्सुका।
न तेषु हिसारस एव पूर्यते।।
धिगीदृश ते नृपते! कुविक्रम।
कृपायते य कृपणे मृगे मयि।।

अर्थात—हे महाराजा! युद्ध के लिए उत्सुक याद्धा आपका पद—पद पर मिल सकते ह। उन पर अपना हिसा करन का शाक पूरा कर लीजिए।

मगर हम–जैसे लाचार मृगो पर अपना पराक्रम दिखलाना धिक्कार के योग्य है। ऐसा पराक्रम कुपराक्रम है।

आप लोग भी एक प्रकार से राजा है। आपके अधीन जो पशु और मनुष्य रहते हैं, उन पर आपका अधिकार है। आप क्या उन पर दया करते है? घर मे गाय भूखी बधी रहे उसे समय पर खाना–पीना न दिया जाय या पर्याप्त खाना–पीना न दिया जाय तो कौन पाप का भागी होगा? शास्त्र मे कहा है कि भोजन–पानी का विच्छेद करना पाप है। तो क्या आपको यह पाप नही लगेगा? इसी प्रकार किसी पर शक्ति से अधिक बोझ लादना भी पाप है। अगर पशु पर अधिक भार लादना पाप है तो मनुष्य पर अधिक बोझ लादना क्या पाप नही है? फिर भी क्या आप अपने नौकरो के विषय मे यह विचार रखते है? उन पर काम का ज्यादा बोझा तो नही डालते? सुना है कि कलकत्ता मे मुनीमो पर कार्य का बोझ इतना अधिक रहता है कि उन्हे कठिनाई से चार–पाच घन्टा सोने का समय मिलता है। जब उन्हे बहुत ज्यादा नीद सताने लगती हे तो वही के वही गद्दी पर लुढके रहते हैं और फिर जल्दी उठ बैठते है। क्या यह पाप नही है? नौकरो से इस प्रकार अधिक काम लेना सर्वथा अनुचित है।

कल्पना कीजिए, किसी गाडी मे दो बछडे जुते हुए हैं। आप रास्ते मे पैदल चल रहे हैं। गाडीवान ने आप से कहा कि आप पेदल क्यो चलते है? गाडी मे आकर बैठ जाइए। गाडीवान किसी कारण से ऐसा कहता है, कि लेकिन उस समय आप क्या सोचेगे? क्या आप यह नहीं सोचेगे कि गाडी मे छोटे–छोटे बछडे जुते है। उन पर पहले ही पूरा बोझ लदा है। फिर मैं कैसे बैठ जाऊ? धर्मशास्त्र तो अति भार लादने को पाप कहता ही है, लेकिन आजकल का सरकारी कानून भी उसे अपराध मानता है। इसलिये सरकार ने नियम बनाया है कि तागे मे तीन या चार से ज्यादा मनुष्य न बैठे। ऐसा होते हुए भी जिस तागे मे पहले ही चार आदमी बेठे हो, उस तागे का मालिक आपको बिना किराया लिए अगर बैठने को कहे तो आप क्या करेगे? क्या उस समय आप यह सोचेगे कि यहा कौन–सी सरकार देखने बैठती है? अगर कोई देख भी लेगा तो निपट लेगे। पकडा जाएगा तो तागे वाला पकडा जायेगा। हमारा कोई क्या बिगाड लेगा? अगर आप इस प्रकार सोचकर तागे मे बैठ गए तो पाप आपको लगेगा या नही? कदाचित सरकारी जुर्म से बच भी गये तो क्या पाप से भी बच जाएगे? सच्चा श्रावक सदेव इस बात का विचार

रक्खेगा और इस प्रकार कभी तागे मे नही बेठेगा। यही नही बल्कि ज्यादा बैठने वालो को भी वह मना करेगा।

और गाडी मे छोटे बछडो को जोतने के समान ही बाल–विवाह करना भी पाप है या नही? अपरिपक्व उम्र के बालक ओर बालिका पर विवाह का बोझ लाद देना क्या उचित कहा जा सकता हे? जहा ऐसे बच्चे गाडी मे जोते गये हो, उस गाडी मे बेठना अर्थात उस विवाह मे सम्मिलित होकर लड्डू खाना क्या योग्य है?

बालक किसे माना जाय यह विवादग्रस्त बात हो सकती हे। गाधीजी ने तो यहा तक लिखा है कि यदि लडकी का विवाह चोदह वर्ष से कम उम्र मे हुआ है तो वह विवाह, विवाह ही न माना जाय ओर ऐसी विधवा को विधवा ही न समझा जाय। अगर में भी ऐसा कहू तो क्या आप मानेगे? इसलिए इस बारीकी मे न उतर कर इतना कहना पर्याप्त होगा कि ऐसी गाडी मे बैठना पाप है।

गगा कहती है–नाथ, आप बेचारे पशुओ को मारते हें पर उनका क्या अपराध है? आप उन पर दया कीजिए। उन्हे मारिये मत। कदाचित आप यह सोचे कि लम्बे समय की आदत पडी हुई है। परन्तु मैं निवेदन करती हू कि आप जैसे प्रजा के स्वामी हैं, उसी प्रकार अपनी आदतो के भी स्वामी हें। मै आपसे याचना करती हू कि आप मृगया न किया करे।

महारानी गगा का कथन राजा शान्तनु को युक्तियुक्त लगा। उन्होने यह भी विचार किया कि गगा को मागने का अधिकार हे। में उसकी आज्ञा मानने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हू। इस प्रकार सोचकर राजा ने कहा–'ठीक हे में प्रतिज्ञा करता हू कि मैं आज से मृगया नही करूगा। आज से में निरपराध जीवो का घात नही करूगा। अपराधी को मारने के विषय मे तो तुम कुछ कहती नही हो इसलिए उसकी बात अलग हे।

5 भीष्म का जन्म

गगा की पेरणा से शान्तनु ने किसी भी निरपराध जीव की हिसा न करने की पतिज्ञा की। महाभारत मे कहा है कि शान्तनु राजा के राज्य मे कोई पशु–पक्षियो की भी हिसा नही करता था। यद्यपि शान्तनु को पहले मृगया का व्यसन था लेकिन गगा की पेरणा से उसने इस व्यसन का त्याग कर दिया था और वह जीवो का रक्षक बन गया था। इस पतिज्ञा के कारण शान्तनु मानो कलक से मुक्त हो गया। वह ऐसा जान पडने लगा जैसे राहु के ग्रहण के बाद चन्द्रमा पकाशित हुआ हो। उसकी कीर्ति चारो ओर फैल जाती है जैसे चन्द्रमा का पकाश चारो ओर फैल जाता है। लोग कहने लगे–हमे अभी तक अर्थ और काम ही सुखदायक मालूम पडते थे मगर राजा शान्तनु को देखने से समझ मे आया है कि अर्थ और काम तो अनर्थ के मूल हैं। असली सुख देने वाला तो धर्म ही है।

जब किसी मनुष्य मे सुबुद्धि जागृत होती है तो वह अर्थ और काम को हीन समझने लगता है और धर्म का कभी अपमान नही होने देता। पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज कहा करते थे कि अगर किसी के पास धन और धर्म दोनो रह सकते हो तो भले रहे। लेकिन दोनो मे से एक के जाने का समय आये तो उस समय धन भले ही चला जाय मगर धर्म को नही जाने देना चाहिए। परन्तु आज लोगो की क्या दशा है? आठ आने के लिए ही लोग क्या असत्य बोलने को तैयार नही हो जाते? ऐसा करने वाला धन को बडा मानता है या धर्म को? धर्म का त्याग करके ग्रहण किया हुआ धन टिक नही सकता। धर्म तो गया ही है तब धन भी गये बिना नहीं रहेगा। इस प्रकार अन्त मे दोनो से ही हाथ धोना पडेगा। इसके विपरीत अगर धर्म को पकड कर रखा जायेगा तो गया हुआ धन भी बिना आये नही रह सकता। वस्तुत धर्म के त्याग मे कल्याण नही है। कल्याण तो धर्म की आराधना मे है। धर्म के प्रेमी की प्रतिज्ञा होती है।

सिर जावे तो जावे मेरा सत्य–धर्म नही जावे।

धर्म का सोदा सिर के बदले मे होता है। धर्म का पालन वही कर सकता है जिसमे धन तो क्या प्राण जाने पर भी धर्म का त्याग न करने का साहस होता है। मर्यादा–पुरुष रामचन्द्र और सत्यवीर हरिश्चन्द्र की कथाए इसी लिए प्रसिद्ध हे। कहा जा सकता है कि रामचन्द्र ओर हरिश्चन्द्र ने सत्य के लिए अनेक कष्ट सहन किये यह कथन काल्पनिक भी हो सकता है ओर

जनता को सत्य की ओर आकर्षित करने के लिये ये कथाए गढ ली होगी। मगर ऐसा समझना भूल है। धर्म के लिए कष्ट सहने वाले विशिष्ट पुरुष सदा से होते आये हैं। पौराणिक काल मे भी हुए हैं ओर समीपवर्ती ऐतिहासिक काल मे भी हुए है।

इतिहास से विदित होता हे कि सम्राट औरगजेब के समय मे भारत मे धर्म पर सकट आ गया था। औरगजेब कट्टर सम्प्रदायवादी था। उस समय सिक्ख–गुरु तेगबहादुर ने तथा उनके अनुयायी अनेक लोगो ने क्या कम कष्ट सहन किये थे?

मजहबी कानून के अनुसार औरगजेब ने सोचा–काफिरो को मुसलमान बनाना जरूरी है। मगर जब तक लोगो को अन्न का कष्ट नहीं होता तब तक उन्हे मुसलमान बनाना आसान नहीं है। अन्न का कष्ट बडा जबर्दस्त होता है। उससे घबराकर लोग जल्दी मुसलमान हो जाएगे। ऐसा सोचकर उसने अन्न का दुर्भिक्ष फैलाने का निश्चय किया। अपना इरादा पूरा करने के लिए बादशाह ने कुछ सेना काश्मीर भेजी और हुक्म दे दिया कि सेना वहा जाकर फसल पर अधिकार कर ले। जो लोग मुसलमान होना स्वीकार करे उन्हे फसल ले लेने दी जाय और जो मुसलमान होना स्वीकार न करे उन्हे न लेने दी जाए। उनकी फसल जब्त कर ली जाय। सेना ने यही किया। लोग परेशान हो गए। धर्म पर दृढ रहने वाले सभी तो होते नही है और न सब धर्म के लिए सब कुछ सहन ही कर सकते हैं। इसलिए बहुत से लोग इस अन्न–सकट के कारण मुसलमान हो गए।

अपने कार्य मे सफलता मिलती देखी तो बादशाह को और लोभ हुआ। उसने सोचा–लोगो को मुसलमान बनाने का यह उत्तम उपाय हे। बस सेना भेज दी जाय और साथ मे काजी–मुल्ला को भेज दिया जाय तो इस्लाम का अच्छा प्रचार होगा।

बादशाह ने दूसरी बार पजाब मे सेना भेजी। पजाब के लोग मुसीबत से घबराकर सिक्खो के गुरु तेगबहादुर के पास पहुचे। उनसे बोले–धर्म पर ऐसा विकट सकट आया है। आप हम लोगो की रक्षा कीजिए। गुरु तेगबहादुर ने उत्तर दिया–तुम लोग बादशाह को जुल्म करने के लिए उत्साहित करत हो। अगर एक भी आदमी मे साहस हो तो वह सब म तेज भर सकता हे। अगर तुम लोगो को धर्म की रक्षा करनी है तो एक काम करा। बादशाह स यह कह दो कि आप हम लोगो को व्यर्थ ही परेशान करते ह। अगर हमारा गुरु तेगबहादुर मुसलमान हो जायेगा तो लाखा–करोडो आदमी विना जुल्म

किये ही मुसलमान हो जाएगे। तुम्हारे ऐसा कहने पर वह मुझे मुसलमान बनाने को ललचाएगा। इससे आगे मै स्वय समझ लूगा।

लोगो ने बादशाह को ऐसा ही कहला दिया। बादशाह ने सोचा—यह ठीक है। किसी उपाय से गुरु तेगबहादुर को मुसलमान बना लिया जाय। उसने तेगबहादुर को जल्दी दिल्ली पहुचने का बुलावा भेज दिया।

औरगजेब ने मजहब के नाम पर बहुत जुल्म किया था। वह समझता था कि मै बहुत अच्छा कर रहा हू, मगर वास्तव मे उसके जुल्मो के कारण मुगल—सल्तनत दिन—पतिदिन गिरती जा रही थी। मुगल साम्राज्य अस्त हो रहा था। औरगजेब के बाद जो बादशाह हुए वे नाम मात्र के बादशाह हुए। जब अत्याचार बढता है तो यही परिणाम होता है। रावण का अत्याचार जब बढ गया तो वह उसका परिवार और उसका राज्य मिट ही गया। जहा अन्याय है वहा नाश है ही।

बादशाह का बुलावा आने पर गुरु तेगबहादुर दिल्ली जाने के लिए तैयार हुए। उनके अनुयायियो ने कहा—बादशाह जुल्मी है। वह आपको जीवित नही आने देगा। इसलिए आपका वहा जाना ठीक नही है।

गुरु तेगबहादुर ने कहा—मुझ जैसे किसी का सिर जाने पर ही लोगो मे जागृति आएगी। बलिदान बिना जनता मे तेजस्विता नही आ सकती। इस समय धर्म—रक्षा के लिए बलिदान की आवश्यकता है। मेरे बलिदान से धर्म की रक्षा होगी। इस पर भी तुम मुझे रोकते हो तो गुरु नानक का कथन याद करो। वे कह गये हैं कि मेरे समान सात आदमियो का बलिदान होने पर ही कल्याण होगा। अब तुम्ही बताओ कि मैं गुरु की आज्ञा मानू या अपनी जान बचाऊ?

सिख अपने गुरु की आज्ञा के बहुत पाबद होते हैं। इसलिए वे आगे कुछ न बोले। आखिर गुरु तेगबहादुर दिल्ली गये बादशाह से मिले। बादशाह ने उनके सामने बडे—बडे प्रलोभन रखे। गुरु तेगबहादुर ने कहा—सब चीजो की अपेक्षा मेरा धर्म बडा है। मैं ससार की किसी भी चीज के लिए अपना धर्म नही त्याग सकता।

जब प्रलोभन हार गया तो धमकिया आरम्भ हुई। बादशाह ने कहा—अगर सीधी तरह मान जाओगे तो ठीक है वर्ना जबर्दस्ती तुम्हारे मुह मे गाय का गोश्त ठूस दिया जायेगा। अगर तुम मे कोई चमत्कार हो तो बतलाओ।

तेगबहादुर ने कहा—चमत्कार बतलाना बाजीगरो का काम है। ईश्वर के भक्त चमत्कार नही बतलाया करते। वे यह मानते है कि यह सारा ही

ससार चमत्कारमय है। इसलिए मुझसे ओर कोई चमत्कार की आशा मत कीजिए। हा एक ही चमत्कार मैं दिखला सकता हू। वह यह कि अवसर आने पर धर्म की रक्षा के लिए किस प्रकार प्रसन्नता के साथ प्राण दिये जा सकते है।

बादशाह ने कहा—यह वडा हठी है। शहर के चौराहे पर खडा करके इसे कत्ल कर दिया जाय।

गुरु तेगबहादुर अगर अपना धर्म छोड देते तो उन्हे लाखो—करोडो की सम्पदा मिलती। धर्म का त्याग न करने की अवस्था मे प्राणो से हाथ धोना पड रहा है। अब सोचना चाहिए कि उन्हे इन दोनो मे से क्या करना चाहिए था?

आज तो लोग थोडे से लाभ के लिए भी धर्म को छोड बैठते हैं। दो—चार आने के लिए झूठ बोलने मे सकोच नही करते। लेकिन गुरु तेगबहादुर ने इतनी सम्पति का लोभ नही किया और न प्राणो की ही परवाह की। वास्तव मे ऐसी दृढता होने पर ही धर्म का पालन किया जा सकता है।

अन्त मे सिखगुरु तेगबहादुर का सिर बाजार के बीच चोराहे पर काट डाला गया। बादशाह का ख्याल था कि तेगबहादुर को इस प्रकार कत्ल करने से बहुत—से लोग डर के मारे मुसलमान बन जाएगे। किन्तु परिणाम कुछ और ही हुआ। तेगबहादुर के बलिदान से जनता मे तेज आ गया। लोग अपने धर्म की रक्षा करने मे दृढ हो गए।

तात्पर्य यह है कि धर्म के लिए नाना प्रकार के कष्ट उठाने वाले लोग सदा होते आये हैं। उनकी टेक यही हे—

सिर जावे तो जावे मेरा सत्यधर्म नही जावे।

ऐसी घटनाए समय—समय पर होती ही रहती हे। अतएव यह केसे कहा जा सकता है कि राम ओर हरिश्चन्द्र की कथाए हमारे ऊपर दवाव डालने के लिए ही काल्पनिक लिखी गई हे? इसलिए सत्य ओर धर्म का पालन करो तथा अहिसा की असीम शक्ति प्राप्त करो।

राजा शान्तनु को देखकर लोग कहने लगे कि अर्थ ओर काम ता गौण हें मुख्य वस्तु तो धर्म ही हे। इस प्रकार कहते हुए लोगो ने शान्तनु का ़भिनन्दन करते हुए कहा—इस समय आपके समान धर्मपालक राजा शायद ़ी कोई हो। जनता से यह अभिनन्दन पाकर शान्तनु न सोचा—यह रानी का ही प्रताप हे। यह सोचकर शान्तनु गगा का ओर अधिक सम्मान करन लग।

आश्वासन दे कर रानी को लगे राज के काज।
निशा समय मे स्वप्न मे देखा रानी ने मृगराज।
शुभ समय मे सुत जन्मा है गगकुवर महाराज।।15।।

गगा और शान्तनु आनन्द मे समय व्यतीत कर रहे थे। उस समय पजा मे यह भावना हो रही थी कि ऐसे दयालु और प्रजापालक महाराजा के यहा पुत्र का जन्म हो तो अच्छा है जिससे हमारी सस्कृति की रक्षा हो सके। इसी समय राजा के मन मे भी पुत्र की इच्छा हुई। रानी गगा ने भी विचार किया–पतिदेव मेरा इतना सम्मान करते है। इस ऋण से मुक्त होने के लिए वह शुभ समय कब आएगा, जब मै उन्हे पुत्र–रत्न का उपहार दे सकूगी।

भावना मे प्रबल शक्ति होती है। भावना की अदृश्य शक्ति का महत्व बहुत अधिक है। इसीलिए ज्ञानीजन भावना–शुद्धि पर बहुत बल देते है। यह उक्ति भी प्रसिद्ध है–

यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी।

जिसकी जैसी भावना होती है उसे वैसी ही सफलता मिलती है। स्वार्थ की भावना से दूसरी तरह का काम होता है और परमार्थ की भावना से दूसरी तरह का। शान्तनु और गगा दोनो की ही भावना थी कि एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हो तो अच्छा है। पुत्र शब्द की व्युत्पत्ति है–**पुनातीति पुत्र**

अर्थात जो अपने पिता के धर्म को उज्ज्वल करे वही पुत्र है।

सब की भावना फली या आने वाले प्राणी के पुण्य ने काम किया, यह कौन कह सकता है? यह भी कैसे कहा जा सकता है कि दोनो का प्रभाव न हुआ हो? कारण कुछ भी हो एक रात गगा ने स्वप्न मे बडे केसरी सिह को अपने मुख मे प्रवेश करते देखा। यद्यपि गगा स्वय भी स्वप्नशास्त्र को जानती थी फिर भी वह अपनी ही बुद्धि पर अवलबित नही रही। वह अपने शयनागार से उठकर शान्तनु के शयनागार मे गई।

इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल मे पति और पत्नी का एक ही बिस्तर पर सोना तो दूर रहा, दोनो एक शयनागार मे भी नही सोते थे। वास्तव मे पति–पत्नी की अत्यधिक समीपता हानिकारक ही सिद्ध होती है। जैसे आग पर घी रखने से घी का सत्व नष्ट हो जाता है उसी प्रकार अत्यधिक समीपता से पति–पत्नी का सत्व भी नष्ट हो जाता है। ब्रह्मचर्य की महिमा जानने वाले और मर्यादा का पालन करने वाले विवेकी लोग सदेव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हे कि उनकी शक्ति का निरर्थक ओर अमर्यादित क्षय न होने पावे।

जब महारानी गगा ने शान्तनु के शयनागार मे प्रवेश किया तो धीमी आहट से भी शान्तनु की नीद खुल गई। राजा ने आनन्दपूर्वक गगा को भद्रासन पर बिठलाया और स्वस्थ होने देकर पूछा–आज इस समय आने का क्या कारण है?

रानी–प्राणनाथ! आपकी जय हो विजय हो। मैं आपसे जो सम्मान पा रही हू वह ऋण के रूप मे वढता जाता है। आपके इस ऋण को मैं चुकाने मे असमर्थ हू, यद्यपि पुत्र के रूप मे उसका ब्याज चुकाना चाहती हू। मेरी यह कामना फलवती होती जान पडती है। अभी मैने स्वप्न मे देखा है कि एक केसरी सिह मेरे मुख मे घुस गया है।

स्वप्न का वृत्तान्त सुनकर महाराज शान्तनु को प्रसन्नता हुई। उन्होने गगा से कहा–वल्लभे! यह स्वप्न शुभ है। इस स्वप्न के फलस्वरूप तुम्हे राज्य, धन और पुत्र की प्राप्ति होगी।

रानी को राज्य आदि की प्राप्ति होगी तो क्या राजा को नही होगी? फिर राजा ने ऐसा क्यो कहा है कि तुम्हे राज्य धन और पुत्र की प्राप्ति होगी? यद्यपि प्राप्ति तो राजा को भी होगी लेकिन राजा ने रानी को प्रधानता दी है। जब जिसे सम्मान देना होता है तब उसे प्रधानता दी जाती है।

राजा का कथन सुनकर गगा को बडी प्रसन्नता हुई। वह मन ही मन सोचने लगी–पति का मुझ पर कितना अनुग्रह है कि वे मुझे इस तरह सम्मानित करते हैं। इस प्रकार विचार करती हुई वह अपने शयनागार मे लौट आई।

पहले राजा मृगया का शौकीन था मगर गगा के ससर्ग से उसकी यह आदत बदल गई। इस कारण सब लोग उसकी प्रशसा करके कहने लगे–इस धर्मात्मा राजा के यहा धर्मात्मा पुत्र हो तो अच्छा। जेसे समय पर वर्षा होने से सब को आनन्द होता हे उसी प्रकार सबकी भावना के अनुसार गगा ने सिह का स्वप्न देखकर गर्भधारण किया ओर गर्भ का काल समाप्त होने पर एक तेजस्वी और लक्षणसम्पन्न पुत्र को जन्म दिया। पुत्र के जन्म से शान्तनु ओर गगा को तो हर्ष हुआ ही किन्तु प्रजा को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। राज्य मे घर–घर ऐसा उत्सव मनाया जाने लगा मानो प्रत्येक घर मे ही पुत्र भा हो। लोग कहने लगे–

गगा और समुद्र के सगम को तीर्थस्थान समझा जाता ह। इसी ।र गगा ओर शान्तनु के सगम से जो पुत्र उत्पन्न हुआ हे वह भी लागा आनन्द देने वाला होगा–शान्तनु समुद्र के समान हे आर गगा उ ह गगा

के समान मिली है। इस कारण यह भी एक सजीव तीर्थ हो गया है। इस तीर्थ का फल जगत का कल्याण करने वाला हो तो आश्चर्य ही क्या है?

कहा जा सकता है–गगा का जल मीठा और समुद्र का खारा होता है। गगा का जल समुद्र मे मिलता है तो वह भी खारा बन जाता है। ऐसी दशा मे गगा समुद्र के सगम को तीर्थ क्यो माना जाता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है– जैसा सुना है उसके अनुसार और जैसा पढा है उसके अनुसार गगा की धारा तीव्र वेग वाली होती है। इस कारण वह समुद्र को भेद कर दूर तक समुद्र मे चली जाती है। खारे पानी मे मीठे पानी की तह मिलने से जहाज वालो को कितना आनन्द होता है, यह सभी समझ सकते है। इस प्रकार समुद्र मे प्रवेश करने के बाद भी गगा का मीठा पानी मीठा ही बना रहता है, इसी कारण शायद गगा–सागर–सगम को तीर्थ माना जाता है। जो खारे मे रहकर भी मीठा बना रहता है वह तीर्थ क्यो न हो?

सब लोग कहने लगे–शान्तनु और गगा से जो पुत्र उत्पन्न हुआ है वह मानो समुद्र मे से रत्न निकला है। जैसे सागर मे गगा के मिलने से सागर का सम्मान बढा है उसी तरह गगा के मिलने से शान्तनु का भी सम्मान बढा है।

गगा का चरित्र स्त्री–समाज के लिए उपादेय है। उन्हे समझना और ध्यान देना चाहिए कि पति से मिलकर उन्होने यदि पति का सम्मान बढाया तब तो अपने स्त्री–धर्म का पालन किया है अन्यथा नही।

जैसे अधे को आख मिलने से और निपूते को पुत्र मिलने से आनन्द होता है उसी प्रकार हस्तिनापुर मे राजा–प्रजा को आनन्द हुआ। शान्तनु के यहा पुत्र होने से सबका हृदय अपार हर्ष से पुलकित हो गया। पुत्र–जन्म के उपलक्ष्य मे शान्तनु ने खूब आमोद–प्रमोद के साथ उत्सव मनाया और दान देकर याचको को अयाचक बना दिया।

6 पति का परित्याग

पुत्ररत्न पाकर गगा मानो निहाल हो गई। उसकी चिर आकाक्षा सफल हुई। शान्तनु ओर गगा अभिन्न–हृदय तो थे ही, दोनो के हृदयो को जोडने वाली एक कडी और वन गई। राजा और रानी प्रसन्नता ओर आनन्द मे अपने–अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए दिन व्यतीत करने लगे।

सब दिन समान नही रहते। जैसे जड प्रकृति क्षण–क्षण पलटती रहती है उसी प्रकार मानव प्रकृति भी प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती हे। परिवर्तन चाहे किसी को इष्ट हो चाहे अनिष्ट हो, शुभ हो या अशुभ हो, वह होता ही है। ससार की कोई भी शक्ति उसे रोक नही सकती। और सच तो यह है कि परिवर्तन मे ही गति है, प्रगति है विकास है सिद्धि हे। जहा परिवर्तन नही वहा प्रगति को अवकाश भी नहीं है, वहा एकान्त जडता है स्थिरता है, शून्यता है। अतएव परिवर्तन जीवन है और स्थिरता मृत्यु है। परिवर्तन के आधार पर ही विश्व का अस्तित्व है। ऋतु–परिवर्तन न हो तो क्या परिणाम निकलेगा? मानव–जीवन मे अवस्थाओ का परिवर्तन अगर न होता तो क्या स्थिति होती? वस्तुत परिवर्तन होना आवश्यक हे। अगर आवश्यक न हो तो भी अनिवार्य है।

इस प्रकार परिवर्तन के चक्र पर चढा हुआ सारा ससार घूम रहा हे। लेकिन मनुष्य मोह के वश होकर किसी परिवर्तन को सुखद ओर कल्याणकारी मान लेता है और किसी को दु खद एव अकल्याणकारी। कोई भी नेसर्गिक परिवर्तन मनुष्य से पूछकर नही होता। वह मानवीय इच्छा से परे हे। ऐसी स्थिति मे मनुष्य को उचित तो यह हे कि वह मध्यस्थ भाव से परिवर्तन को देखता रहे और समभाव धारण करे। किन्तु कवि के शब्दो मे मनुष्य चाहता है–

जग के पदार्थ सारे, वर्ते इच्छानुसार जो मेरी।
तो मुझको सुख होवे, पर ऐसा हो नही सकता।।

ससार के सब पदार्थ अगर मनुष्य की इच्छा पर चलने लगे तो मनुष्य राजी रहे। 'पर ऐसा हो नही सकता।' अतएव मनुष्य के लिए सुख का एक मार्ग रह जाता हे ओर वह यह हे कि किसी भी प्रकार के परिवर्तन के समय का परित्याग न करे। अगर विभिन्न परिवर्तनो म वह राग–द्वप करेगा तो उसे सुख–दु ख मे झूलना ही पडगा। आज पेस भर सुख ानुभव करेगा तो कल रुपया भर दु ख आकर उस विहवल वना दगा।

अतएव जो परिवर्तन होता है वह होता है, उसमे हर्ष–विषाद करने की आवश्यकता नही। गगा ने इस तथ्य को समझ लिया था।

मृगया–रसिको के कहने से राजा चढे शिकार
महारानी ने आ समझाया माना नही विचार।
निज सुत लेकर के गगाजी गई पिता घर द्वार।।16।।

राजा शान्तनु के पास कुछ ऐसे बुरे लोग भी थे जो शिकार के शौकीन थे। अच्छा राजा भी बुरे लोगो की सगति से बुरा बन जाता है। कुसगति के प्रभाव को कौन नही जानता? कुसगति से अच्छे–अच्छे बिगड कर मिट्टी मे मिल गये है। शक्कर मीठी होती है और मिर्च तीखी होती है। शक्कर खीर मे और मिर्च शाक मे डाली जाये तो दोनो सुधर जाते है। अगर इसके विपरीत किया जाये तो दोनो बेकाम हो जाते है। इसी प्रकार बुरे के ससर्ग से अच्छा भी बुरा बन जाता है।

राजा शान्तनु के पास रहने वालो ने उससे कहा–महाराज, कुछ विचार कीजिए। आप निरन्तर महल मे ही निवास करते हैं, कभी बाहर नही जाते इस कारण आपका तेज कम हो गया है। आपके शरीर मे पहले जैसी तेजस्विता नही रही। पहले तो महारानी नई आई थी, इसलिए हम आपसे कुछ कह नही सकते थे लेकिन अब तो राजकुमार का भी जन्म हो गया है। अतएव अब महारानी की ओर से सन्तोष कीजिए और अपने शरीर के स्वास्थ्य की ओर ध्यान दीजिए। आपके विषय मे लोग तरह–तरह की बाते करते हैं। इस अपवाद को मिटाना भी आवश्यक है। कहावत है–

यद्यपि शुद्धम् लोकविरुद्धम्,
न हि करणीय न हि चरणीयम्।।

कोई काम भले शुद्ध हो अगर वह लोक–विरुद्ध है तो नही करना चाहिए। आपके कानो तक तो बात पहुच नही पाती मगर लोग आपस मे कहते है–राजा पहले कैसे थे और अब कैसे हो गये है। रानी की गुलामी करते–करते थकते ही नही। कभी मृगया के लिए भी तो बाहर नही निकलते। यह लोकापवाद आपके लिए बहुत अपमानजनक है। अतएव आप महल मे ही न घुसे रहे वरन मृगया के लिए वन मे पधारे। इससे आपका स्वास्थ्य भी सुधरेगा और लोकापवाद भी दूर हो जायेगा।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि पत्नी को पति की आज्ञा मे रहना चाहिए अथवा पति को पत्नी की आज्ञा मे रहना चाहिए– इस प्रकार का कोई एकान्त नियम नही बनाया जा सकता। इस विषय मे नीति यही कहती है कि

जिसमे ज्यादा बुद्धि हो उसी की आज्ञा मे दूसरे को रहना चाहिए, चाहे अधिक बुद्धि वाला पति हो या पत्नी हो। यह नही समझना चाहिए कि स्त्री छोटी होती है या उसमे बुद्धि नही होती। अतएव पुरुष स्त्री के कहने मे केसे रहे? महारानी विक्टोरिया स्त्री ही थी ओर भारत के राजा पुरुष थे। फिर भी राजा उसकी आज्ञा मे रहे या नही? अतएव पुरुषत्व का अभिमान करके यह मत सोचो कि हम पुरुष होकर स्त्री का कहना क्यो माने? स्त्री मे अगर विवेक–बुद्धि अधिक है तो उसका कहना मानने मे ही कल्याण हे। स्त्री मे अधिक बुद्धि होने पर भी उसकी गणना नीच कोटि मे करना स्त्रीत्व का अपमान है ओर पुरुषत्व का मिथ्या अहकार है।

लोगो की बाते सुनकर शान्तनु ने कहा–अगर मैं मृगया को नही जाता तो इसमे अपवाद की क्या बात है? निर्बलो और गरीबो की रक्षा करना मेरा धर्म है। इसी के लिए में राजा हू और पृथ्वीपति कहलाता हू। मैं मृगया न करके अगर अपने धर्म का पालन करता हू तो क्या बुरा करता हू।

लोग बोले–'आप पृथ्वीपति तो पहले भी थे। फिर भी मृगया के लिए जाते थे या नही? मृगया करना तो राजा का कर्त्तव्य है। अतएव आपको उससे परहेज नहीं करना चाहिए। आप चाहे धर्म का विचार करके ही मृगया न करते हो मगर लोग तो यही समझते हैं कि राजा रानी के गुलाम बन गये हैं इसलिये बाहर नहीं निकलते। इसके अतिरिक्त मृगया के लिए चलने पर रानी की परीक्षा भी हो जायेगी। मालूम हो जायेगा कि रानी आपके प्रति कितना प्रेम रखती है। आज तक आपने महारानी जी की बात मानी है वह आपको प्रेम करती होगी तो एक बात आपकी भी मान जाएगी। एक वार मृगया की तैयारी करके देख तो लीजिए कि रानी क्या कहती हे ओर क्या करती हे?

इस प्रकार अनेक वाते कहने–सुनने से अथवा भवितव्य के वश होकर राजा उन लोगो के जाल मे फस गया। उसने साचा–जाने ओर न जान की बात फिर सोचेगे एक बार तेयारी करके देखे तो सही कि रानी क्या कहती और क्या करती हे? इस प्रकार विचार कर उसने मृगया की तेयारी करने की आज्ञा दी। उसने अपनी प्रतिज्ञा की भी उपेक्षा कर दी। राजा की आज्ञा क अनुसार तैयारी होने लगी। जो लोग पहले मृगया म राजा के साथी थे वे राजा के आस–पास घूमने लगे।

मृगया की तेयारी के समाचार गगा का मालूम हुए ता वह चकित रह । सोचने लगी–इतने दिनो वाद महाराज फिर वन क गरीव जानवरा का के लिए उद्यत हो गए हें। जान पडता ह उन्ह अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण

नही रहा। ऐसा होना सम्भव भी है। राजा लोग भूल जाया करते है। अतएव एक बार जाकर महाराज को पतिज्ञा का स्मरण करा देना चाहिए।

गगा महाराज शान्तनु के पास पहुची। नम्रता के साथ उसने कहा—महाराज! आज मृगया की तैयारी कैसी? क्या वन के दीन पशुओ ने आपका कुछ अपराध किया है कि उन्हे मार डालने की तेयारी की हे? आपने निरपराध जीवो की हिसा करने का त्याग किया है।

राजा ने उत्तर दिया—महारानी, तुम महल के काम देखो, हम लोगो के काम मे पडना उचित नही है। हमारे कार्य मे हस्तक्षेप करना ठीक नही।

राजा का उत्तर सुनकर गगा दग रह गई। वह मन मे सोचने लगी—आज महाराज का मिजाज दूसरा ही मालूम होता है। इसके बाद वह बोली—महाराज! मैं केवल महल की रानी ही नही हू, आपकी धर्मपत्नी भी हू। आपके धर्म की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। इस कारण पूछती हू कि आज आपने मृगया की तैयारी केसे करवाई है?

राजा बोला—धर्म की बात में स्वय समझता हू। तुम समझाने का कष्ट मत करो।

गगा सोचने लगी—यह तो श्मशान—वैराग्य ही हुआ। राजा अपनी प्रतिज्ञा की उपेक्षा करते जान पडते हैं। 'राजा मित्र केन दृष्ट श्रुत वा? अर्थात् किसी ने राजा को भी मित्र होते देखा या सुना है, यह उक्ति आज चरितार्थ हो रही है। लेकिन कुछ भी हो एक बार फिर समझाना चाहिए। यह सोचकर गगा ने कहा—

वैरिणोऽपि हि मुच्यन्ते, प्रापन्नास्तृणभक्षणात्।
तृणाहारा सदैवैते, हन्यन्ते पशव कथम्।।

अर्थात—महाराज! मुह मे तिनका दबाने वाले बेरी को भी छोड दिया जाता हे—उसको भी नही मारा जाता तो जो पशु सदेव तृण ही खाते है उन्हे मारना कैसे उचित कहा जा सकता है? अतएव आप दीन पशुओ पर चढाई मत कीजिए।

अधिकार मिल जाने पर मनुष्य को अधिक कार्य करना चाहिए।
अधिकमधिक कार्य करोतीति—अधिकारी।

इसके विरुद्ध अधिकार पाकर जो यह सोचता है कि मेरा कोई क्या बिगाड सकता है ओर ऐसा सोचकर जो अन्याय पर उतारू हो जाता हे उसके लिए अधिकार 'धिक्कार' बन जाता हे।

शान्तनु का गगा पर जब तक परिपूर्ण अधिकार नही था तब तक पर उसे ऊची दृष्टि से देखता था। जब गगा उसकी पत्नी हो गई और उसके

पुत्र भी हो गया इस प्रकार उसका गगा पर पूरा अधिकार हा चुका तो उसे यह अभिमान आ गया कि गगा अव क्या कर सकती हे? इस अभिमान के कारण उसने गगा के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा की भी उपेक्षा कर दी। फिर भी गगा उसे समझाने का प्रयत्न कर रही हे।

गगा ने कहा—महाराज! आपने मेरी आज्ञा मे रहने की प्रतिज्ञा की थी। मैने उसी समय कहा था कि पुरुष स्वार्थ के वश मे होकर प्रतिज्ञा कर लेते हैं और स्वार्थ सिद्ध होने पर बदल जाते हैं। क्या आप भी ऐसे पुरुपो की श्रेणी मे जाना चाहते हैं? अगर आप अपनी प्रतिज्ञा भग करना ही चाहे तो आपकी इच्छा। मगर गगा प्राण देकर भी अपनी प्रतिज्ञा निभायेगी। जिस क्षण आप अपनी प्रतिज्ञा भग कर देगे, उसी क्षण मुझे अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिए आपका महल छोडकर चला जाना पडेगा। आप भूले न होगे, आपने कहा था—मेरु चाहे डिग जाय, किन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा से नही डिग सकता। इस प्रकार दृढता के साथ की हुई प्रतिज्ञा और मुझे दिये वचन के विरुद्ध आज आप निर्दोष वन—पशुओ को मारने की तैयारी कर रहे हैं?

गगा का यह निर्भीक कथन सुनकर राजा विचार मे पड गया। पुरानी सब बाते उसके मस्तिष्क मे घूम गई। वह कुछ ढीला पडा। लेकिन जब उसने सोचा कि मृगया की तैयारी हो चुकी हे। अब अगर मैं नही जाता हू और रुक जाता हू, तो लोगो का यह कहना पुष्ट हो जायगा कि राजा रानी का सेवक है। इसके अतिरिक्त मुझे रानी की परीक्षा भी करनी थी। मालूम हुआ कि रानी का स्वभाव ज्यो का त्यो बना है। उसमे तनिक भी परिवर्तन नही हुआ। जब रानी अपना स्वभाव नही बदलती तो में भी अपना स्वभाव क्यो बदलू?

इस प्रकार लोकापवाद की कल्पित भीति से ओर पुरुपत्व के मिथ्या अभिमान से प्रेरित होकर शान्तनु चुपचाप वहा से चल दिया ओर मृगया के लिए रवाना हो गया।

साधारण स्त्री के लिए यह विकट समस्या थी। एक ओर प्रतिज्ञा हे और दूसरी ओर पति राजमहल के सुख ओर आमोद—प्रमोद हें। वह किरा छोडे ओर किसे पकडे? मगर गगा असाधारण स्त्री थी। उसने दुविधा म अपने मन को उलझने ही नही दिया। जब वह राजमहल मे अकेली रह गई ता मन मन उसने निश्चय कर लिया—महाराज ने अपनी प्रतिज्ञा भग की हे मगर प्रतिज्ञा भग नही होने दूगी। में जिस महल मे आदर क साथ रही निरादरपूर्वक नही रह सकती। में सूखे पान की तरह यहा नही पडी सकती। म विषयभोग की दासी नही हू। अतएव मुझ शीघ्र अपन पिता

के घर चल देना चाहिए। स्त्री के लिए दो ही स्थान है–पति का घर और पिता का घर। जब पति के घर आदर न हो तो पिता के घर के अतिरिक्त और कौन–सा स्थान रह जाता है?

शान्तनु अपनी पतिज्ञा से च्युत हो गया था लेकिन गगा पतिज्ञा पर दृढ थी। गगा भी अपनी पतिज्ञा भूल गई होती तो शायद यह कथा ही न रची गई होती। जब तक पति या पत्नी मे मे कोई एक ही भूला रहता है तब तक तो गनीमत रहती है मगर जब दोनो भूल जाते है तो स्थिति बहुत खराब हो जाती है।

गगा पिता के घर जा पहुची। पिता राजा जहु ने सारा वृत्तान्त सुनकर उसका सम्मान किया और कहा–पुत्री चिन्ता मत करना। तेरी भावना पति का कल्याण करने की है इसलिए सब प्रकार मगल ही होगा। दूसरे कुछ भी कहे हमे तो अपना हृदय टटोलना चाहिए।

7 फिर वनवास

पत्नी–पुत्र से शून्य महल मे जब आये राजान
क्या करना औ कहा पर जाना, नही शान्ति का स्थान।
प्रिया–पुत्र बिन आज महल यह लगता मुझे श्मशान।।17।।
रानी ने मुझको समझाया नही मानी मै बात।
हुआ लाभ यह रानी पुत्र सह छोड गई साक्षात्।
अपने ही हाथो से मैने, किया कुठाराघात।।18।।
कुछ दिन चिन्तित रहे राजवी, सहचारी समझाय,
राजकाज मे लगे न चित, तो प्रिया पुत्र के माय।
किसी तरह से मन बहलाते, अपना काल बिताय।।19।।

महारानी गगा के चले जाने के पश्चात राजा आखेट करके वन से लौटा। उसके प्रशसक प्रशसा के पुल बाध रहे थे। कोई कहता– आज आपने गजब की वीरता दिखलाई।

दूसरा कहता–आखिर तो महाराज क्षत्रिय है। क्षात्रतेज सदा सोता नही रहता।

तीसरा कहता–महाराज को यही करना उचित था। आज शरीर मे और मन मे नवीन ही स्फूर्ति मालूम होती होगी।

इस प्रकार की चापलूसी–भरी बाते सुनकर भी राजा का चित्त शान्त नही था। भीतर ही भीतर कही कोई डक मार रहा था। वह अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हो चुका है। यह बात उससे भूलते नही बन पा रही थी। उसने रानी की निर्भय बाते सुनी थी। रानी की प्रतिज्ञा की अटलता पर भी उसे विश्वास था। वह आगे आने वाली घटनाओ का चिन्तातुर होकर विचार कर रहा था।

आखिर आते ही वह राजमहल मे चला गया। उसकी सम्भावना साकार हो उठी। उसने देखा–महल सूना पडा हे।

दासियो से पूछने पर मालूम हुआ–महारानी अपने पुत्र के साथ चली गई है और अपने पिता के घर गई हे।

यह जानकर शान्तनु के चित्त को केसा आघात लगा यह नही कहा जा सकता। वह मन ही मन कहने लगा– आह! गगा तून गजब किया। मुझ नही मालूम था कि तू बात की इतनी पक्की हे! मन समझा था जेस मुझ विषयभोग प्रिय हे उसी प्रकार तुझे भी होगे। लेकिन मन समझन म भूल की। तूने अपनी प्रतिज्ञा के सामने मेरी राजसम्मान की आर सुख की भी अपक्षा नहीं की। तू सर्वस्व–त्याग कर चलती बनी।

राजा इस पकार दु खपूर्ण पश्चात्ताप् करने लगा। राजमहल उसे श्मशान के समान जान पडने लगा। वह कहने लगा--अगर गगा मिल जाती तो मै भविष्य के लिए फिर प्रतिज्ञा कर लेता। मगर उसने तो पतीक्षा ही नही की। इसमे उसका दोष भी क्या है? पतिज्ञा से भ्रष्ट तो मै हुआ हू। मेरे मन मे पुरुष होने का अहकार उत्पन्न हुआ। मेने सोचा कि मै राजा हू और रानी के कहने मे कैसे रहू? इस अहकार ने मुझे कही का न रहने दिया। गगा इतनी निस्पृह है यह कौन जानता था?

इस प्रकार रानी के चले जाने से राजा को अत्यन्त विषाद हुआ। वह उदासीन रहने लगा। दूसरे लोगो को भी राजा की उदासीनता का पता चला। उसके साथी समझाने लगे–प्रभो! आप रानी के जाने से दुखित क्यो होते हें? रानीजी को भी तो आपका विचार करना चाहिए था। परम्परा के अनुसार उन्हे आपकी आज्ञा मे रहना चाहिए था। पति की आज्ञा मे रहना पत्नी का कर्त्तव्य है। रानी ने अपना कर्त्तव्य–पालन नहीं किया। उन्होने आपकी जरा भी परवाह नही की। अगर ऐसी रानी चली गई तो इसके लिए दु ख मानने की क्या आवश्यकता है? आपकी यह स्थिति दूसरे राजा जान पाएगे तो आपकी हसी होगी और उनका साहस बढ जाएगा। अतएव किसी प्रकार की कायरता न धारण करके धैर्य रखिए।

मित्रो के समझाने–बुझाने से राजा राज्य–कार्य करने लगा। फिर भी उसका मन सदा रानी और पुत्र मे ही लगा रहता था। वह यही सोचता रहता कि धर्म अप्रतिबद्धता मे हे किसी व्यक्ति–विशेष मे नही। पुरुष होकर भी मैं अपनी पतिज्ञा से भ्रष्ट हो गया और स्त्री होने पर भी गगा ने अपनी कठिन प्रतिज्ञा पाली।

सच तो यह है कि त्याग और वैराग्य के बिना प्रतिज्ञा का पालन नही होता। गगा विषय–भोग मे लिप्त नही थी। भोगो के प्रति उसके हृदय मे एक पकार की सहज विरक्ति थी। इसी कारण अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिए उसने महान त्याग किया। उसने सोचा– महाराज अपनी प्रतिज्ञा तोडते हैं तो तोडे, मे नही तोडूगी। जो होता है भले के ही लिए होता है। सम्भव हे मेरे लिए त्याग का अवसर आ गया हो। ऐसा सोचकर उसने ससार के बडे से बडे सुख की उपेक्षा कर दी।

राजा के मन मे आया अगर गगा को मनाकर ले आऊ तो कैसा रहे? पर उसे साहस नही हुआ। सोचता कोन–सा मुह लेकर गगा के पास जाऊ। वह मेरे वायदे पर भी किस पकार विश्वास करेगी? राजा की आखो के सामने

गगा की मूर्ति साकार–सी वनी रहती ओर रानी के मधुर शव्द उसके कानो मे गूजा करते थे।

पश्चाताप करने से भी पाप कम होता है। भविष्य मे उस पापकर्म मे प्रवृत्ति नही होती, जिसके लिए घोर पश्चात्ताप किया जाता है। किन्तु अधिकाश लोग यह भूल करते हैं कि वे अपनी भूल को भूल ही नही मानते। यही बहुत बडी भूल है। भूल न होने देना उत्तम है किन्तु जव भूल हो जाये तो उसे छिपाने का प्रयत्न करना भी हानिकारक है। रोगी अपना रोग छिपाने का प्रयत्न करेगा तो परिणाम क्या होगा?

इधर गगा ने सोचा–मैं पति को त्याग आई हू और पुत्र को भी साथ ले आई हू। पुत्र राजकुमार है, इसे उसके योग्य शिक्षा मिलनी चाहिए। अगर मैने उसकी समुचित शिक्षा का प्रबन्ध न किया तो मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत होऊगी। कहा भी है–

माता शत्रु पिता वैरी, येन बालो न पाठित ।

वह माता और पिता बालक के शत्रु हैं जो अपने बालक को अनपढ रखते हैं। इस नीतिवाक्य से यह ध्वनित होता है कि बालक की शिक्षा की जिम्मेदारी माता पर भी है और पिता पर भी है। दोनो का कर्त्तव्य है कि वह बालक को सुशिक्षित बनावे।

इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि शिक्षा के नाम पर कही कुशिक्षा न आ जाय। शिक्षा न देना सन्तान के विकास को रोकना है ओर कुशिक्षा देना उसके विकास को विपरीत मार्ग पर ले जाना हे। मान लीजिए किसी की आखो पर पर्दा आ गया है। वह अगर डाक्टर के पास न जायेगा तो पर्दा हटेगा नही। पर्दा हटाने के बाद डाक्टर की सहायता लेनी होगी। पर्दा हट जाने के बाद डाक्टर सावधान कर देगा कि तुम्हारी आखो का पर्दा कुए मे गिराने के लिए नही हटाया गया है। इसलिए हटाया गया हे कि तुम रास्ता देखकर चलो ओर कुमार्ग से बचो। कोई डाक्टर यह सोचकर आखो का पर्दा हटाने से इन्कार नही कर सकता कि ऐसा करने से यह कुए मे गिर जायगा। इसी प्रकार शिक्षा देने का उद्देश्य मनुष्य को सन्मार्ग सुझा देना हे। शिक्षक का उचित है कि वह अपने शिष्य को सावधान कर दे कि शिक्षा पाकर तुम्हे अपना [illegible]निष्ट नही करना हे वरन् कुमार्ग से बचकर सन्मार्ग पर चलना हे। मगर [illegible] कही कुमार्ग पर न चला जाय यह साचकर उसे शिक्षा स वचित रखना उचित नही।

आजकल शिक्षा के विषय मे बडी भूल की जा रही है। शिक्षा के उद्देश्य के सबध मे गहराई से विचार नही किया जाता। देखना चाहिए कि शिक्षा नौकरी के लिए है अथवा आत्मा की उन्नति के लिए है? शिक्षा का उद्देश्य आज नौकरी मिलना मान लिया गया है। अगर अच्छी नौकरी न मिले तो समझा जाता है कि शिक्षा व्यर्थ हो गई। मगर शिक्षा की सफलता नोकरी मे नही है। आत्मिक विकास शिक्षा का पधान ध्येय होना चाहिए।

गगा ने पहले-पहले स्वय ही अपने पुत्र को शिक्षा दी। मातृशिक्षा साधारण चीज नही हे। वह बालक मे गहरे सस्कार डालती है। बालक मे धीरता भर देती है। शिवाजी के विषय मे कहा जाता है कि वे राजकुमार नही थे फिर भी माता की शिक्षा के पभाव से उन्होने आश्चर्यजनक वीरता पदर्शित की और हिन्दू धर्म के रक्षक कहलाए। माताए चाहे तो आज भी अनेक शिवाजी बन सकते हैं। लेकिन ऐसा करने के लिए उन्हे अपना स्वार्थ त्यागना पडता हे। माताए स्वय अज्ञान के अन्धकार मे भटक रही हैं। वे बालको को नाना पकार के भय दिखलाकर डरपोक बनाती हैं। ऐसा करके वे समझती हें कि चलो काम निकला। उन्हे मालूम नही कि बालक के कोमल हृदय मे भय के सस्कार कितने गहरे बैठ जाते हैं और किस पकार बालक के समस्त जीवन मे उनका पभाव बना रहता है। कहा जाता है कि जापान का पाच वर्ष का बालक रात्रि के भयकर अधकार मे श्मशान मे जा सकता है। लेकिन हमारे यहा चालीस वर्ष का युवक भी ऐसा करने मे भयभीत होगा। कोई कह सकता ह कि हमे अपन लडके को राजा तो बनाना नही हे और न युद्ध करने के लिए भेजना है। फिर इस पकार की सीख की क्या आवश्यकता है? उन्हे अपने पूर्वजो की ओर ध्यान देना चाहिए। पालित श्रावक के लडके को क्या युद्ध करना था? वह क्या राजकुमार था? फिर उसके पिता ने उसे युद्धकला क्यो सिखलाई थी? जिसे पतिष्ठा के साथ जीना है उसे स्वय अपनी रक्षा करने की शक्ति पाप्त करनी चाहिए। जो आत्मरक्षा नही कर सकता अपने आश्रित जनो की रक्षा नहीं कर सकता वह इज्जत के साथ जीवित नही रह सकता। अपनी जान बचाने के लिए दूसरो का मुह ताकना मनुष्यता नहीं यहा तक कि पशुता भी नही हे। पशु भी अपनी और अपने आश्रित की रक्षा करने का पूरा प्रयत्न करता ह। कायरता मनुष्य का बडा कलक है। तेजस्वी पुरुष प्राण दे देता ह पर कायरता नही दिखलाता।

मृत्यु कोई अनहोनी वस्तु नही हे। वह जीवन मे अनिवार्य पसग है। जो पुरुष मरण-भय को जीत लेता ह उसी मे वीरता होती है। जो मरने से

डरता है उसमे कायरता होगी वीरता नही आ सकती। सच्चा वीर मृत्यु को खिलोना समझता है। वह मरने से नही डरता ओर जो मरने से नही डरता वही सच्चा वीर है। जो मृत्यु का आलिगन करने के लिए तत्पर रहता हे उसे मारना किसी के लिए भी आसान नही है। वास्तव मे वही जीवित रहता हे जो मृत्यु की परवाह नही करता। मरने से डरने वाले तो मरने से पहले ही मरे हुए के समान हैं। गगा ने अपने पुत्र को वीरता की ऐसी सुन्दर शिक्षा दी।

पितृगृह रहते गगा ने किया पुत्र विद्वान्।
पवनवेग मामा के द्वारा, विद्या मे बलवान।।
धनुर्वेद आदि शिक्षा मे प्रगटे पूर्ण विधान।।20।।

गगा ने अपने पुत्र मे वीरता के ऐसे सुन्दर सस्कार डाले कि किसी भी समय उसमे कायरता न आने पावे। उसने यह भी सिखाया कि शरीर धर्म की रक्षा करने के लिए हे, धर्म का नाश करने के लिए नही।

इस प्रकार की शिक्षा दे चुकने के पश्चात् गगा ने अपने भाई पवनवेग से कहा—आप विद्या मे श्रेष्ठ माने जाते हैं। लेकिन आपकी श्रेष्ठता इसमे हे कि आप अपने भानजे को भी अपने ही समान बना ले। आप ही अपने को इसका माता—पिता समझे और इसे विद्या मे पारगत करे।

पवनवेग ने कहा—गगा वहिन तुमने मुझे बहुत सुन्दर काम सोंपा है। में उन मूर्खो मे नही हू, जो अपनी विद्या नष्ट हो जाने देते हें मगर दूसरो को नही सिखलाते। में तो किसी योग्य शिष्य की खोज मे ही था। अतएव तुमने मुझे प्रिय काम सोंपा हे।

सिहबाल से हस्तिबाल ज्यो पाता है बहुत्रास।
गगानन्दन से भी त्यो सब नन्दन हुए उदास।।
घर झगडे को देख सतीजी किया जगल मे वास।।21।।

बालक मे जैसे सस्कार डाले जाए पड सकते हें। गगा की शिक्षा से गगकुमार मे भी वीरता के सस्कार पडे। वचपन के सस्कारा के सवध म मेंने एक घटना सुनी थी। वह घटना उसी गाव की हे जिसम मरा जन्म हुआ था। वह इस प्रकार हे—

उस ग्राम (थादला) म ईसाइयो ने एक मिशन—हाऊस खाला ह। उसमे ईसाई लोग भीलो के लडको को ईसाई वनाकर रखत ह। वहा उन वालका पर ऐसे सस्कार डाल जात ह कि जसा पादरी वालता ह वसा ही व लडके भी वोलने लगते ह। व पादरी क गान म ही अपना स्वर मिलात ह। अपने यहा जव प्रार्थना वाली जाती ह ता काई किसी तरफ खींवता ह काइ

किसी तरफ। कोई किसी स्वर मे गाता है कोई किसी स्वर मे। लेकिन वे बालक पादरी के स्वर मे ही स्वर मिलाते है। इसका कारण यही है कि अपने यहा इस विषय की शिक्षा नही दी जाती और उन्हे शिक्षा दी जाती है। भीलो के कई लडके लिख–पढकर अमेरिका भेजे गये और शेष यही है। पतिवर्ष उनकी सख्या बढ रही है।

क्या आपके यहा ऐसा होता है? आपके यहा दूसरो को गिराने वाले बहुत मिल जाएगे लेकिन गिरे हुए को उठाने वाले बिगडे को सुधारने वाले कोई विरले ही होगे।

गगा ने गगानन्दन को अच्छी शिक्षा दी। गागेय राजपुत्र था। उसमे स्वाभाविक तेज था और फिर उसके मामा पवनवेग ने उसे धनुर्विद्या मे कुशल बना दिया था। इसलिए अब उसके तेज का कहना ही क्या था। वह बडा वीर भी था। वह ऐसा ओजस्वी और तेजस्वी बालक निकला कि कोई भी विद्याधर–बालक उसकी समता नही कर सकता था।

लडको मे और बडे–बूढो मे भी एक दुर्भावना होती है जिससे लोग किसी विशिष्ट गुणवान की समता न कर सकने के कारण उसे दूसरी तरह से गिराने की ही चेष्टा करते हैं। यह दुर्भावना ईर्ष्या कहलाती है। गगाकुमार के पभाव को सहन न कर सकने के कारण विद्याधर बालक उसी प्रकार दु खी होने लगे जैसे सिह के बालक के सामने हाथी का बच्चा दु खी होता है। वे अपने माता–पिता से नित्य ही गगकुमार की झूठी शिकायते करने लगे। वे कहने लगे–अगर गगकुमार यहा रहेगा तो हम नही रहेगे। शिकायत करने वाले बालको के माता–पिताओ ने असलियत की जाच तो की नही और सोचने लगे कि यह उपद्रवी बालक कहा से आ गया है। वे लडको की बातो मे आकर गगाकुमार के विरोधी बन गए। कहने लगे–लडके प्रतिदिन शिकायत करते है और सभी लडके शिकायत करते हैं ऐसी स्थिति मे उनकी शिकायत झूठी कैसे हो सकती हे?

ऐसा तर्क प्राय काम मे लाया जाता है। मगर सत्य के विरुद्ध बोलने वाले चाहे जितने आदमी हो और सत्य का पक्ष लेने वाला एक ही क्यो न हो फिर भी सत्य तो सत्य ही रहेगा। जहाज के सभी लोग अरणक के विरुद्ध हो गये थे फिर भी अरणक ने सत्य का त्याग नही किया। वह तो यही सोचता था कि अन्त मे सत्य की ही विजय होती है।

गगकुमार सच्चा और सीधा था फिर भी बहुत से लडके और उनके माता–पिता उसके विरुद्ध शिकायत करने लगे और राजा से कहने लगे कि

भूचर–बालक हमारे खेचर बालको को कष्ट देता हे। अगर आप इसे रखना ही चाहते हैं तो घर मे ही रखिए।

गगा के पिता और भाई सोचने लगे–लोग असलियत का पता लगाते नही सोचते–समझते नही और शिकायत करने को तेयार हो जाते हैं। भाई–बन्दो की बात है। अब क्या उपाय करना चाहिए?

गगा को भी इसका पता चल गया। उसने सोचा–शायद बालक की यहा शिक्षा समाप्त हो चुकी है। इसलिये इसे वन की शिक्षा देनी चाहिए। जो होता हे वह अच्छे के लिए ही होता है। यहा के लोगो की शिकायत भी इस बालक की भलाई के लिए ही साबित होगी। कुछ अच्छा होनहार है शायद इसी कारण यहा के लोग शिकायत कर रहे हे। लोगो को सत्य–असत्य का निर्णय नहीं करना है सिर्फ विद्याधर होने का अभिमान जताना है। उन्हे सोचना तो यह चाहिए था कि हमारे बालक अगर इतने कुशल नही है तो गगकुमार से कला सीखे। मगर उन्होने दूसरा ही रास्ता अख्तियार किया है। वह गगकुमार से उल्टा द्वेष रखते हैं। खैर कुछ भी हो। अब मुझे यहा से चलकर उसी वन मे रहना चाहिए जहा महाराज से प्रथम भेट हुई थी। वहा रहने से किसी प्रकार कलह न होगा शातिपूर्वक जीवन व्यतीत होगा और बालक प्रकृति से सर्वोतम शिक्षा ग्रहण कर सकेगा।

गगा ने अपना विचार महाराज जह्नु के सामने प्रकट कर दिया। वह यद्यपि गगकुमार के पक्ष मे थे फिर भी रोजाना कलह से कुछ–कुछ अकुलाए भी थे। अतएव ऊपर से तो उन्होने कहा–'बेटी, यहा रहना क्या बुरा हे? जगल मे रहने की आवश्यकता क्या हैं? मगर मन मे सोचा–अगर ऐसा हो तो हर्ज भी क्या हे? फिर वह कहने लगे–क्या तुम्हे यह घर अच्छा नही लगता? गगा ने कहा–पिताजी जहा मेरा जन्म हुआ हे, वह घर अच्छा क्यो नही लगेगा? फिर भी मेरा विचार यही हे कि आपको मेरे सबध मे किसी प्रकार की चिन्ता नही करनी चाहिए।

इस प्रकार बातचीत होने के बाद जह्नु ने कहा–अगर तुम्हारी इच्छा हे तो उसी महल मे रहो। में भी समय–समय पर वहा आया करूगा। किसी प्रकार की चिन्ता मत करना ओर जब भी चाहो यहा आ जाना।

पिता की आज्ञा पाकर गगा प्रसन्न हुई। वह उसी वन म रहन लगी जिसमे पहले रहती थी।

8 भीष्म की शिक्षा

निज विद्या की करो साधना रखकर पूरा ध्यान
नैसर्गिक वस्तुए देखकर, लेना उनसे ज्ञान।
ध्यान लगाकर वन मे देखे, चारण मुनि गुणवान्।।22।।

गगा अपने पुत्र को साथ लेकर फिर वनवास के लिए आई। ऐसे समय गगा का हृदय विहल हो सकता था कि मै राजा की पुत्री हू। राजा की पत्नी महारानी हू। फिर भी आज मुझे वनवास करना पड रहा है। मगर कौन जाने गगा का हृदय किस धातु का बना था कि उसे न यह विचार आया ओर न दुख ही हुआ। गगा शान्त पसन्न ओर सन्तुष्ट थी। उसके चेहरे पर व्याकुलता वेदना या विवशता की छाप तक लक्षित नही होती थी।

वास्तव मे जो जानता है, वह किसी भी स्थिति मे अपने आपको दुखी नही मानता है। वह समझता है कि ससार की सम्पदा तो हिडोले की तरह परिवर्तनशील है। वह आती और जाती रहती है। इसके लिए दुख करने की क्या बात है? जहा आना–जाना न हो वह ससार ही कैसा? ऐसी स्थिति मे ससार रूपी हिडोले मे ऊपर चढने पर सुख और नीचे जाने पर दुख मानने की क्या आवश्यकता है? ससार मे एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था होती ही रहती है। अगर उसमे राग–द्वेष का सम्मिश्रण हो गया तो वह सुख–दुख देने वाली होगी। अगर राग–द्वेष का सम्मिश्रण न होने दिया और प्रत्येक अवस्था मे समभाव रखा गया तो कोई भी अवस्था दुख नही पहुचा सकती। दुख से बचने का यही एकमात्र उपाय है।

गगा सोचती है–सीता और द्रौपदी आदि सतिया इस तरह के हिडोले मे बहुत झूली हैं। फिर भी उन्होने दुख नही माना तो मैं क्यो दुख मानू। दुख को दुख मानने पर ही दुख दुखी बना सकता है। अगर दुख को दुख ही न माना जाय तो वह क्या बिगाड सकता है?

जब ससार का स्वभाव ओर स्वरूप ही यह है तो सुख–दुख स्वरूप हिडोले के पलडे को ऊपर–नीचे आते–जाते समय सुख–दुख का सवेदन करने की क्या आवश्यकता हे? आप ससार को एक–सा रखना चाहते है लेकिन ऐसा कदापि नही हो सकता। ससार सदा एकरूप रह ही नही सकता। दूसरे की बात जाने दीजिए राम भी इस ससार को एकरूप नही रख सके तो आपकी क्या बिसात हे? फिर भी लोग समझते हैं कि ससार मानो हमारे बलबूते पर ही चल रहा हे। ऐसी बातो को देखकर नरसी मेहता ने कहा–

हु करू हु करू एज अज्ञानता
शकटनी भार ज्यो श्वान ताणे।

इस प्रकार का अभिमान वृथा है कि ससार मुझ से ही चल रहा हे। भरी हुई गाडी के नीचे चलने वाला कुत्ता अगर अभिमान करता हे कि में गाडी को खीच रहा हू तो आप क्या कहेगे? जेसे कुत्ते का यह अभिमान मिथ्या हे उसी प्रकार ससार को अपने आधार पर चलने का अभिमान करना भी मिथ्या है। ऐसा अभिमान करने वाले न रहेगे, फिर भी ससार इसी तरह चलता रहेगा। सारे ससार को कोई अपनी इच्छा के अनुसार नही ढाल सकता। ऐसी स्थिति मे इष्ट सयोग मिलने पर सुखी और अनिष्ट सयोग पाकर दु खी नही होना चाहिए।

गगा इस तथ्य को भली–भाति समझती थी। अतएव जगल मे रहकर भी उसके मन मे विषाद या खेद नहीं हुआ। वन मे पहुचकर वह सोचने लगी–'वन मे कैसा आनन्द है! न किसी प्रकार का कलह है न क्लेश है'। जो लोग अपनी दृष्टि गगा की दृष्टि के समान मगलमय बना लेते हैं उनके सामने अमगल कभी आता ही नही।

गगा ने गागेय से कहा–यहा तुम्हारा दूसरा कोई गुरु नही हे। तुम्हे आप ही अपना गुरु बनना होगा। अपना विकास आप ही करना होगा। तुमने जो विद्या प्राप्त की हे उसे यहा रहकर स्वतन्त्रतापूर्वक विकसित करो।

गागेय ने कहा–अच्छा माता में ऐसा ही करूगा।

अपने हाथ मे धनुष–बाण लेकर गागेय वन देखने चला। वन मे उसने झाड फूल फल मृग नदी नाले आदि देखे और वह सोचने लगा कि यह सब मुझे क्या शिक्षा देते हैं? वन मे फिरता–फिरता वह एक नदी के किनारे वेठ गया। उसने नदी के सबध मे विचार किया। वह सोचने लगा–अविश्रान्त गति से बहती हुई यह नदी मानो मुझसे कह रही हे–तूने ही अपना घर नही त्यागा हे वरन् मे भी अपने उद्‌गमस्थान–पर्वत को छोडकर आई हू। लेकिन ऐसा करने से मे कल्याणी हुई हू या अकल्याणी इस बात पर विचार कर। मे अपने मेके से चलकर पति (समुद्र) के पास जा रही हू। मार्ग म लोग मुझ नदी कहते हैं। जो लोग मुझे नदी कहते हैं उन्हे में आनदित करती हुई अपन ससुराल को जा रही हू।

गागेय सोचता हे–इस नदी की तरह म भी घर त्यागकर वन म आया हू। नदी जिस प्रदश म हाकर जाती ह उसे वह सजल हराभरा व सम्पन्न वनाती जाती ह तो क्या वन म रहत हुए मुझ भी काई विशिष्ट काय नही करना चाहिए? म भी ता इसी की भाति घर त्यागकर यहा आया हू।

नदी एक धारा से बह रही है। इसकी धारा दूसरी ओर नही जाती। ऐसा करके नदी हमे सिखाती है कि मेरी ही भाति सदा एक धारा रखो। मेरी माता की भी नदी की तरह एक ही धारा है। उसकी धारा केवल पिता की ही ओर है लेकिन मुझ मे कितनी धाराए है? नदी से मुझे सीखना होगा कि मेरे जीवन की भी एक ही धारा रहे।

मेरे यहा नदी के किनारे आने से पहले नदी जैसा शब्द कर रही थी, उसी प्रकार का शब्द मेरे आने के बाद भी कर रही है। जव मे यहा से चल दूगा तब भी यह ऐसा ही शब्द करती रहेगी। इसे किसी को खुश करने की चिन्ता नही है निरन्तर कार्य करते रहना इसका स्वभाव है।

ससुराल जाने के मार्ग मे बाधा उपस्थित करने वाले पत्थरो का–चट्टानो का–यह विरोध करती है। यह कहती है–'मेरे मार्ग से हट जाओ, मुझे जाने दो। क्षण भर भी ठहरने का मुझे अवकाश नही है।' कैसी सतत प्रवृत्तिशीलता है कितनी व्यग्रता है? मनुष्य अगर इसी भावना के साथ कार्य मे जुट पडे तो सफलता मे क्या सन्देह है?

इस प्रकार नदी तथा वन की अन्य वस्तुओ से शिक्षा लेता हुआ गागेय अपने स्थान पर लौट गया। वह सोचने लगा–जैसी सुन्दर और निर्दोष शिक्षा इस वन से मिलती है वैसी तो माता से भी नही मिली थी।

गगा ने अपने पुत्र को आते देखा। उसकी सूक्ष्म दृष्टि से यह बात छिपी न रही कि आज मेरे पुत्र मे नित्य की अपेक्षा कुछ ज्यादा तेज है। वह पुत्र के सामने गई। लेकिन गगा को देखते ही गगकुमार कुछ उदास हो गया। यह देखकर गगा ने उससे पूछा–पुत्र! तुम अभी–अभी प्रसन्न होते आ रहे थे और अचानक उदास क्यो हो गए?

गागेय ने कहा–माता मुझ पर आपका उत्कृष्ट स्नेह है। माता के स्नेह और अनुग्रह का बदला नही चुकाया जा सकता। बदला चुका देने का विचार करना भी मूर्खता ओर कृतघ्नता है। माता के असाधारण ऋण को तो माथे पर ओढे रहने मे ही आनन्द हे। फिर भी माता की सेवा तो करनी ही चाहिए। पुत्र का यह धर्म है–कर्त्तव्य हे। मैने सुना था कि आप राजरानी हे। लेकिन समय की केसी गति है कि आपका सारा सुख चला गया हे और आपको वनवास भोगना पड रहा हे। मे आपके कष्ट को दूर नही कर रहा हू। इसी विचार से मुझे उदासी हुई हे।

गगा–बेटा तुमने मेर चित्त मे क्या कभी उदासीनता या दु ख देखा हे?

गागेय–जव आप राजमहल मे होगी तो आपके शरीर पर उत्तमोत्तम वस्त्र आर आभूषण सुशोभित होते होगे। वहुत से दास ओर दासिया सेवा के

लिए प्रस्तुत रहती होगी। यहा केवल लज्जा की रक्षा के लिए ही शरीर पर वस्त्र है और आभूषण तो कोई है ही नही। क्या यह दु ख नहीं है?

कल्पना कीजिए आपके सामने सीता के दो चित्र हैं। एक विवाह के समय का चित्र है, जिसमे वह सुन्दर वस्त्रो ओर आभूषणो से सजी हुई है। दूसरा चित्र वन जाते समय का है। इस चित्र मे सीता के शरीर पर न तो बहुमूल्य वस्त्र है, न आभूषण है। आप इन दोनो चित्रो मे से किसे पसन्द करेगे? आपको विवाह के समय का चित्र ही अच्छा लगेगा। लेकिन याद रखना कि सीता अगर शृगार करके राजमहल मे बैठी रहती तो आज सती सीता के रूप मे उसे कोई याद न करता। आज इतने समय बाद भी सीता की जो प्रतिष्ठा है वह उसके त्याग के कारण ही है। गगा क्या उत्तर देती है, यह देखिए।

गगकुमार के कथन के उत्तर मे गगा ने कहा—तू अभी अज्ञान बालक है। गहनो और कपडो के अभाव मे तू मुझे दु खी समझता है यह तेरी भूल है। अगर मैं इनके लिए दु खी होती तो स्वेच्छा से इनका त्याग ही क्यो करती? मुझे किसी ने राजमहल से निकाला नहीं है। मैं स्वय चली आई हू। और इच्छा होने पर आज भी सब सामग्री प्राप्त हो सकती है। फिर भी मैं उसे नही चाहती। मै जिसे चाहती ही नही, उनके अभाव मे दु खी क्यो होऊगी? गहने कपडे नारी का सच्चा आभूषण नहीं है। नारी का श्रेष्ठ आभूषण शील है। मैं शील का पालन करके अपने को धन्य मानती हू। और तू समझता है कि मैं दु खी हू।

गगा का कथन सुनकर गगकुमार मोन रहा। उसने सिर्फ यही कहा—वास्तव मे मैं भूला हुआ था जो तुम्हे दु खी मान रहा था। अव मैं ऐसा नही कहूगा।

गगा ने कहा—कहने की ही बात नही बात सोचने की भी हे। ऐसा न कहना ही पर्याप्त नही हे वरन् ऐसा सोचना भी नही चाहिए। बेटा जड शृगार को शृगार मत समझ। आत्मा को शील से सिगारना ही सच्चा शृगार हे। अच्छा अव यह वता कि तू कहा गया था ओर जहा गया था वहा स क्या लाया हे?

गगकुमार—आपने ही तो कहा था कि प्रकृति स शिक्षण ग्रहण कर। सो म प्रकृति से शिक्षा लेकर आया हू।

गगा—ठीक ह पर मुझे ता वता कि क्या शिक्षा लकर लाटा ह?

गगकुमार–एक तो आपकी शिक्षा है और दूसरी वन मे जो वेगवती नदी बहती है उसकी शिक्षा है।

वर्षा ऋतु मे तो सभी नदी–नाले बह निकलते है लेकिन जेठ के महीने मे भी नदी बहती रहती हे उसी की कद्र होती है। गगा और यमुना जेठ मास मे भी बहती रहती है। इसीलिए उनकी कद्र की जाती है। इसी पकार अच्छे समय मे तो सभी धर्म करते है लेकिन सकट के समय मे धर्म पर दृढ रहने वाला धर्मात्मा कहलाता है।

गगकुमार कहता है–माता इसलिए मैंने नदी से यह शिक्षा ली है कि सकट के समय मे भी अपनी धारा एक–सी बहती रहनी चाहिए। मैने तुलना की तो आपकी और नदी की धारा एक–सी है।

गगकुमार के कथन पर आप भी विचार कीजिए और सकट के समय भी धर्म पर दृढ रहिए। ऐसा होने पर ही आप धर्म का पालन कर सकेगे।

गगा ने कहा–पुत्र! तूने अच्छी शिक्षा ली है। नदी की तरह और भी बहुत–सी चीजे हैं जिनसे उत्तम शिक्षा मिलती हे। तू उनसे मिलने वाली शिक्षा को हृदय मे स्थान देना।

बालक को प्रोत्साहन देने से उसका उत्साह उत्तरोत्तर बढता है। निरुत्साह बनाने से बालक का उत्साह क्षीण होता चलता है और उसकी कार्य करने की शक्ति नष्ट हो जाती है।

नदी की भाति वृक्षो से भी बहुत शिक्षा मिलती है। मैंने एक पजाबी को गाते सुना है–

मन! वृक्षन की मति ले रे।
काटन वाले से द्वेष नही कछु,
सीचन वाले से न स्नेह रे।।

वृक्ष काटने वाले से द्वेष नही करता और सीचने वाले पर स्नेह नही करता। वह दोनो को समान रूप से छाया देता है। इसी कारण महाभारत मे वृक्ष को अजातशत्रु कहा है। वृक्ष किसी को अपना शत्रु मानता ही नही है। वृक्ष से क्या सीख ली जा सकती है यह बात एक दृष्टान्त द्वारा समझना सुगम होगा।

कल्पना कीजिए एक आदमी किसी वृक्ष के पास से उदास चित्त से जा रहा था। उस वृक्ष के अधिष्ठाता देव ने उसे अपने पास आने को कहा। उस आदमी ने कहा–मै अपनी चिन्ता मे जा रहा हू। तुम्हारे पास आने का मुझे समय नही हे। अधिष्ठाता या मान लो कि वृक्ष ने उसे कहा–जाते तो हो ही

एक बात मेरी सुनते जाओ। उस आदमी ने उत्तर दिया—म बहुत आदमियो की बात सुन चुका हू। मुझे कोई लाभ नही हुआ। वृक्ष ने कहा—अभी तक तुमने स्वार्थी लोगो की बात सुनी है। एक बात मेरी भी सुन लो।

इतना आग्रह देखकर वह आदमी वृक्ष के पास गया। वृक्ष ने पहले तो उसे फल दिये जिन्हे खाकर वह प्रसन्न हुआ। फिर उसने आदमी से पूछा—तुम्हे सुख चाहिए न?

आदमी ने कहा—हा, सुख के लिए ही तो भटक रहा हू।

वृक्ष—तो देखो, सुख देने मे सुख हे सुख लेने मे सुख नही हे। सुख मागने से सुख नही मिलता है। लोग सुख की भीख मागते फिरते हैं सुख के लिए भिखारी बने फिरते हैं, इसी कारण उन्हे सुख नही मिलता। हम वृक्षो को ही देखो न। हम किसी से सुख की याचना नहीं करते। चाहे कोई हमे काटे या सीचे, हम दोनो पर समभाव रखते हैं। दोनो को समान भाव से छाया देते हैं। इसलिए हम तुम्हारी तरह दु खी नही हैं। अगर तुम दूसरो को सुख देने मे लगे रहो तो दु ख से छुटकारा पा जाओगे। तुम्हारे दु ख का कारण यही है कि तुम सुख मागते फिरते हो।

जब पेड भी दूसरो को इस प्रकार सुख पहुचा सकता है तो आप क्या दूसरो को सुख नही दे सकते? जब आप वृक्ष रहे होगे तब आपने भी यही किया होगा। मगर आपका विकास हो गया हे—आपको वृक्ष की अपेक्षा अधिक विकसित चेतना शरीर ओर वाणी प्राप्त हुई हे इस कारण आप स्वार्थ मे डूब गये हें। आप किसीको अपनी छाया भी नही देना चाहते। यही नही आप ज्यो—ज्यो बडे होते हें दूसरो की छाया छीनकर अपना स्वार्थ साधना चाहते हे।

आपके पूर्वज कितने रुपये कमाते थे ओर आज कितने कमाये जा हे? एक सज्जन कहते थे—पहले के लोग पच्चीस रुपये कमा लेते थे ता समझते थे कि अच्छी कमाई हो गई। लेकिन आज तो पच्चीस रुपयो की काई गिनती ही नही हे। पच्चीस रुपयो मे साधारण काम भी नही निकलता। इसका कारण यही हे कि आपने अपनी आवश्यकताए बेहद बढा ली ह। यही कारण हे कि आज बडे—बडे कारखानो से भी लोगा को सन्तोष नही हे जबकि पुराने लोग थोड मे ही सन्तुप्ट हो जाते थे।

वृक्ष ने उस आदमी से कहा—हमारा आधार आकाशवृति ह। आकाश से पानी बरस गया या पृथ्वी स पानी मिल गया तो बस उसीस हमारा काम चल जाता ह। इसके अतिरिक्त हमारा आर काई आधार नही ह। लकिन मैं

देने को सदैव तत्पर रहता हू। मेरे पास जब फल होते है तो देने मे कमी नही रखता। समस्त फल दूसरो को ही देता हू। अपने काम मे एक भी फल नही लेता। जब फल नही होते तब भी थके-मादे पथिको को छाया देता हूँ। सध्या समय प्रतिदिन आश्रय खोजने के लिए आये हुए पक्षियो को अपनी गोद मे छिपा लेता हू। इस प्रकार मैं अपना सर्वस्व देने के लिए सदैव उद्यत रहता हू।

वृक्ष कितना उपकारी है। आजकल तो जगल ही उजाडे जा रहे है। लेकिन वृक्षो को नष्ट करने से मानव-समाज की भलाई नही हो सकती। आजकल वैज्ञानिको की मान्यता के अनुसार भी मनुष्य की छोडी हुई कार्बोलिक वायु को जो जहरीली होती है वृक्ष ग्रहण करते हैं और बदले मे ऑक्सिजन वायु-प्राणवायु देते हैं। अर्थात वृक्ष रोग खीचकर स्वास्थ्य देते हैं। ऐसे उपकारी पेडो को नष्ट करने पर स्वास्थ्य अच्छा कैसे रह सकता है?

जो वृक्ष को काटता है उसे भी वह छाया देता है पर आप अपने विषय मे सोचिए कि आप क्या करते हैं? आप किसी को कटुक वचन तो नही कहते? नम्रतापूर्वक बोलते हैं? नम्र वचन से जो काम हो सकता है उसके लिए कठोर वचन कहना कितना अनुचित है? मीठे वचनो की कोई कमी तो है नहीं। फिर कठोर और कष्टकर वचन कहने से क्या लाभ है? कहावत है-वचने का दरिद्रता? तुलसीदास ने कहा है-

तुलसी मीठे वचन ते सुख उपजे चहु ओर।
वसीकरण इक मत्र है तज दे वचन कठोर।।

मीठे वचनो से सबको सुख होता है। जब वृक्ष भी किसी को जहर नही देता वरन दूसरो का जहर लेकर उन्हे 'प्राण' देता है, तब आप दूसरे को जहर के समान कटुक वचन क्यो सुनाते हैं?

कई लोग कहते हैं कि मीठा बोलना कपट है। मगर कपट तो तब कहा जा सकता है जब मन मे कुछ और हो तथा वचन से कुछ और कहे। सही बात को ज्यो की त्यो कह देना कपट नही है। मगर सही बात मधुर शब्दो मे कही जा सकती है। उसके लिए कटुक शब्दो की क्या आवश्यकता है? वाणी मनुष्य की कसौटी है। मनुष्य की महत्ता और हीनता शिष्टता और अशिष्टता वाणी से तत्काल झलक जाती है। अतएव सस्कारी पुरुषो को बोलते समय अधिक विवेक रखना चाहिए।

वृक्ष कितना सहनशील है। सर्दी-गर्मी आदि को धैर्य के साथ सहन करता है और स्वय जहर खाकर अमृत देता है। आप मकान मे बैठे हैं उसमे

लगी हुई लकडी कहा से आई हे? आपका झाडो के विना काम नही चलता। फिर भी कभी सोचते हे कि हम भी झाड से कुछ सीखे?

वृक्ष ने उस चिन्तातुर पथिक से कहा–'तुम निराश मत होओ। मैंने जो कहा हे उसे अमल मे लाओ। अच्छी से अच्छी ओपध भी अमल मे लाये विना लाभ नही पहुचाती। मैं कहता नही फिरता करके दिखलाता हू ओर लोग कहते हे पर करते नही। इसी कारण मैं दु खी नही हू ओर लोग दु ख की गठरी बाधे फिरते हैं।

आप भी जो सुनते हैं उसे सुनते ही रहेगे या कुछ करके भी दिखलाएगे? केवल सुनने से कुछ न होगा। उसे सफल करने से ही फल प्राप्त होगा। मैं जब सुनूगा कि अमुक के घर मे जो झगडा था वह मेरे व्याख्यान से शान्त हो गया है तव यह समझूगा कि मेरा व्याख्यान देना ओर आपका व्याख्यान सुनना सफल हुआ हे, अन्यथा केसे माना जा सकता हे?

वृक्ष का कथन सुनने से उस पथिक को नई समझ आ गई। मानो वह अब तक अन्धकार मे भटक रहा था ओर अचानक प्रकाश दिखाई दे गया।

गगकुमार कहता है–माता मुझे वृक्ष से भी ऐसी शिक्षा मिली हे।

गग–बेटा वृक्ष से मिलने वाली शिक्षा का तो कहना ही क्या हे? मुनियो को शास्त्र मे जो शिक्षा दी गई हे उसमे एक वात यह भी हे कि उन्हे वृक्ष के समान वनना चाहिए। वृक्ष दूसरो के आघात सहकर भी उनका कल्याण ही करता हे।

हम मुनि हुए हे अगर वृक्ष की तरह आघात पहुचाने वाले का कल्याण न कर सके तो फिर मुनि कैसे?

इस प्रकार गगकुमार वन से मिलने वाली शिक्षा का वर्णन गगा के सामने करता हे ओर गगा उसे पुष्ट करती जाती हे।

अगर गगा मे सासारिक भोगविलास की कामना होती ता प्रथम तो वह पति का घर न छोडती कदाचित आवेश मे आकर छोड दिया होता ता पिता के घर रहकर भी मोज कर सकती थी। कदाचित दोनो घर छूट जात तो वन मे जाकर उसे रोना आता। मगर गगा के निर्मल ओर वासना–विहीन चित्त मे धर्म की भावना थी। इस धर्मभावना क प्रताप से वह वन म भी आनन्दपूर्वक रहती ह। ऐसी वीरता जिसमे होती हे वही धर्म का पालन कर सकता ह।

गगा साचती थी–आर लाग ता धाखा द सकत ह मगर जगल धाखा नही द सकता। यही कारण हे कि महापुरुप सव कुछ त्यागकर जगल म र‍ते ह–वे अरण्य को ही शरण्य मानत ह।

जितने भी महापुरुष हुए है प्राय सभी ने गृह त्याग कर वन का आश्रय लिया है। भगवान महावीर ने भी वन का आश्रय लिया था। लेकिन आज जगल बर्बाद किये जा रहे है और शहर आबाद किये जा रहे हैं।

शहर के सकीर्ण स्थान मे अत्यधिक आदमियो के रहने के कारण स्वास्थ्य की कितनी हानि होती है? अगर आपके शरीर का सारा रक्त एक ही जगह इकट्ठा हो जाये तो कितनी हानि होगी? जहा ज्यादा आदमी रहते हैं वही ज्यादा पाप भी होता है। जितने लुच्चे–लफगे और शराबी बम्बई और कलकत्ता आदि बडे शहरो मे मिलेगे देहातो मे नही मिल सकते।

गगकुमार ने नदी और वृक्ष से जो शिक्षा ली है उसका उल्लेख किया जा चुका है। एक दिन गगकुमार वन से उदास लौटा। गगा ने प्रेमपूर्वक पूछा–बेटा आज तुम उदास क्यो हो?

गगकुमार–आज जगल मे मैंने बडा आश्चर्य देखा है।

गगा–क्या आश्चर्य देखा?

गगकुमार–मैंने एक फला–फूला आम का वृक्ष देखा। उसी के पास एक बबूल का पेड था। मानो दोनो आपस मे बाते कर रहे थे। उस आम के वृक्ष को देखकर मुझे तुम्हारी याद आ गई।

गगा–लेकिन मेरी याद आने से तू उदासीन क्यो हुआ?

गगकुमार–आमवृक्ष की हालत से तुम्हारी हालत मिलती–जुलती है। लोग आमवृक्ष को तोड लेते हैं और ऊपर से उसे लकडी–पत्थर भी मारते है। दूसरी ओर बबूल था जिसे कोई छूता भी नही था। मैंने उन दोनो को देखा जैसे आपस मे दोनो यही बाते कर रहे थे।

गगा–बेटा तुझमे विवेक और कल्पना तो है परन्तु अभी उसका पूरी तरह विकास नही हुआ हे। अच्छा बता तो सही तेरी कल्पना के अनुसार उन दोनो मे क्या बातचीत हो रही थी।

गगकुमार–आम बबूल से कहता था–देखो भाई मै कितना दुखी हू। मै सबका उपकार करता हू फिर भी लोग मुझे मारते हैं। लेकिन तुम कितने सुखी हो? तुम्हे कोई नही सताता। क्या मीठे–मीठे फल देना ही मेरा कोई अपराध है? आम बबूल से ऐसा कह रहा था।

गगा–पुत्र तूने आम के गुण को औगुण समझ लिया है। लेकिन अच्छा है कि तू अपने विचारो को मेरे सामने प्रकट कर देता हे। इस तरह आपस मे चर्चा करने से तेरा भ्रम दूर हो जायेगा और तू वास्तविकता तक पहुच सकेगा।

गगा फिर कहने लगी–बेटा, तू जिन कारणो से आम को दु खी मानता है वह बाते तो आम के गुण हैं। सभी मानते हैं कि मनुष्य को जगद्वन्द्य बनना चाहिए। अब तू विचार कर कि आम जगद्वन्द्य है या बबूल? जगत उसीको वदना करता है जो जगत् के आघात सहन करता हुआ भी जगत के उपकार मे ही अपना सर्वस्व लगा देता है। आम यही करता हे। तुझे भी ऐसा ही करना चाहिए। आम और बबूल मे क्या अन्तर हे यह जानने के लिए सोचना चाहिए कि थका हुआ पथिक दोनो मे से किसके पास जायेगा? किसकी छाया का आश्रय लेगा? वह आम के पास ही जायेगा क्योकि उसके नीचे काटे नही होते उसकी छाया गहरी होती है और ऊपर पके फल होते हैं तो वह फल भी देता है। फल न हो, मजरी हो तो वह सुगन्ध देती है। उसके नीचे बैठने वाले को भ्रमर अपनी गुजार सुनाते हैं। कोयल अपनी मधुर ध्वनि सुनाती है। इस प्रकार वहा पहुचकर पथिक प्रसन्न हो जाता है, उसकी थकावट हट जाती है और उसमे नवीन उत्साह तथा स्फूर्ति आ जाती है। इन्ही गुणो के कारण आम वन्दनीय समझा जाता है। जो वन्दनीय बनना चाहता है उसे आघातो से नही डरना चाहिए। आघातो से डरने वाला कुछ भी नही कर सकता। बेटा, तू आम से यह शिक्षा ले। आघात सहकर भी जगत् का उपकार कर। आघात से भयभीत मत हो।

गगकुमार–माता मैं समझ गया। वास्तव मे आपने बहुत सुन्दर विवेचन किया है।

गगा ने जो शिक्षा दी है वह सिर्फ गगकुमार के लिए नही हे–सभी के लिए हे। मिश्री किसी एक के लिए मीठी नही होती–जो उसे खाता हे उसी का मुह मीठा हो जाता है। अगर आप आम की तरह आघात सहने के लिए तेयार रहेगे तो आपके घर मे कलह के काटे उत्पन्न न होगे। इसके विपरीत अगर आप बबूल के समान बनेगे तो आपकी बदोलत धर्म की भी अवहेलना होगी ओर हमारी भी निन्दा होगी। आपके कुकृत्यो से आपके धर्म की ओर धर्मगुरुओ की प्रतिष्ठा विगडती हे यह वात आपको सदा स्मरण रखनी चाहिए।

गगकुमार कहने लगा–माता मुझे भी आम अच्छा लगता हे ववूल नही। आपने विल्कुल सत्य कहा हे।

गगा–ठीक ह। अगर तुझे आम अच्छा लगता ह ता तू भी आम क समान वनना। यह सिद्धान्त ध्यान मे रखना कि–जा वात मुझ अपन लिए पसन्द ह वही में दूसरा क लिए करू।

विपत्ति सम्पत्ति के रूप मे किस पकार परिणत हो सकती है यह बात इस कथा से सहज ही समझ मे आ सकती है। गगा अपने पुत्र को लेकर वन मे रहती है। वह इस स्थिति मे तनिक भी घबराती नही, ऊबती नही। साहस के साथ परिस्थिति का सदुपयोग कर रही है। आज की दु खित विधवाओ से गगा मानो कह रही है कि–तुम्हारा पति मर गया है लेकिन मै तो अपने पति को छोडकर आई हू, फिर भी मैं शान्ति और धैर्य के साथ अपना समय व्यतीत कर रही हू। तुम क्यो निरन्तर आर्त्तध्यान करके अपने भविष्य को मलिन बनाती हो? एक न एक दिन विधवा बना देने वाले पति को रोती हो, इसके बदले अचल सौभाग्य देने वाले परमपति (परमात्मा) के चरणो मे अपना शरीर और मन क्यो समर्पित नही कर देती? ऐसा करने से वर्तमान जन्म ही नहीं असीम भविष्य उज्ज्वल हो उठेगा। इसके विरुद्ध, गई वस्तु के लिए रोने से क्या हाथ आने वाला है।

इस प्रकार जगत को ज्योति दिखलाती गगा वन मे सतोष के साथ निवास करती है। वह गगकुमार को प्रकृति से सजीव शिक्षा दिला रही है। गगकुमार के लिए वन ही पाठशाला है, मौन प्रकृति ही शिक्षक है वन–वृक्ष, कलरव करने वाले वहा के पशु–पक्षी एव नदी–नाले ही उसके साथी–सगी है। पकृति की पाठशाला मे जड ज्ञान नही दिया जाता। वहा कल्पना सजीव है कला सप्राण है सौन्दर्य जागृत है। वास्तव मे वन की शिक्षा बडी प्रभावजनक होती है। नगर के स्कूलो की प्राणहीन नीरस और जबर्दस्ती बालको के गले उतारी जाने वाली शिक्षा वन–शिक्षा का मुकाबला नही कर सकती। वन की शिक्षा शिष्य मे नूतन कुतूहल, नवीन जिज्ञासा, नयी उमग उत्साह रुचि और प्रीति उत्पन्न करती है। स्कूल की शिक्षा विद्यार्थी की स्वाभाविक जिज्ञासावृत्ति पर बोझ बनकर गिरती है और उसे नष्ट कर डालती हे विद्यार्थी मे अरुचि उत्पन्न करती है और उसके उत्साह को ठडा कर देती है।

भगवान महावीर बुद्ध राम और कृष्ण आदि महापुरुषो को वन से ही शिक्षा मिली थी। जब यह सब महापुरुष वन से नहीं घबराये तो और किसी के घबराने की क्या बात हे? शहर की हवा बिगडने पर लोग वन को तो जाते है लेकिन कभी वन की वायु विकृत होने के कारण वन–वासियो को शहर मे आना पडा हे?

गगकुमार ने वृक्षो से नमता और सहनशीलता भी सीखी। नदियो से सतत क्रियाशीलता और लक्ष्य की ओर बढते जाने की उत्कठा सीखी। कोयल

से मधुर वाणी सीखी। फूलो से प्रसन्नता सीखी। जैसे अन्धेरा होने पर भी फूल विकसित रहता है, उसी प्रकार विपत्ति पडने पर भी प्रसन्न रहने की शिक्षा ली।

विपत्ति आने पर भी प्रसन्न रहने से विपत्ति भी सम्पत्ति बन जाती है। ऐसे समय प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए परमात्मा का शरण लेना चाहिए। परमात्मा का शरण लेने पर विपत्ति मनुष्य को पीडित नहीं कर सकती रुला नही सकती, वरन् रोते को धैर्य मिलता है, सान्त्वना मिलती है और सहने की क्षमता मिलती है। यह सब मिलने पर विपत्ति, विपत्ति नही रह जाती। उसे सह लेना साधारण बात हो जाती है। अर्जुन को रोना आ रहा था परन्तु कृष्ण के वचन सुनकर वह हसने लगा था। अतएव विपत्ति को जीतने के लिए परमात्मा का शरण ग्रहण करना चाहिए।

ससार मे, सगीत मे माधुर्य, मोहकता और आकर्षण लाने के लिए अनेक साधनो का आविष्कार हुआ है और अब भी होता रहता है किन्तु कोयल के सगीत की समता किसी ने नहीं की। वृक्ष के नीचे चाहे राजा आया हो या रक आया हो कोयल अपना स्वर नहीं बदलती। वह राजा के सामने विशिष्ट स्वरसधान नही करती। राजा के चले जाने पर भी उसका स्वर वही का वही कायम रहता है! कोयल नही सोचती कि अब मैं गाना किसे सुनाऊ? इस प्रकार कोयल के स्वर मे स्वातन्त्र्य है। उसका राग असाधारण और अप्रतिवद्ध है। गगकुमार ने कोयल से यह निस्पृहता सीखी और वाणी की मधुरता की महिमा सीखी।

गगकुमार आकाश को देखकर सोचता—आकाश असीम ओर अनन्त है। वह मानो सकेत करता हे कि—ऐ मनुष्य! तू भी अनन्त हे पर अपनी अनन्तता को भूला हुआ हे। उसको स्मरण कर ओर अनन्त बन जा। तेरे ही नाप ने मुझे अनन्तता प्रदान की हे।

आकाश अनन्त हे यह बात मनुष्य के ज्ञान से ही जानी जाती हे। कोई आकाश मे कितनी ही तीव्र और चिरकाल पर्यन्त गति करे क्या वह आकाश का अन्त पा सकता हे? ऐसी अनन्तता का जो ज्ञान जानता हे वह क्या कम रहा? वह आकाश से भी वडा ठहरा। फिर उस ज्ञान को विकसित करने के लिए शिक्षा क्यो नही लेते? इस शिक्षा का महत्त्व वहुत अधिक हे। इसी शिक्षा के प्रताप से गगकुमार आगे चलकर भीष्म पितामह कहलाए।

कहते हैं एक बार भीष्म से किसी ने कहा—आप विवाह कर ले तो आपके पुत्र भी आप—सरीखे होगे। इसके उत्तर मे उन्होने कहा था—मेरे पुत्र

मेरे समान ही वीर होगे यह कौन कह सकता है? लेकिन मै जो ब्रह्मचर्य पाल रहा हू उसके कारण सारा ससार मेरा पुत्र है। मेरे आदर्श का अनुसरण करने वाले न जाने कितने वीर ससार मे हो सकते है। इसलिए मेरी सन्तान की अपेक्षा मेरा आदर्श ही जगत के लिए अधिक श्रेयस्कर सिद्ध होगा।

गगकुमार मे ये उच्च सस्कार वन की बदौलत ही उत्पन्न हुए थे। गगकुमार मे आकाश को देखकर अनन्तता की भावना उत्पन्न हुई। वह समझ गया कि मैं भी अनन्त हू। आकाश की अनन्तता को जानने वाला क्या आकाश से कम हो सकता है? आत्मा के विषय मे कहा है–

नायमात्मा बलहीनेन लभ्य ।

अर्थात्–कायरो को आत्मा की उपलब्धि नही होती।

आत्मा की उपलब्धि द्रष्टा की वृत्ति से होती है। गगा ने अपने पुत्र मे ऐसी ही वृत्ति जागृत करने का प्रयत्न किया। इसी उद्देश्य से उसने वन की शिक्षा का आयोजन किया। जिसकी भावना उच्च होती है, सयोग उसे वैसे ही मिल जाते हैं। इसके अनुसार गगकुमार को भी वन मे उच्च सयोग प्राप्त हुआ।

धर्म–देशना दीवी मुनि ने सुनी कुवर धर ध्यान।
समकित सह वह धर्म–अहिसा का पाया है ज्ञान।
आ के बात सब कही मात से वह भी हर्षी जान।।23।।

गगकुमार ने प्रकृति से अनेक उत्तमोत्तम गुण सीखे। तत्वज्ञान की प्राप्ति प्राय वन मे ही होती है। आज के लोग तो पुस्तके रटकर ज्ञानी बनना चाहते हैं पर प्राचीन काल के महापुरुषो ने वन से ही तत्त्वज्ञान सीखा था।

गगकुमार एक दिन वन मे भ्रमण कर रहा था। वहा उसने ध्यान मे मग्न एक चारण मुनि को देखा। देखकर उनकी ओर आकर्षित हुआ। सोचने लगा–मै समझता था कि मै ही वन मे सीखने आया हू, लेकिन जान पडता है कि यह महात्मा भी इसी उद्देश्य से यहा आये हैं। इनका चेहरा कैसा सौम्य है और आकृति मे तेज फूटा पडता है। इच्छा होती है चलकर इनके पैर पकड लू।

जब अन्तर्द्रष्टा अपने स्वरूप मे रमण करता है–अपने आप के अनुभव मे डूबा होता है तो बाह्य स्वरूप भी इतना सोम्य हो जाता है कि सिह और हरिण जसे जन्म–विरोधी पशु भी उसकी गोदी मे लोटते हैं ओर अपना स्वाभाविक वरभाव भूल जाते है। उन्हे पूर्ण अभय मिलता है। आन्तरिक प्रभाव

के कारण ही इस प्रकार की निर्वैरवृत्ति प्राणियो मे उदित होती हे। समवसरण मे सब जीव निर्भय क्यो हो जाते हे? भगवान् के आकर्षण से। भगवान की आन्तरिक शक्ति दूसरे जीवधारियो की हिसावृत्ति को कुठित कर देती हे। थोडी देर के लिए वे अहिसा की स्निग्धता मे डूब जाते हे।

जेसे लोहा चुम्वक की ओर आकर्पित होता हे उसी प्रकार गगकुमार चारणमुनि की ओर आकर्षित हुआ। वह मुनि की ओर गया ओर उनके समीप पहुचकर उनके पैरो पर गिर पडा। मुनि बडे दयालु थे। उन्होने सोचा—मैं इस वन मे आया हू और यह वालक यहा मेरे पास आया है। अतएव इसका कुछ उपकार करना चाहिए। यह सोचकर मुनि ने गगकुमार को उपदेश दिया।

लोहा ही चुम्बक की ओर आकर्पित होता है और लोहा ही पारस के ससर्ग से सोना बन सकता है। जो लोहा ही नहीं है वह कैसे तो चुम्बक से खिच सकता है और कैसे पारस के स्पर्श से सोना बन सकता है? इस प्रकार जब वक्ता भी हो और श्रोता भी हो तभी उपदेश सुनने—सुनाने की प्रवृत्ति होती है। किसी एक के होने से काम नहीं चलता। और अगर वक्ता तथा श्रोता दोनो ही सुपात्र हो तब तो कहना ही क्या है?

उन चारण मुनि ने किन शब्दो मे गगकुमार को उपदेश दिया था यह तो नही कहा जा सकता क्योकि शास्त्र मे कही उसका उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी कल्पना करके बतलाया जा सकता है। मुनि ने कहा—

'वत्स! तुम नगर मे होते तो तुम्हारी मुझसे भेट होती या न होती यह सदिग्ध हे। लेकिन इस वन के प्रताप से तुम्हारी मेरे साथ भेट हुई। तुम किसी विशेष कारण से वन मे रहते होगे या आये होगे पर हम मुनियो के लिए तो एकान्त मे रहना ही बतलाया गया हे ओर इस कारण महात्मा प्राय वन म ही रहते है। मे अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए ही नगर मे जाता हू।

भगवान महावीर के पधारने का जहा कही वर्णन किया गया हे वहा यही कथन हे कि भगवान् अमुक बाग मे पधारे। श्रेणिक ओर अनाथी मुनि की मुलाकात भी वन मे हुई थी। इस प्रकार विवेकवान को वन मे जेसा लाभ होता हे नगर मे नहीं होता।

मुनि ने गगकुमार से कहा—'हे वत्स! तू मरे पास आया हे इसलिए म तुझे दो शब्द सुनाता हू। तू मर शब्दा का ध्यान स सुन।

जो ज्ञान का पात्र होता हे वही ज्ञान का झल सकता ह। कुपात्र ज्ञान को पचा नही सकता। यहा पात्र आर उपदशक दाना ही याग्य थ। पात्र

गगकुमार है और उपदेशक है आकाश मे उडने की शक्ति रखने वाले चारण मुनि। वे किसी पकार के ब धन मे नही रहते। लेकिन उनकी शक्ति केवल उन्ही के लिए नही होती, वे अपनी समस्त शक्तिया आत्मकल्याण के साथ ही जगत–कल्याण मे व्यय करते है।

उन मुनि मे किसी पकार का कल्पित पक्ष नही था और न वन मे ही किसी पकार का पक्ष था। वन की बात जाने भी दीजिए जिस मकान मे आप बैठे है उसी मकान की बात सोचिए। यह मकान पक्ष नही करता कि मै अमुक को बैठने दूगा और अमुक को नही बैठने दूगा। जब मकान ऐसा पक्ष नही करता तो यह किसका माना जाय? ऐसी स्थिति मे यही कहा जा सकता है कि मकान किसी का नही है कुदरत के नियम का है। ऐसा होते हुए भी अगर कोई मनुष्य मकान के लिए अभिमान करता है तो उसका अभिमान मिथ्या है। जो वस्तु अभिमान त्यागने का बोध देती है उसी को अभिमान का कारण बना देना कितना अनुचित है? मकान सभी को आश्रय देता है, फिर भी मनुष्य उसे सिर्फ अपना मानकर घमण्ड करता है।

स्त्रिया भोजन बनाकर अभिमान करती है कि हमने बनाया है। लेकिन यह अभिमान क्यो? आटा आग पानी और लकडी यह अभिमान नही कर सकते? क्या इनके बिना भोजन बन सकता है? फिर भी जब यह सब वस्तुए अहकार नही करती तो बहिने क्यो अभिमान करती हैं? अगर भोजन बनाने वाली बहिने ऐसा विचार करे तो बहुत लाभ हो सकता है। 'हाय, मेरे माथे पर कितना काम का भार है–घर भर का काम मुझे ही करना पडता है', इस प्रकार अहकारमिश्रित दु ख प्रकट करने से हानि ही होती है। कई स्त्रिया घडी भर सामायिक मे बैठने मे तो आनन्द मानती हैं, लेकिन किसी बीमार की सेवा करनी पडे तो बडी कठिनाई और मुसीबत समझती हैं। वे कहने लगती हैं–मेरा दिन तो मल–मूत्र उठाने मे ही जाता है। ऐसी बातो के लिए ही कहा गया है–

हु करू हु करू एज अज्ञानता
शकटनो भार ज्यो श्वान ताणे।

सोचना तो यह चाहिए कि जगत् का कोई भी काम मेरे बिना नही रुक सकता। जब मैं नही था तब भी सब काम होते थे ओर जब मैं न होऊगा तब भी सब काम बदस्तूर जारी रहेगे। ऐसी दशा मे अहकार करने का क्या कारण है?

मुनि ने गगकुमार को ऐसा उपदेश दिया। मुनि का उपदेश सुनकर गगकुमार ने निश्चय किया–अब से मै यथाशक्ति सब जीवो की सेवा किया

करूगा। इस वन मे जो पशु—पक्षी रहते हैं उनके साथ भी में मैत्री—सबध स्थापित करूगा।

भगवान महावीर स्वामी ने आपको 'मित्ती मे सव्वभूएसु' का पाठ सिखाया है। अगर कोई आदमी यह समझता है कि जिसके साथ मेरा वैर हे उसके सिवाय दूसरे लोग मेरे मित्र है तो क्या उसकी समझ इस प्रशस्त पाठ के अनुकूल है? मैत्री तो उन्ही के साथ स्थापित करनी चाहिए जिनके साथ अभी मैत्री नही है—वैर है। अतएव प्राणी मात्र को परमात्मा के नाते अपना मित्र मानो। किसी के प्रति वैर—भाव मत रखो। यही वह मार्ग है जिससे परमात्मा के शरण मे पहुचा जा सकता है। अगर आप परमात्मा के शरण मे गये होगे तो आपको अवश्य यह विचार आएगा कि जैसे मै परमात्मा का पुत्र हू इसी प्रकार दूसरे प्राणी हैं। अतएव सभी जीव मेरे बन्धु और मित्र हैं। इसी विचार से परमात्मा का आश्रय मिल सकता है। बल्कि ऐसी भावना रखना ही परमात्मा का आश्रय पाना है। अतएव ऐसी ही भावना रखो और इस भावना को पहले अपने घर से ही आरम्भ करो। घर के सभी लोग एक—सी प्रकृति के नही होते। प्रत्येक की प्रकृति मे कुछ न कुछ भिन्नता होती ही है। उन सबकी प्रकृति को देखकर चलना और समभावपूर्वक व्यवहार करना ही परमात्मा के मार्ग पर चलने का पहला कदम है।

गगाकुमार ने मुनि का उपदेश सुना। उपदेश सुनकर उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने सम्यक्त्व के साथ श्रावक धर्म ग्रहण किया। उसकी इच्छा मुनि के पास से हटने की नही हो रही थी, लेकिन मुनि एक जगह कब ठहरने वाले थे। समय पर मुनि चले गये। गगकुमार वहा से लोटकर मन मे मुनि का ध्यान करता हुआ अपने स्थान की ओर चला।

वनचर पशु भी गगकुमार से करते अतिशय मेल।
सिह—बाल और गग—बाल मिल खेले दोनो खेल।।
देख अहिसा का प्रभाव यह गगा—चित्त मे सेल।।24।।

अहिसा ओर उसके प्रभाव की बात गगकुमार के हृदय म एक ही दिन के उपदेश से उतर गई। सुपात्र को एक ही बार का उपदेश पर्याप्त हो जाता हे। खेत मे एक वार वीज ओर सीप मे एक बार पानी की बूद पडना काफी है। इसी प्रकार गगकुमार के लिए एक वार का उपदश ही पर्याप्त सिद्ध हुआ। वह वीर माता—पिता का पुत्र था। साथ ही गगा ने उसके हृदय को अच्छे सस्कारो से सस्कृत किया था ओर इसी उद्देश्य की पूर्ति क लिए गगा ने वन का आश्रय लिया था। इसी से गगकुमार के हृदय म अच्छ सस्कार पड आर मुनि का एक ही वार का उपदश उसके हृदय म जम गया।

गगकुमार पसन्न होता हुआ अपनी माता के पास पहुचा। पुत्र को हर्षित देखकर गगा ने पूछा—बेटा आज तुम बहुत पसन्न दिखाई देते हो। क्या बात है?

गगकुमार —हा माता आज मुझे बडा हर्ष है।

गगा—बता तो सही हर्ष की क्या बात है? योग्य पुत्र अकेला हर्ष नही मनाता वरन अपने माता—पिता को भी उसमे हिस्सा देता है।

गगकुमार—माताजी आज वन मे मुझे एक महात्मा पुरुष के दर्शन हुए। मैंने उनका उपदेश सुना है। उनका उपदेश क्या था मानो समग्र प्रकृति पिण्डीभूत होकर मुनि के रूप मे उपदेश दे रही थी। औरो के वचन तो वचन ही होते हे, पर उनके वचन पवचन थे।

गगा—पुत्र! तेरा जीवन धन्य हुआ। तेरे नेत्र सफल हुए। तेरा यहा आना सार्थक हुआ। तूने मुनिराज से जो उपदेश सुना है उस पर पूरी श्रद्धा रखना। ऐसा करने से ही तेरा कल्याण होगा।

माता अपने बालक को जैसा चाहे बना सकती है। बालक को माता पर जैसा पेम होता है दूसरो पर नही होता। यह बात दूसरी है कि कोई बाद मे अपनी पत्नी के अधीन हो जाए लेकिन बचपन मे तो माता पर उसे अखण्ड प्रेम और विश्वास होता ही है। कोई—कोई पुरुष जब सकीर्णवृत्ति वाली पत्नी के अधीन हो जाता है तो यह स्थिति उत्पन्न होती है—

बेटा झगरत बाप से कर तिरिया से नेहु।
बदाबदी यो कहत है, मोहि जुदा कर देहु।
मोहि जुदा कर देहु चीज सब घर की मेरी
केती करू खराब, अकल बिगरेगी तेरी।
कह गिरधर कविराय, सुनो हो सज्जन मिन्ता,
समय पलटता जाय, बाप से झगरत बेटा।

इस प्रकार कई पुरुष आज अपने पिता से झगडने लगते हैं। लेकिन पहले के लोग माता—पिता का अत्यन्त आदर करते थे। आज अगर कोई बालक अपनी माता से झगडता है तो उसमे माता का भी उत्तरदायित्व है कि उसने उसे अच्छे सस्कार नही दिये। अच्छे सस्कार डालने पर ऐसी स्थिति नही आ सकती।

गगा ने अपने पुत्र को मुनि के उपदेश पर पूर्ण श्रद्धा रखने के लिए पोत्साहन दिया। गगा के प्रोत्साहन से अहिसा पर उसे पूर्ण श्रद्धा हो गई। उसने पशुओ और पक्षियो पर भी मित्रता का भाव धारण किया। योगसूत्र के निर्माता पतजलि ने कहा हे—

अहिसाप्रतिष्ठाया तत्सन्निधो वैरत्याग ।

अर्थात्–जहा अहिसा की प्रतिष्ठा होती है, वहा पर वेर नही रहता।

गगकुमार के हृदय मे भी अहिसा की प्रतिष्ठा हुई। इस कारण वन के पशु–पक्षी भी उसे प्रेम करने लगे। हरिण निर्भय होकर उसके साथ खेलते ओर सिह भी उससे स्नेह करते। अगर आप अपने अन्त करण की वेरवृत्ति को दूर कर देगे तो क्रूर से क्रूर जीवो पर भी आपका असर पडे विना नही रहेगा।

गगकुमार के साथ सिह के वालको को क्रीडा करते देखकर गगा की प्रसन्नता का पार न रहा। उसने सोचा–मुनिराज के मिलने से मेरा वेटा सिद्ध' (महात्मा) हो गया है। अव न इसमे वेरवृत्ति है, न भय की भावना है। मेरा वनवास सफल हुआ ओर में कृतकृत्य हो गई।

किस समय, कहा क्या होता है यह सर्वसाधारण नहीं जान सकते। आप अभी धर्मस्थान मे बैठे हैं। आपको क्या पता कि घर पर क्या हो रहा है? लेकिन आपका अदृष्ट वहा भी काम कर रहा है। आपका अदृष्ट जानता है कि वहा क्या हो रहा है? अतएव केवल दृष्ट को ही पकड कर बैठना उचित नही है, किन्तु अदृष्ट पर भी विश्वास रखना चाहिए। अगर आप अहिसा आदि पर विश्वास रखोगे तो आपका अशुभ अदृष्ट भी शुभ मे पलट जायेगा। वहुत समय का अशुभ अदृष्ट थोडे समय का हो सकता है और बहुत शक्ति वाला थोडी शक्ति वाला वन सकता है। अहिसा के प्रताप से दु ख भी सुख वन सकता है ओर विष भी अमृत हो सकता हे आग भी शीतल हो सकती हे ओर कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो सकता हे। अतएव अहिसा पर विश्वास रखकर दु ख से घबराना नही चाहिए किन्तु निश्चल भाव से सोचना चाहिए कि जो कुछ होता हे भले के लिए ही होता हे।

गगकुमार के हृदय मे गगा ने जो प्रकाश उत्पन्न कर दिया था कारण वह सोचा करता था–में इस शरीर का सदुपयोग करूगा। इस की भावना से प्रेरित होकर उसने सब जीवो के साथ मेत्री–सवध स्थापित किया। एक के मन का प्रभाव दूसरे के मन पर पडता हे। अगर अपन मन मे वेर नही हे तो दूसरे के मन का वेर भी शान्त हो जायेगा। कदाचित इसका अपवाद भी हो जाता ह। सूर्य की किरणे सव पर समान रूप स पडती हें मगर चमकता वही हे जिसमे चमक होती हे। जिसम स्वाभाविक चमक नहीं हे वह सूर्य की किरणो का सयाग पाकर भी नही चमक सकता। इसक लिए सूर्य को दाप नही दिया जा सकता। इसी प्रकार शायद कभी आपक मन की पवित्रता का प्रभाव दूसर पर न भी पड लकिन जेस किसी पदार्थ क न

चमकने पर सूर्य अपना पकाश देना बन्द नही कर देता उसी पकार किसी दूसरे पर पभाव न पडने के कारण आपको अपना मन अपवित्र न होने देना चाहिए। अपने मन को अपवित्र मत होने दो–सदा पवित्र रखो आर पवित्रता मे अगर कोई त्रुटि हो तो उसे खोजकर दूर कर दो। मन अगर पाणीमात्र के प्रति वैरविहीन हो गया तो समझ लो कि तुम कल्याण के निकट पहुच गये।

स्वभावत क्रूर और हिस्र समझे जाने वाले पशु भी गगकुमार के मित्र बन गये। जब गगकुमार ने ऐसे हिसक जीवो से भी मित्रता स्थापित कर ली तो क्या आप अपने घर के लोगो से अपने कुटुम्बीजनो से भी मैत्री–सबध नही जोड सकते? गगकुमार ने वन के पशुओ को भी अपना कुटुम्बी माना ओर उनके प्रति प्रेम प्रदर्शित किया तो आप जिन्हे जन्मत अपना कुटुम्बी समझते हैं क्या उनके प्रति भी पेम प्रदर्शित नही कर सकते? दूसरो के दोष मत देखो। अपनी भावना शुद्ध करो। दूसरो के दोष खोजते रहना अपनी भावना मलिन बनाना है। शुद्ध भावना के साथ कब तक वैर बनाये रखोगे? जब आपकी भावना शुद्ध होगी तो जड प्रकृति और चेतन प्रकृति पर आपका प्रभाव पडे बिना नही रह सकता।

9 पिता–पुत्र का सघर्ष

अब जरा हस्तिनापुर की ओर ध्यान दीजिए। यह कहा जा चुका है कि राजा शान्तनु गगा और गगकुमार के वियोग से दु खी हो गया। पहले तो उसने अपने साथियो के कहने मे लगकर और कुछ–कुछ अपने पुरुषत्व के अभिमान मे आकर अपनी प्रतिज्ञा भग कर डाली मगर पीछे वह बहुत पछताया। वह सोचने लगा–मैं नही जानता था कि गगा अपनी प्रतिज्ञा पर ऐसी अटल रहेगी। ऐसा जानता तो मैं मृगया के लिए न जाता।

स्त्रिया चाहे तो पुरुषो को सुधार सकती हैं। वे त्याग करने को तैयार हो तो पुरुषो को बतला सकती हैं कि आपने विवाह के समय जो प्रतिज्ञाए की हैं उनसे हटना अब सम्भव नही है। मगर इसके लिए स्त्रियो मे जिस त्याग–भाव की आवश्यकता है, वह कहा है? आज उनमे त्याग की शक्ति क्षीण हो गई है इसी कारण उन्हे पुरुषो का अन्याय सहन करना पडता है। मालवा, मेवाड और मारवाड मे प्राय देखा जाता है कि घर मे सुन्दरी स्त्री होने पर भी एक 'खापण' लाकर बैठा दी जाती है। मगर स्त्रिया यह अन्याय क्यो सहन करती हैं? उन्हे जेवर और वस्त्रो का लोभ है। इस लोभ के कारण वे सब अन्याय सह लेती हैं। ऐसी स्त्रियो को गगा के चरित्र पर ध्यान देना चाहिए। गगा सरीखी स्त्री अपने पति को ठिकाने ला सकती है। वह प्रतिज्ञा की रक्षा करके अपनी दृढता प्रकट करे तो पति की बुद्धि ठिकाने अवश्य आ जाए।

शान्तनु गगा के लिए पश्चाताप करता रहा। इस बात को वर्षो बीत गये। राजा के साथियो ने उसे समझाया–आप इस तरह रानी के लिए दु खी ने रहेगे तो लोक–हसाई होगी ओर शत्रुओ का बल बढेगा। इसके अतिरिक्त दु ख मानने ओर पश्चाताप करने से कोई लाभ भी तो नही हे। रानी जब जा चुकी है तो शोक करने से क्या लाभ?

वहुत से काम केवल लोकलाज से किये जाते हैं। कई एक सामाजिक नियम ऐसे हैं जिनमे समय के अनुसार परिवर्त्तन होना आवश्यक हे मगर परिवर्त्तन नही किया जाता हे। वे लोगो के लिए भाररूप प्रतीत होते ह। एसे नियमो का बाह्यरूप से पालन केवल लोकलाज के कारण ही किया जाता ह।

लोकलाज से या भय स या बात पुरानी पड जाने स राजा का दु ख कुछ कम हो गया। धीरे–धीरे वह राजकाज चलाने लगा।

मृगया–रसिको के बहकाने से फिर तहके महाराज
सोई हुई मृगया की भावना जागृत हुई पा साज।
चले जगल मे आये वहा, जहा खेले गग महाराज।।25।।
रायजनो के कोलाहल से मृग सब पाये त्रास
इधर–उधर सब लगे दौडने, आये आश्रम पास।
दीनानन को देख विचारे, होकर कुवर उदास।।26।।
इन पशुओ को दु खित करने, कौन है आया चाल
मेरी शरण मे ये सब है और मै इनका रखवाल।
इन्हे त्रास पहुचायेगा जो मै हू उसका काल।।27।।

शान्तनु के पुराने साथियो ने फिर उस पर डोरा डालना शुरू किया। वे कहने लगे–महाराज! कायरता दिखलाना उचित नही हे। मन मे कुछ भी हो बाहर से तो वीरता ही दिखलानी चाहिए। घर मे बैठे–बैठे उदासी रहती है इसलिए वन मे चलिए। मृगया मानसिक दु खो की अमोघ औषधि है। मृगया करने से सब दु ख बिसर जाते है और स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

इस तरह बहकाने वाले लोगो से राजा ने कहा–पहले तुम लोगो के कहने से रानी की परीक्षा करने के लिए मै शिकार खेलने गया था। लेकिन ऐसा करने से मेरी ही परीक्षा हो गई और मैं उसमे अनुत्तीर्ण रहा। यदि मै जानता कि रानी सचमुच ही चली जाएगी तो मै तुम्हारा कहना हर्गिज न मानता। जिस मृगया के कारण मुझे रानी और राजकुमार को त्यागना पडा या उन्हे मुझे त्यागना पडा और जिसके कारण मैं प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हुआ, क्या फिर भी मुझसे वह करवाना चाहते हो?

राजा का यह उत्तर सुनकर मृगया–रसिको ने कहा–महाराज! अब न परीक्षा का प्रश्न है न रानी की बात है ओर न प्रतिज्ञा का सवाल है। यह सब बाते कभी की समाप्त हो चुकी। गई–गुजरी बातो को याद करके दिमाग को परेशान करने से कोई लाभ नही है। प्रत्येक नवीन दिन जीवन मे नवीनता लकर आता हे। इस नवीनता के वातावरण मे ही हमे विचार करना चाहिए। अतीत को भुलाये बिना कोई सुखचेन से नही रह सकता। अतएव पुरानी बाते मस्तिष्क मे से निकाल फैकिए ओर वन की खुली हवा मे सैर कीजिए। ऐसा करने से मन पर लदा हुआ भारी बोझ हल्का हो जायेगा।

दुर्व्यसन की बात बहुत जल्दी अच्छी लगती हे। अगर वह अभ्यस्त हो तो फिर कहना ही क्या हे? वह तो ओर भी जल्दी समझ मे आ जाती हे।

राजा अपने साथियो की वातो मे आ गया ओर उसने मृगया की तेयारी आरम्भ करने की आज्ञा दे दी।

मृगया की तेयारी हो गई। राजा के साथी राजा को आगे करके मृगया के लिए वन मे पहुचे। सब शिकारियो ने वन के पशुओ को वडा त्रास पहुचाया। यद्यपि क्षत्रियो का धर्म निर्वलो की सहायता करना हे मगर दुर्व्यसनो के कारण और पहले के कुसस्कारो के कारण मनुष्य अपने धर्म को भूल जाता है ओर निर्वलो को भी सताने लगता हे। राजा और उसके साथियो ने वन के दीन–हीन पशुओ पर अत्याचार करना आरम्भ किया। वन के पशुओ मे घबराहट फैल गई। वे अपनी रक्षा का स्थान खोजने लगे। पशु–पक्षी भी जानते है कि किसके पास या किस स्थान पर जाने से उनकी रक्षा होगी ओर वे ऐसी जगह चले भी जाते हैं। तदनुसार वन के पशु भाग–भागकर गगकुमार के पास आये।

भयभीत पशुओ को देखकर गगकुमार सोचने लगा–आज ये पशु इतने बेचैन और त्रस्त क्यो हैं? जान पडता हे मुझसे अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना कर रहे हें। आज तक इस वन मे पशुओ को किसी ने नही सताया। कभी कोई भूल–चूक से शिकार के लिए यहा आया भी तो मेरा नाम सुनकर चला गया। पशुओ को किसी ने पीडा नही पहुचाई। फिर आज ऐसा कोन आया हे जो इन बेचारो को सता रहा हे?

जिस ओर से पशु भागे चले आ रहे थे गगकुमार उसी ओर चल दिया। उसे किचित भी भय नही था। जो स्वय भयभीत होगा वह दूसरो का भय केसे मिटा सकता हे? दूसरो को अभय देने वाला स्वय निर्भय होना चाहिए।

इतने मे एक रथ को देखा बोला कुवर तत्काल
मेरी शरण मे यह सब हैं, मत मारो तुम भूपाल।
शरणागत की रक्षा करते क्षात्र धर्म प्रतिपाल।।28।।

राजा शान्तनु शिकार के रग मे रगकर पशुओ पर वाण वरसा रहा था। उसके अनेक साथी पशुओं को राजा के सामने लाने के लिए हल्ला कर रहे थे। वनपशु घवराहट के मारे इधर से उधर भाग रहे थे।

विचारणीय वात यह ह कि पशुआ का कष्ट म दखकर गगकुमार एक भी क्षण का विलव किये विना तत्काल उनकी रक्षा क लिए दाड पडा। क्या यह पशु उसक काई रिश्तेदार थे? आप ढीलापन लाकर कह दग–छाटा

के लिए बडे से वैर मोल लेना ठीक नही है। मरते है तो वे मरते है। [illegible]
क्या लेते है? लेकिन गगकुमार ऐसा सोचने वाला कायर नही था। [illegible]
पशुओ के कष्ट को अपना ही कष्ट माना और उसे नष्ट करने के लिए [illegible]
चल दिया।

शान्तनु शिकार के रग मे रगा हुआ था और गगकुमार रक्षा के रग
मे रगा हुआ था। वह पशुओ को सताने वाले की खोज मे निकला था। इतने
मे उसकी दृष्टि एक रथ पर और उसमे बैठे हुए राजा पर पडी। रथ देखते
ही वह समझ गया कि यह कोई राजा है। यद्यपि रथ मे बैठा शान्तनु गगकुमार
का पिता था फिर भी उनमे से कोई किसी को नही पहचानता था। गगकुमार
को यह जानकर भी कि यह राजा है किसी प्रकार की झिझक नही हुई।
उसने सोचा–राजा है तो रहे। सच बात कहने मे डर क्या है? और जब ये पशु
मेरे शरण मे आये हैं तो इनकी रक्षा करना मेरा धर्म है।

गगकुमार ने शान्तनु के सामने जाकर कहा–महाराज विराम।विराम।
यह सब पशु मेरे शरण मे आये है इसलिए आप इन्हे मत मारिए। यह केवल
जीवनदान चाहते हे और कुछ नही चाहते। आप राजा हे। इतना तो सोचिए
कि आपका इनके प्रति क्या कर्त्तव्य है? आपका कर्त्तव्य इनकी रक्षा करना हे,
मारना नही। इन्हे मारने के लिए तो वधिक लोग हैं ही। आपको तो इनका
रक्षक होना चाहिए। अतएव इन्हे मारने मे आप जो पराक्रम दिखला रहे हे
वह पराक्रम इनकी रक्षा मे दिखलाइए। गगकुमार के कथन के उत्तर मे राजा
कहता है–

जाकर तुम बैठो आश्रम मे, मत बोलो नादान
मेरे बाण के भोग बनोगे यदि न मानी आन।
बालहत्या तो मुझे लगेगी यो बोला राजान्।।29।।

गगकुमार का कथन सुनकर राजा मानो चौंक उठा। सोचने लगा–यह
बालक कौन हे? इस तरह निर्भीकता के साथ बोलने वाला इस वन मे यह
बालक कहा से आया? इसके वचनो मे तेज है निर्भयता है। पर यह कैसा
दुस्साहस कर रहा हे कि मुझे राजा समझकर भी रोकता है। फिर राजा ने
सोचा–अभी नादान हे। इसे विवेक नही है। इसीसे ऐसा कहता है।

इस प्रकार सोचकर राजा ने पूछा–तुम कौन हो? कहा रहते हो?

गगकुमार ने अपने स्थान की ओर सकेत करके कहा–में वहा रहता हू।

राजा–मैंने उस स्थान का पट्टा तुम्हे कब लिख दिया हे? खैर रहते
हो तो रहो। पर बाकी जगह पर तो मेरा अधिकार हे। मैं जो चाहूगा करूगा।

तुम यहा से भाग जाओ। अपनी जगह बैठो। मेरा कहना न माना तो यह वाण देख लो। तुम्हारे लिए एक ही वाण काफी होगा। तुम अभी वालक हो। तुम्हे देखकर दया आती है नही तो किसकी मजाल है कि वह मुझे रोकने का साहस करता। जाओ, अपनी जगह चले जाओ।

अगर आप शक्ति का सचय करके साहस से काम ले तो बहुत लाभ हो सकता है। लोगो मे शक्ति होती है फिर भी साहस के अभाव मे वह काम नही आती। साहस होने पर आपमे जितनी शक्ति है उसी से बहुत कुछ हो सकता है।

मेरे बचपन की बात है। मेरा जन्म जिस गाव मे हुआ था उस गाव–थादला की नदी मे मछलिया मारने की मनाई थी। वहा एक अग्रेज मछलिया मारने के लिए आया। उस जमाने मे अग्रेज को भला कौन रोके? मगर कुछ साहसी लोग वहा के हाकिम के पास पहुचे। हाकिम को सब बात कही। हाकिम को साथ लेकर लोग अग्रेज के पास गये। हाकिम ने उससे कहा–यह जमीन यहा के महाजनो के अधिकार मे है और इस कारण यहा मछलिया मारने की मनाई है। अग्रेज ने कहा– अच्छा, ऐसा है? और वह वहा से चला गया।

यह एक साधारण–सी मिसाल है। पर उस समय देहात के लिए यह भी साहस का काम था। तात्पर्य यह है कि साहस रखने से बहुत से काम हो सकते हैं। साहसी के सामने देवता भी नम्र हो जाते हैं। गगकुमार साहस के कारण ही राजा के सामने गया और उससे पशुओ को न मारने के लिए कह सका। यो देखो तो कहा राजा शान्तनु और कहा बालक गगकुमार? शान्तनु का एक ही वाण उसका अन्त कर सकता था। वहा गगकुमार की सहायता करने वाला कौन था? मगर उसमे साहस था। गगा और मुनि की शिक्षा से वह समझ गया था कि मरना कोई बडी बात नही है। वह तो प्रकृति का साधारण नियम है। मरने पर ही नवीन जन्म मिलता है। फिर मरन से डरने की क्या आवश्यकता है? राजा के कथन के उत्तर मे गगकुमार कहता है–

बालहत्या के महापाप से तो डरते भूपाल
शरणागत तृणभक्षक पशुओ के बनते क्यो काल?
रक्षक भी भक्षक होवे तो बिगडे जग का हाल।।30।।

राजा के कथन के उत्तर म गगकुमार बाला–'महाराज! आपका इतना विचार ता ह कि बालक की हत्या नही करनी चाहिए। इसी कारण आप मेरी हत्या नही कर रह हैं अर्थात आप यह साचते हैं कि बराबरी वाल क साथ

लडाई की जाती है—बच्चे से क्या लडना? ओर मै भी आपसे यही कहता हू। मैने यही तो कहा है कि बराबरी वालो के सामने आप अपना पराकम पकट कीजिए। ये जगल के पशु आपकी बराबरी के नही है। इनके पास कोई हथियार नही हैं। फिर आप इन्हे क्यो मार रहे हैं? आप क्या इन्हे अपनी बराबरी के समझते हैं? मुह मे तृण ले–लेने वाले शत्रु को भी क्षत्रिय क्षमा कर देते हैं तो जो पशु सदैव मुह मे तृण दबाये फिरते हैं उन्हे मारना क्या बहादुरी है? आपका धर्म तो यह है कि इनकी रक्षा करने मे आवश्यकता हो तो सर्वस्व भी लगा दे। लेकिन आप इसके विरुद्ध इनके पाण ले–लेने पर उतारू हो रहे हैं। क्या यह उचित है?

आपने जैनधर्म पाया है। क्या आपके लिए यह उचित है कि आप तुच्छ वस्तु के लिए महान् वस्तु का नाश करे? जरा–जरा–सी बात के लिए अपनी सद्भावना नष्ट होने देना आपके लिए अनुचित है। अपना सर्वस्व देकर भी सदभावना की रक्षा करनी चाहिए। पहले के लोग सद्भावना की रक्षा मे पाण तक दे देते थे। पाण जाए तो जाए लेकिन अपनी सद्भावना और सस्कृति नष्ट नही होने दी जाती थी। भारत की न मालूम कितनी महिलाओ ने धधकती आग मे कूदकर प्राण दे दिये पर अपना धर्म और सस्कृति नहीं जाने दी। इसके विरुद्ध आज क्या दिखाई दे रहा है? आज लोग अपने धन और पाण की रक्षा के लिए सभी कुछ त्याग सकते हैं। यह कायरता का लक्षण है। गगकुमार कायर नही था। उसने उसी निर्भयता के साथ राजा से कहा– आप राजा हैं। रक्षा करना आपका विरुद है। आप सबके स्वामी हैं। रक्षक के बदले भक्षक मत बनिये। रक्षक भक्षक बन जायेगा तो घोर अनर्थ हो जायेगा।'

वास्तव मे बचपन के सस्कार हाड–मास की तरह जीवन मे ऐसे व्याप जाते ह कि अन्त तक दूर नही होते। कहा भी है–

यन्नवे भाजने लग्न सस्कारो नान्यथा भवेत्।

नये बर्तन पर जो चित्र बनाये जाते हैं वे बर्तन के पक जाने यहा तक कि फूट जाने पर भी नही जाते हें। बाल्यावस्था के सस्कारो पर कितने ही नवीन सस्कार आते–जाते रहते हैं मगर उन्हे वे नष्ट नही कर सकते। गगकुमार के उदाहरण से यह बात सहज ही समझ मे आ सकती है कि बालक पर किस पकार के सस्कार डालने चाहिए। गगकुमार के कोमल चित्त पर सत्यधर्म माता ने ही अहिसा के सस्कार अकित किये थे। मुनि का समागम तो बाद मे हुआ और थोडी देर के लिए ही हुआ। उन्ही सस्कारो से प्रेरित होकर उसने पतापी राजा शान्तनु से कहा था–जब आप मुझ पर दया

दिखलाते है तो क्या ये गरीब पशु आपकी बराबरी के हे? आप सचमुच दयालु हैं तो इन पर भी दया कीजिए।

गगकुमार का कथन सुनकर शान्तनु सोचने लगे—यह किसका लडका है जो इस प्रकार निर्भयता से बाते करता है। इसने मेरी बात का ऐसा उत्तर दिया है कि मुझे निरुत्तर कर दिया। बालक सुन्दर और तेजस्वी हे। इसकी आकृति मे मेरा प्रतिबिम्ब—सा झलकता है। लेकिन यह मेरा मोह हे। मेरा पुत्र यहा कैसे हो सकता है? मेरा पुत्र महारानी गगा के साथ हे ओर महारानी यहा कहा? यह कोई दूसरा क्षत्रिय बालक होना चाहिए। अन्त मे राजा ने कहा—

किसके सामने बोल रहा है, रे बच्चे नादान,
छोटे मुह से बडी बात कहना यह है अज्ञान।
राजनपति राजा मैं हू, युद्धवीर बलवान।।31।

राजा गगकुमार की युक्तियुक्त बात का उत्तर नही दे सका। अतएव वह अपनी सत्ता का उपयोग करने लगा। वह बोला—छोटा—सा बालक है फिर भी तू डरता नही? यह नही जानता कि तू किसके सामने बोल रहा हे। किसे क्षात्र—धर्म सिखला रहा है। तू यह भी नहीं देखता कि तुझे क्षात्रधर्म सिखलाने का अधिकार भी है या नही? क्षात्रधर्म मैं समझता हू या तू? छोटे मुह बडी बात शोभा नही देती। जान पडता है तू मुझे जानता नही। इसी कारण इतना बकवास कर रहा है। में कोई साधारण व्यक्ति नहीं—प्रतापी राजा हू। यह भूमि मेरे अधिकार मे हे। इसलिए तू चुपचाप यहा से खिसक जा। अपनी माता की गोद मे बेठ।

दूसरा कोई होता तो राजा का यह रोबदार परिचय सुनकर दब जाता ओर सोचता कि मे बेठे—बिठाये किससे भिड गया। लेकिन वह गगकुमार था। बहुत से लोग ऐसा अभिमान करते हें कि हमारे सामने कोन बोल सकता हे? जो हम कहते हें वही सही हे। जिसे हम पूर्व दिशा कहे, वही पूर्व दिशा हे। लेकिन इस प्रकार के अभिमान का प्रभाव जिस पर पडता हे उसी पर पड सकता हे। राजा को भी ऐसा अभिमान हुआ। पर गगकुमार पर उसका कुछ भी प्रभाव न पडा। गगकुमार क्या कहता हे—

नही वीरता होती वचन से राजनपति महाराज
इन पशुओ को छोड दिखाओ मुझको अपना काज।
तुच्छ मेघ सम छोडो गर्जना बन जाओ मृगराज।।32।।

गगकुमार ने राजा से कहा—महाराज [illegible]

समझ गया था कि आप राजा है। अपने मुख से [illegible]

की कोई आवश्यकता न थी। आपको राजा [illegible]

न्यायसगत निवेदन कर रहा हू। न्याय की बात [illegible]

सकती है। बल्कि आप राजा है इसलिए तो आपको [illegible]

चाहिए। निरपराध और निर्बलो की रक्षा करना ही प्रधान [illegible]

जो कुछ कहा है उसमे कोई गलतफहमी नही है। [illegible]

भरी है। क्या आप यह नही सोचते कि राजा दूसरो की [illegible]

है घात करने के लिए नही होता। आप दीन—हीन पशुओ पर [illegible]

प्रकट कर रहे हैं और राजा होने का अभिमान भी कर रहे है। [illegible]

है। वीर पुरुष गरीब पशुओ से नही जूझता। इन्हे मारने मे कोई [illegible]

है। अगर आप सचमुच वीर हे तो अपनी वीरता मुझे दिखलाइए और [illegible]

को जिन बाणो का लक्ष्य बना रहे है उनका लक्ष्य मुझे बनाइए।

गगकुमार की बात सुनकर राजा सोचने लगा—यह लडका मुझे चुनौती देता है। मुझे चिढाता है। इसका अपराध अक्षम्य है, मगर न जाने क्यो इस पर मुझे स्नेह—सा हो रहा है। इसकी इतनी उद्दडताभरी बाते सुनकर भी मेरे हाथ इस पर चलना नही चाहते। राजा ने प्रकट मे कहा—बस छोकरे। चुप रह। अन्यथा खैर नही।

गगकुमार ने कडक कर कहा—ये जीव मेरे आश्रित हे। आश्रितो की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है—धर्म है। अपने कर्त्तव्य का पालन न करना कायरता है। मैं कायर नही हू, जो अपने आश्रित प्राणियो की रक्षा न करू। में अपने प्राण देकर भी इनकी रक्षा करूगा। मेरे जीते जी इन पर कोई प्रहार नही किया जा सकेगा।

गगकुमार का कथन सुनकर राजा को भी क्रोध आ गया। फिर क्या था—

क्रोधित होकर जब राजा ने छोडे कुवर पर बाण,
सभी बाण को काट गिराया, कुवर बडा बलवान।
लगा बाण बरसाने वह भी, राय हुआ हैरान।।33।।
ध्वजा पतन को देखे तब तक प्रत्यचा टूट जाय
युद्धवीर पूरा है बालक, सोचे यो महाराय।
वत्सल रस मे आये राजवी मन मे प्रेम भराय।।34।।

आपने युद्ध के उदाहरण तो बहुत सुने होगे लेकिन पिता–पुत्र का यह युद्ध अनोखा ही था ओर वह भी अपने आश्रित पशुओ की रक्षा के निमित्त।

गगकुमार की अन्तिम चुनौती से राजा का क्रोध भडक उठा। उसने क्रोध मे आकर गगकुमार पर बाण छोड दिया। मगर गगकुमार ने आते बाण को अपनी तलवार से काट डाला। राजा ने और भी बाण चलाए मगर गगकुमार ने बडी फुर्ती के साथ सारे बाण काट फैके। यह देखकर राजा चकित रह गया। सोचने लगा–मेरे बाण और इस तरह बेकार हो जाए! आज तक तो ऐसा कभी हुआ नही। कितने कौशल के साथ यह बाण काट डालता है! यह लडका है कौन?

राजा इस सोच–विचार मे पडा ही था कि गगकुमार ने सोचा–यही अवसर है। इसी अवसर का लाभ उठाकर राजा को अपना पराक्रम दिखलाना चाहिए। ऐसा सोचकर उसने पराक्रम दिखलाने का निश्चय किया। साथ ही उसने सोचा–मैं पशुओ की भी रक्षा करना चाहता हू तो क्या मनुष्य की हत्या करू?

वस्तुत मारने की अपेक्षा मरने के लिए अधिक वीरता की आवश्यकता होती है। लेकिन कुत्ते–बिल्ली की मौत मरना वीरता नही शेर की मौत मरने मे अधिक वीरता है। कहा जा सकता है कि मरना कौन–सी बहादुरी है? पर ऐसा कहने वालो को सोचना चाहिए कि सात प्रकार के भयो मे से जो मृत्यु के भय को जीत लेता है वह क्या वीर नही हे? कम से कम साधुओ को तो मरने के विषय मे किसी प्रकार की चिन्ता नही करनी चाहिए। कहा भी हे–

फिकर सभी को खा गई फिकर सभी का पीर।
फिकर का जो फाका करे उसका नाम फकीर।

सोचना चाहिए कि मरता क्या है? आत्मा अजर अमर अविनाशी हे। उसकी मृत्यु नही जन्म नही। मरता तो शरीर हे। लोग कहते हे–फला मनुष्य मर गया। लेकिन साधु कहते हैं–जिसने मरणभय को जीत लिया वह अमर हो गया। जिसे ज्ञान हो गया हे कि शरीर ओर आत्मा अलग–अलग हें–शरीर आत्मा नही है वह मरने से भय क्यो करेगा? जिसका मकान पूरा–आदि स अन्त तक पक्का हे उसे मकान मे आग लगने की चिन्ता क्यों होगी? वह सोचेगा–मेरा मकान पक्का ह। उसमे आग प्रवेश नहीं कर सकती। इसी प्रकार जब आत्मा की अमरता का विश्वास हो जाता हे तो मृत्यु का भय रह ही नही जाता।

गगकुमार सोचता है—मै राजा की तरह निर्दय नही कि उसे मार डालू। ईट का बदला पत्थर से लेना अनुचित है।

इस प्रकार सोचकर गगकुमार ने अपने बाण द्वारा राजा के रथ की ध्वजा गिरा दी। राजा अत्यन्त आश्चर्य के साथ ध्वजा की ओर देखने लगा। उसी समय उसने दूसरा बाण चलाया और राजा के धनुष की प्रत्यचा काट गिराई। अब तो राजा के आश्चर्य का पार न रहा। वह मन ही मन बालक की वीरता की पशसा करने लगा। वह सोचने लगा—यह कोई विद्याधर तो नही है? यह भाग्यशाली बालक किसका है?

10 पति–पत्नी–पुत्र का मिलन

पिता पुत्र को लडते देखकर आई पुत्र के पास
किससे लडते हो तुम बेटा! बोली गगा खास।
अपने पिता से कभी न लडना इससे होता नाश।।35।।
तेरे कहने से मै मानू, ये है मेरे तात,
मम शरणागत को ये मारे कैसे जोडू हाथ।
शत्रु सम ये मुझे देखते, सुन लो मेरी बात।।36।।
अतिशय क्रोधित देख पुत्र को गई पति के पास
पिता–पुत्र का युद्ध देख कर मै हो गई उदास।
क्षमा करो अपराध नाथ! यह पुत्र आपका खास।।37।।
निज पत्नी को देख अचानक, स्तब्ध बने महाराय,
अति आदर दे मिले रानी से, हर्षित हो सुख पाय।
पिता कार्य को देख कुवर भी, आके शीश नमाय।।38।।
पत्नी–पुत्र का देख विनय रानी से पूछे बात
कैसे आके रही यहा कहो, सुत का सब वृत्तात।
युद्ध–कुशलता देख बाल की चकित बना साक्षात।।39।।
लेके पुत्र को गई पिता–घर पढा वही पर बाल
विद्याधर सुत इसके तेज को, सह न सके तत्काल।
छोड पिता–घर रहू यहा पर सुखे बिताऊ काल।।40।।
अठाविस योजन का मण्डल करके गगकुमार
सभी जीव की रक्षा करता मैत्री–भावना धार।
निज विद्या की करे आराधना कुवर महा हुशियार।।41।।
सब मिलकर अब चले राज मे, वरते मगलाचार
देख अहिसा का प्रभाव मै तजता हू शिकार।
प्राण जाय पण प्रण न तोडू यह सच्चा निरधार।।42।।
स्वतन्त्रता को छोड के राजन् बनू न मै परतन्त्र
स्वतन्त्र रसिका मैना जैसे चाहती न कोई यत्र।
पुत्र आपका लेके जावो चले राज का तन्त्र।।43।।
तुम बिन कैसे जाऊ राज्य मे शून्य लगे ससार
गगकुवर को मात–विरह से होगा दु ख अपार।
तुम आने से कुशल–क्षेम हो सुधरे सब हुकार।।44।।

मै नही आऊ महल मे, सुन लो मम महाराज
मेरी प्रतिज्ञा पै कायम मै करू न दूजा काज।
त्याग प्रतिज्ञा सुख को भोगे उससे आती लाज।।45।।
घोर जगल मे छोडू आपको भोगू राज सुखसार,
ऐसा जीवन मै नही जीऊ बोला गगकुमार।
छोड मात की सेवा भोगे राज्य उसे धिक्कार।।46।।

इधर महल की छत पर खडी हुई गगा यह दृश्य देख रही थी। बीच मे पडना ठीक नहीं है यह सोचकर थोडी देर वह चुपचाप देखती रही। लेकिन जब उसने अपने पुत्र की वीरता की परीक्षा कर ली और यह देख लिया कि राजा इस समय बहुत उलझन मे पडे हुए है, तब उसने गगकुमार को शान्त करने का विचार किया।

गगा तत्काल महल की छत से उतर कर नीचे आई। गगकुमार के पास पहुची। उसने पहुचते ही कहा–पुत्र हो तो वीर मगर क्या पिता के साथ युद्ध करना चाहिए?

गगकुमार चकित रह गया। कहने लगा क्या यह मेरे पिता हैं?

गगा–हा बेटा! यह तुम्हारे पिता हैं।

गगकुमार–मैं आपकी बात पर विश्वास करता हू, लेकिन क्षत्रियोचित शिक्षा आपने ही मुझे दी है। कोई भी क्यो न हो जब वह शत्रु बनकर सामने आया हो तो उसके साथ दूसरा सबध कैसा? इनकी दृष्टि मे वन के जीव चाहे तुच्छ हो पर मेरी दृष्टि मे तो वे महान् हैं। मैंने महाराज से प्रार्थना की कि यह जीव मेरे आश्रित हैं। इन्हे मत मारिये। मगर इन्होने मेरी प्रार्थना की उपेक्षा की। इन्होने यह भी कहा कि यह सब भूमि मेरी है। मैं तुझे दया करके रहने देता हू। लेकिन इन पशुओ के सबध मे तुझे सोचने का अधिकार नही है। इतना ही नही महाराज ने मुझे अपने बाणो की भी धमकी दी। बाण चला भी दिया। मा तुम्हारा कहना सच है कि पिता के साथ युद्ध करना उचित नही है। किन्तु मै युद्ध के लिए विवश किया गया हू। मेरे पास और चारा क्या था?

गगा ने अपने पुत्र से कहा–पिता को देव के समान मानकर हाथ जोडने चाहिए। लेकिन तू पिता पर बाण चलाकर उनकी अवज्ञा करता है। पुत्र यह तेरे लिए अनुचित हे।

गगकुमार बोला–माता तुम्हारा कहना यथार्थ है। मुझे ऐसा ही करना चाहिए जैसा तुम कहती हो। मगर इस समय जो प्रसग उपस्थित है उसे ध्यान मे रखते हुए ऐसा करना सम्भव नही है। मैं किसी का अन्याय सहन

नही कर सकता फिर अन्याय करने वाला पिता ही क्या न हो? वेसे तो मुझसे जो बडे हैं सभी पिता– तुल्य हैं लेकिन अन्याय का प्रतिकार करते समय यह सवध नही रह सकता। इस समय राजा पिता नही शत्रु वन रहे हैं।

गगा ने सोचा–गगकुमार इस समय वीररस मे डूबा हुआ है। वह मेरी सुनता नहीं जान पडता। अतएव पति के पास जाकर उन्ही को समझाने का यत्न करू। मैं उनसे जाकर कहूगी कि पुत्र अगर अपना धर्म त्याग दे तो क्या पिता को भी अपना धर्म तज देना चाहिए?

गगा राजा शान्तनु के पास पहुची। गगा को आती देख शान्तनु सोचने लगे–यह कौन महिला मेरी ओर आ रही है? गगा–सी जान पडती है। गगा जब कुछ निकट पहुची तो राजा ने उसे पहचान लिया। गगा को पहचानने के साथ उसे यह भी ध्यान आ गया कि इसी वन मे तो गगा के साथ मेरा विवाह हुआ था। जान पडता है, यह पराक्रमी बालक मेरा ही पुत्र है और इसी कारण मेरे हृदय मे इसके प्रति स्नेह उमड–उमड कर आता है।

गगा जब समीप आ गई तो शान्तनु जैसे विह्वल हो उठा। उसके मुख से सिर्फ यही शब्द निकल सके–गगा तुम यहा हो?

गगा–और महाराज यहा कैसे?

गगा ने आगे कहना आरम्भ किया–में अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिए आपके यहा से रवाना होकर पिताजी के घर पहुची थी। वहा से आकर अव यहा रहती हू। यहा रहकर गगकुमार ने प्राणीमात्र के प्रति निर्वेरभाव प्राप्त किया हे। में भी निर्वेरभाव से रहती हू ओर पुत्र भी। में आपसे यह प्रार्थना करने आई हू कि यह आपका ही पुत्र है। इस पर दया कीजिए। हो सके तो वन के इन पशुओ पर भी दया कीजिए।

गगा का कथन सुनकर शान्तनु के हृदय मे केसे–केसे भाव जागृत हुए यह कहना कठिन हे। उसके मानस–चित्रपट पर वडी तेजी के साथ उसके अतीत जीवन की घटनाए घूम गई। वह अपराधी की तरह मन ही मन लज्जित हुआ ओर वहुत दिनो से खोये हुए पत्नी–पुत्र को सहसा पाकर प्रसन्न भी हुआ। उसने कहा–देवी मे भाग्यशाली हू कि में तुम्हे ओर साथ ही अपने पराक्रमी पुत्र को देख सका। में तुम्हारे वियोग से दु खी था। लेकिन आज की यह घडी वडी शुभ सिद्ध हुई कि तुम भी मिली ओर पुत्र भी मिला।

गगा ने वीच म टोक कर कहा–मेर प्रति आपका मोह वृथा ह।

राजा–क्यो देवी। क्या जन्म भर रूठी रहोगी? क्या एक वार का मरा अपराध क्षमा नही हो सकता?

गगा—महाराज आपका व्यसन गहरा है। वह छूट नही सकता। आप गगा और मृगया मे से मृगया को ही अधिक प्यार करते हैं। अगर आपके हृदय मे मेरे पति स्नेह होता तो मेरे वियोग मे आपने यह व्यसन त्याग दिया होता। इसी से तो मैने आशका प्रकट की थी कि पुरुष अपने वचन का पालन नही कर सकते। वह जो कुछ कहते हैं, ऊपर से कहते है। मेरी यह आशका आपने सत्य सिद्ध कर दी। लेकिन बाते फिर हो सकेगी। आप थके हुए हैं। घर चलकर विश्राम कर लीजिए। रुखा—सूखा खा—पी लीजिए।

शान्तनु—तुम मेरे यहा चलने को राजी नही हो तो मैं तुम्हारे साथ कैसे चल सकता हू?

गगा—रहने भी दो। मैं अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ हू, क्या आप भी अपनी पतिज्ञा पर दृढ है? आपके यहा चलने से मेरी प्रतिज्ञा खडित होती है, मगर मेरे यहा चलने से आपकी पतिज्ञा खडित नहीं हो जाएगी। इसलिए चलिए, शेष बाते वहीं हो जाएगी।

शान्तनु ने चिर तृषित नेत्रो से गगकुमार की ओर देखा। वह नीची दृष्टि किये बगल मे खडा था। माता को जाने के लिए उद्यत देखकर उसने पिता की ओर अर्थ—भरी दृष्टि से देखा, मानो वह भी चलने की प्रेरणा कर रहा था। इसके बाद गगा के पीछे—पीछे पिता—पुत्र उसके निवास—स्थान की ओर चल दिये।

कुछ देर विश्राति लेने के बाद राजा ने फिर वही प्रसग छेड दिया। राजा कहने लगा—गगा अवश्य ही मैं रास्ता चूक गया हू। मगर चूक भी कभी—कभी भलाई के लिए होती है। मैं एक बार मृगया के लिए आया था, तब तुम्हे पा सका। अब की बार आया तो फिर तुम्हे पाया और साथ ही राजकुमार को भी। इस प्रकार मृगया के कारण ही मैंने तुम्हे पाया, खोया और फिर पाया है। अब तुम्हे पाकर खोने की इच्छा नही है। इसलिए अपने निर्णय पर एक बार फिर विचार करो। मैंने अपने कार्य के लिए बहुत पश्चात्ताप किया है।

पति के इस आत्म—निवेदन ने एक बार गगा के हृदय मे उथल—पुथल मचा दी। वह किकर्त्तव्यविमूढ हो गई। भावनाओ के तूफान से हिल गई। उसे सूझ नही पडता था कि राजा के इस कथन का वह क्या उत्तर दे?

विषय—वासनाओ ने गगा को कभी परास्त नही किया। सयम सदेव उसके जीवन का सहचर रहा। जब वह हस्तिनापुर मे राजमहल मे थी तब

भी वह भोगविलास की गुलाम नही वनी। यही कारण था कि क्षण भर के लिए भी उसके मन मे दुविधा नही हुई ओर वह सहजभाव से राजमहल को त्याग कर चली आई। ऐसी थी गगा जिसने आसक्ति पर पूरी विजय पा ली थी।

आज राजा के पश्चात्ताप को देखकर भी उसके अन्त करण मे मोह का स्पर्श नही हुआ। सिर्फ स्त्री–सुलभ कोमल भाव उसके हृदय मे उत्पन्न हुआ, जिसे विकारहीन स्नेह आसक्तिशून्य दया ओर मोहहीन ममता कहा जा सकता है। इस अवस्था मे भी गगा आत्मविस्मृत नही हुई। मोह उसके विवेक को सुप्त नहीं कर सका।

राजा के कथन का गगा ने उत्तर दिया– 'मुझे मालूम हुआ कि ससार मे पश्चात्ताप ही सार हे। ससार के सव पदार्थ निस्सार हैं। माता किसी दूसरे काम मे लगने के लिए अपने बालक को खिलौना देती है। जो बालक खिलौने पर ललचा जाता हे, उसकी माता उसे छोडकर चली जाती है। जो नही ललचता उसकी माता उससे कैसे छूटेगी? ससार मे पति पत्नी पुत्र आदि सब खिलोने हैं। इन खिलौनो पर ललचाने वालो से सिद्धि माता छूट जाती है। लेकिन जो इन खिलौनो का ममत्व त्याग देता है वही सिद्धि माता की शाश्वत सुखमयी गोदी मे रमण करता है यह बात मैने समझ ली है। अब रानी बनने ओर ससार के सुख भोगने की इच्छा नहीं रही। अतएव महाराज! मेरी धृष्टता के लिए क्षमा करे।'

''हा, यह बालक आपका ही हे। इस पर आपका अधिकार हे मेरा नही। मेंने आपकी धरोहर के रूप मे इसे सभाला हे। अब आप अपनी धरोहर को सभाल सकते हें। इस बालक को मेंने क्षत्रियोचित शिक्षा दी हे। अपनी शिक्षा की परीक्षा वह दे ही चुका हे। यह आपकी सेवा करेगा ओर राज्य की रक्षा भी करेगा। आप चाहे तो इसे ले जा सकते हें। मेंने अपना दूसरा पथ चुन लिया हे। जिस ओर जा रही हू, उसी ओर जाने दीजिए। मेरा मोह छोडिये। परमात्मा मे मन लगाइए।

राजा ने कहा–देवी में समझ गया कि तुम ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहती हो। इसमे कोई हर्ज नही हे। लेकिन महल मे चलकर रहा ता क्या वाधा हे?

गगा–ब्रह्मचर्य की साधना करने वालो के लिए वनवास ही उचित हे। वन की महिमा का म वखान नही कर सकती। इसी वन मे आपका ओर मरा प्रथम मिलन हुआ था। इसलिए भी मुझ यही वन अधिक प्रिय ह। मर लिए हस्तिनापुर आर वन म काई भेद नही रह गया ह। राजमहल मर आकर्षण की चीज नही रहा।

शान्तनु–देवी तुम्हारे विचार अत्यन्त उच्च और पवित्र हैं। उन्होने मेरे हृदय मे भी एक नवीन भावना उत्पन्न कर दी है। मै सोचता हू–अब मेरे लिए भी दूसरी पत्नी नही है।

गगा–महाराज कदाचित ऐसा ही हो। मगर विषयवासना की जड गहरी होती है। उसे उखाड फैकने पर ही विरक्ति स्थायी हो सकती है। मगर उसे उखाड फैकना बडा ही कठिन काम है।

एक जगह पढ़ा था–किसी आदमी की पत्नी बीमार हुई। बीमारी की घबराहट मे स्त्री ने अपने पति से कहा– 'नाथ अब मै जाती हू।"

पति ने कहा–अच्छा मैं प्रतिज्ञा करता हू कि तुम्हारे सिवाय मेरी दूसरी पत्नी नही है।

पत्नी–यह तो सिर्फ कहने भर के लिए है।

पति–नही मै सच कहता हू। तुम चाहो तो परीक्षा ले सकती हो। कहो तो तुमसे पहले ही अपने प्राण दे दू।

पत्नी–इस समय आपके वचनो मे वीरता है, लेकिन आप इतनी ही कृपा करना कि मेरे रहते दूसरी स्त्री मत लाना।

कुछ दिनो बाद स्त्री स्वस्थ हो गई। दूसरी तरफ पति के पास कुछ धन बढ गया। धन बढ जाने पर पुराना मकान पुराने मित्र और पुरानी पत्नी प्राय अच्छी नही लगती। यही बात इस पुरुष के विषय मे हुई। उसने अपनी पहली पत्नी के रहते दूसरा विवाह कर लिया। यह श्मशान का वैराग्य नही तो क्या है?

गगा से निराश होकर राजा शान्तनु अत्यन्त उदास विषादमय और लज्जित हुए। अन्त मे उन्होने गगकुमार से हस्तिनापुर चलने के लिए कहा। गगा ने भी राजा का समर्थन किया। लेकिन गगकुमार ने कहा–"मै माता को जगल मे छोडकर राज्य–सुख भोगने के लिए नहीं जा सकता। जिस माता ने मेरे लिए भीषण से भीषण कष्ट सहन किये हैं आज उसे त्याग कर मैं कैसे जा सकता हू?

गगकुमार की बात यथार्थ थी। दूसरी माता होती तो अपने पुत्र के मुख से यह बात सुनकर पसन्न होती। पर गगा और ही तरह की माता थी। उसने सोचा–मेरा पुत्र मेरी असलियत को मेरे सामर्थ्य को ठीक तरह नही जानता इसी से ऐसा कहता है। इसे समझाना चाहिए। यह सोचकर गगा ने कहा–

मेरी रक्षा मै ही करूगी, नहि कायर तू जान
मात–मोह मे पड कर तुझको होना नही बेमान।
पितु सेवा औ राजकाज मे तज दो तन–धन–प्राण।।47।।

गगा कहने लगी–वत्स! यद्यपि तेरे शब्दो मे मातृभक्ति हे लेकिन साथ ही उनसे प्रकट होती हे कि तू भ्रम मे हे। तेरे शब्दो से ध्वनित होता है जैसे तू ही मेरी रक्षा कर रहा है। परन्तु यह तेरी भूल है। तेरे जन्म से पहले भी मैं इस वन मे रहती थी। उस समय मेरी रक्षा कौन करता था? बेटा मैं तेरे–जैसे वीर पुत्र की माता हू। मैं कायर होती तो तू वीर कहा से हो जाता? मेरे लिए रक्षक की आवश्यकता नहीं है। मुझे अपनी रक्षा और सेवा की तनिक भी चिन्ता नहीं है। सिहनी अपनी रक्षा आप कर लेती है। तू मुझे भी ऐसा ही समझ। मेरी रक्षा की चिन्ता छोड दे। प्रजा की रक्षा का भार अपने माथे ले और पिता का भार कम कर। प्रजा–पालन के अवसर पर माता की सेवा करने का बहाना करना कायरता है। प्रजा का पालन करना तेरा कर्त्तव्य है। अपने कर्त्तव्य को सभाल। पिता के साथ जाकर अपनी सब शक्तिया प्रजा की रक्षा मे व्यय कर। जव तेरे पिताजी को किसी प्रकार का मोह हो तब उन्हे सावधान करना और ऐसा प्रयत्न करना कि उन्हे सुख और सन्तोष मिले।

माता की वात का गगकुमार कुछ उत्तर नहीं दे सका। माता ने जिस ढग से उसे पिता के साथ जाने का आदेश दिया, उसमे कहने–सुनने की कोई गुजाइश न रही। गगकुमार का हृदय मातृवत्सलता से गद्गद् हो गया। उसने माता का आज जो स्वरूप देखा पहले कभी नही देखा था। श्रद्धा से हृदय भर गया। वह माता के सामने नीचा सिर किये चुपचाप खडा रहा। सोचने लगा–माता क्या हे उत्सर्ग की देवी हे। त्याग की प्रतिमा हे। बलिदान की सजीव मूर्ति हे। इनका आत्मोत्सर्ग कितना विराट ओर उत्कृष्ट हे। साक्षात शक्ति हे। जगत की रक्षा के लिए व्यग्र हे ओर अपने प्रति निश्चिन्त निस्पृह ओर निरपेक्ष हे। न जाने इनके व्यक्तित्व का निर्माण किन उपादानो से हुआ हे। माता धन्य हे ओर मे उनका पुत्र होने के कारण धन्य हू।

गगा ने चेष्टा से समझ लिया कि गगकुमार अव विरोध नही करेगा। उसने कहा–पुत्र तू वुद्धिमान हे। फिर भी दो शव्द कहती हू। माता का हृदय हे। कुछ दिये विना वह पुत्र को विदा नही कर सकती। मेर पास काई एसी सोगात नही जा इस प्रसग पर तुझे भट दे सकू। फिर भी म जा कहती हू उसका आर्थिक मूल्य चाहे न हा पर जीवन–सवधी मूल्य वहुत ह। इसलिए मेरी य वात तू मत्र की तरह याद रखना।

गगा अपने पुत्र को जो अन्तिम उपदेश देना चाहती है, उसे सुनने से पहले आपको थोडा विचार कर लेना चाहिए। गगा और गगकुमार की कथा सिर्फ उन्ही के लिए नही है। उनका आपस का वार्तालाप उनके लिए नही वरन आपके उपयोग के लिए ही है। भीष्म पितामह कहलाते है। पितामह होने के नाते उनकी वस्तु सभी की विरासत मे है। इस पकार गगा के द्वारा उन्हे जो शिक्षा मिली है वह शिक्षा भी आपके लिए है। आप उस शिक्षा को हृदय मे धारण करो। और अपनी शक्ति के अनुसार अनुसरण करो तो निस्सदेह आपका कल्याण होगा।

गगा का कथन सुनकर गगकुमार उत्सुक होकर, हाथ जोडकर, नमता के साथ माता के सामने खडा हो गया। माता कहने लगी–

मौन पकड जब रहे कुवर तब, बोली मात हर्षाय,
ईश भक्ति मे मन रहे नित, अहमाव न आय।
नम्र रहो अभिमान त्याग कर, जिनगुण नित ही गाय।।48।।
दीन जनो पर प्रेम करो तुम सत्य वचन सुखकार,
सुत सम पालो सदा प्रजा को सज्जन जन सत्कार।
तुम ब्रह्मचर्य व्रत पालोगे तो होओगे भव–पार।।49।।

यो तो ये पक्तिया गगकुमार के लिए गगा कह रही है परन्तु वास्तव मे गगा और गगकुमार तो निमित्त है। उन्हे निमित्त बनाकर आपको यह उपदेश दिया जा रहा है। गगा ने गगकुमार को क्या उपदेश दिया था इसका कोई इतिहास नही हे। फिर भी जो उपदेश हम पाते हें वह ऐसा उपदेश हे कि सदाकाल उसकी समान रूप से आवश्यकता है। किसी भी काल मे वह निरुपयोगी नही है क्योकि उसमे धर्म का तत्व समाया हुआ है और धर्मतत्व शाश्वत है। यह उपदेश अतीत काल मे भी कल्याणकारी था और उसी तरह आज भी कल्याणकारी है। वह गगकुमार के लिए भी उपयोगी था और आपके लिए भी उपयोगी है। इसलिए आप एकाग्र चित्त से उस पर विचार करे और फिर जीवन–व्यवहार मे उतारे।

हाथ जोडकर विनीत शिष्य की भाति नम्र–काय खडे हुए गगकुमार से गगा कहने लगी–हे पुत्र! मैंने तुझे जन्म दिया हे ओर पाला–पोसा है। इसमे मेरी एक पधान भावना यह थी कि मे तेरे लिए जो कुछ कर रही हू उसका लाभ जगत को मिले। अब तू पिता के साथ जा रहा है ओर सम्भव है कि राज्य का सचालन का उत्तरदायित्व भी तेरे सिर आ जाए इसलिए मैं उपदेश के तौर पर कुछ कहना चाहती हू।

पहली और प्रधान बात यह है कि चाहे सुख का समय हो चाहे दु ख का हो चाहे सम्पत्ति हो या विपत्ति हो परमात्मा को मत भूलना। परमात्मा को सदा याद रखना।

घडी मे एक बार चाबी भरी जाती है फिर भी वह बहुत समय तक चलती रहती है। उसमे हर समय चाबी भरते रहने की आवश्यकता नही पडती। किसी घडी मे दिन मे एक बार किसी मे सप्ताह मे किसी मे महीने मे और किसी मे वर्ष मे एक बार ही चाबी देनी पडती है। फिर भी घडी नियत समय तक चलती रहती है। अगर कोई घडी चाबी देते समय चले और चाबी देना बन्द करते ही बन्द हो जाये तो यही कहा जायेगा कि यह घडी खोटी हो गई है। इसी तरह जितनी देर परमात्मा का भजन किया जाये उतनी ही देर वह स्मरण मे रहे और फिर याद न रहे—जीवन—व्यवहार के समय विस्मृत हो जाये तो वह परमात्मा का सच्चा भजन नही कहा जा सकता। घडी मे चाबी भरने के समान एक बार परमात्मा को नमन करके जो पुरुष सदैव परमात्मा को स्मरण रखता है वह कभी पापकर्म नही कर सकता। ऐसा ईश्वरभक्त कभी परस्त्री ओर परधन की तरफ बुरी दृष्टि भी नही डाल सकता।

गगा कहती है— 'अगर तू परमात्मा को नमन करता रहे और उसे भूले नही तो समझ लेना कि मेरी—तेरी जुदाई नही है—मैं तेरे समीप ही हू। तू जो भी कुछ करे, ईश्वर को स्मरण करके ही करना। ऐसा करने से किसी भी कार्य के विषय मे तुझे अहकार नही होगा। और अहकार त्यागकर नम्र बनना आवश्यक हे। अपने चित्त मे किसी भी दिन ओर किसी भी कारण से अभिमान का उदय मत होने देना। ईश्वर को वही प्रिय हे जो नम्र हे। तुझे भी वही वृक्ष अच्छा लगता हे जो फलयुक्त होकर नम्र हो जाता हे। इसलिए नम्रता धारण करना।

नम्र होने का अर्थ यह नही कि अपने मे हीनता आने दी जाय। पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज अक्सर कहा करते थे कि मनुष्य को न तो पानी जेसा ही होना चाहिए ओर न पत्थर जेसा होना चाहिए। मनुष्य को वीकानेरी मिश्री जेसा होना चाहिए। बीकानेरी मिश्री अगर फेककर मारी जाय ता चोट पहुचाती हे ओर अगर मुह मे डाली जाय तो मिठास दती हे। इसी प्रकार मनुष्य को सद्‌गुणो के प्रति नम्र ओर दुर्गुणा के प्रति कठोर होना चाहिए।

आप यह न सोचे कि गगा की यह शिक्षा साधुआ के लिए ही ह गृहस्थ इसका पालन नही कर सकते। ऐसा समझना भयानक भूल ह। गगकुमार साधु नही हो रहा था। वह राज्य क सचालन के लिए जा रहा था।

राज्य–सचालन के लिए यह शिक्षा दी गई है। जैसे अन्न और प्रकाश सभी के लिए हितकारी होता है उसी प्रकार यह शिक्षा भी सबके लिए हितकारी है। इस शिक्षा को जो जितने अशो मे ग्रहण करेगा वह उतने ही अशो मे लाभ उठा सकेगा। जैसे शुद्ध हवा और पानी का मूल्य न होने के कारण वे अनमोल है–उनका मूल्य हो ही नही सकता इसी तरह यह शिक्षा भी अनमोल है। लेकिन जैसे लोग शुद्ध हवा और पानी का महत्व भूल रहे है, वैसे ही आप इस उपदेश के महत्व को न भूले। इसे हृदय मे स्थान दे और अपना कल्याण करे।

गगा कहती है– 'पुत्र! राज्य दीन जनो को चूसने के लिए नही है। सबल से निर्बल की रक्षा करना ही राज्य–व्यवस्था का उद्देश्य है। इसी उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए राज्य की आवश्यकता है। अब तक तूने इस वन मे रहकर पशुओ और पक्षियो की रक्षा की है मगर अब तेरे कधो पर भारी बोझ आ रहा है। अब तुझे सबल से निर्बलो की रक्षा करनी होगी। ससार के समस्त झगडो की जड क्या है? असली जड का पता लगाया जाय तो प्रतीत होगा कि सबलो द्वारा निर्बलो का सताया जाना ही सब झगडो का मूल है। तू सताये जाने वाले निर्बलो का समर्थ सहायक बनना यही मेरा उपदेश है और यही मेरा आशीर्वाद है।

गगा फिर कहती है–'हे पुत्र! तू दीन जनो पर अनुकम्पा करना। अनेक दीन तेरी अनुकम्पा की प्रतीक्षा करते हैं। ऐसे समय मे तुझे मै अपनी गोद मे कैसे छिपाए रख सकती हू? सूर्य अपने मडल मे ही छिपा रहे तो उसकी कद्र कैसे हो सकती है? अपने मडल से बाहर निकलने से ही उसकी कद्र हे। इसी मे उसकी सार्थकता है। तेरी शक्ति की सार्थकता भी इसीमे है कि तू दीन–हीन जनो की अनुकम्पा करने के समय घर मे ही घुसकर न बैठा रहे। उनकी रक्षा करने के लिए बाहर निकल पडे। समय आने पर सभी को बाहर निकलना पडता है और जो बाहर नहीं निकलता उसे ससार मे कोई नहीं पूछता। और हे पुत्र! तू सदा सत्य का ही पक्ष लेना, असत्य से दूर रहना।

बहुत से लोग अक्सर असत्य का पक्ष ले बैठते हैं। जरा सी कठिनाई आई कि सत्य को धता बता देते है और असत्य को अगीकार कर लेते हैं। ऐसे लोगो को मार्ग बतलाने के लिए शास्त्र मे अरणक श्रावक का चरित्र बतलाया गया है। अरणक (अर्हन्नक) श्रावक का जहाज डूब रहा था। जहाज के सभी मुसाफिर कह रहे थे कि जहाज डूब जाने से सभी लोग डूब मरेगे। सबको बचाना है तो सत्य को छोड दो। लेकिन अरणक ने कहा–सत्य पर दृढ रहने वाले का जहाज नही डूबा करता। जहाज उसका डूबता है जो सत्य

से भ्रष्ट हो जाता है। और वह सत्य पर अटल रहा। अरणक सोच सकता था कि सभी लोग सत्य को त्यागने का आग्रह कर रहे हैं। सत्य को त्यागने से इस समय मेरी बदनामी नही होगी, वरन यह सब मुसाफिर मेरी प्रशसा करेगे। फिर भी उसने ऐसा नही सोचा और अन्त तक वह दृढ रहा। जैसे अरणक दूसरो के आग्रह करने पर भी सत्य से विचलित नही हुआ—सत्य से चिपटा रहा, उसी प्रकार आप भी सत्य को मजबूत पकड कर बैठे रहे सत्य की अवहेलना न करे। सत्य की अवहेलना करना अपनी आत्मा के सच्चे विवेक की अवहेलना करना है।

गगा कहती है— 'पुत्र! तुझे दूसरे का कल्याण प्रिय है। इसलिए मैं तुझे छोड रही हू। तू मेरा उद्देश्य पूर्ण करना। पुत्र के समान प्रजा का पालन करना। सत्पुरुषो का सत्कार करना। दुर्जनो से दूर रहना। दुर्जनो का सत्कार—पुरस्कार करना सज्जनता का नाश करना है।

गुलिश्ता मे कहा है— सज्जनो के साथ अन्याय करके दुर्जनो का पक्ष लेने वाला सज्जनो का नाश करता है, वास्तव मे यह बात सत्य हे। अनेक प्रमाणो द्वारा इसकी सत्यता सिद्ध की जा सकती हे। विभीषण रावण का भाई होकर भी राम के पास क्यो गया था? इसलिए कि उसे भाई की अपेक्षा सज्जनता अधिक प्रिय थी। वह रावण को पिता के समान मानता था। उसने रावण को शक्ति भर समझाया भी था। फिर भी जब रावण नही माना तो सज्जनता की रक्षा के लिए वह राम के पास चला गया।

गगा ने गगकुमार से कहा था— 'मे इस समय सूत्र रूप मे जो शिक्षा तुझे दे रही हू, उसे याद रखना। गगा की शिक्षा के प्रताप से ही भीष्म न्यायप्रिय हुए। यद्यपि वह अन्यायी कोरवो के साथ रहे फिर भी पाडवो के प्रति उनके हृदय मे स्नेह का भाव था। समय—समय पर वह दुर्योधन को समझाया भी करते थे। इस प्रकार शरीर से कोरवो के साथ होते हुए भी वे हृदय से सज्जनो का सत्कार करते थे। उन्होने सदा पाण्डवो का हित ही चाहा था।

आज तो लोग समझते हे कि चाहे जो हो मगर पुत्र के हाथ पीले हो जाए। अर्थात पुत्र का विवाह हो जाय। घर मे वहू आ जाय तो माना कृतकृत्य हुए। इस प्रकार सन्तान को विवाहित दखकर लाग फूले नही समाते। मानो मनुष्य—जीवन का सार विवाह कर लना आर सन्तान उत्पन्न करना ही हे। यह कितनी हीन मनोदशा ह। लकिन गगा अपन पुत्र का अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन की शिक्षा दती ह। वह कहती ह—पुत्र! अगर तू

ब्रह्मचर्य का पालन करेगा तो सारे ससार का कल्याण कर सकेगा और मेरी कोख को धन्य बनाएगा।

आज कौन मानने को तैयार है कि ब्रह्मचर्य पालने के लिए सन्तान को शिक्षा देना उचित है? लेकिन गगा उसे उचित मानती थी और इसी कारण उसने गगकुमार को ब्रह्मचर्य पालने की शिक्षा दी है। भीष्म को जैन और जैनेतर सभी ब्रह्मचारी स्वीकार करते है। अतएव गगा के उपदेश को ध्यान मे रखो और यह भावना रखो कि हमारी सन्तान अगर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन कर सके तो अच्छा ही है अन्यथा कम से कम देशत शीलव्रती तो उसे बनाए ही। इस पकार भावना रखकर सन्तान को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने से और उसके चारो ओर का वातावरण उसी प्रकार का बनाने से उसका भी कल्याण होगा आपका भी कल्याण होगा और जगत का भी कल्याण होगा।

दूसरी माताए तो काम के समय अपने पुत्र को छिपाने लगती हैं, लेकिन गगा अपने पुत्र को कार्य का भार उठाने की प्रेरणा करती है। वह समझती है कि रत्न की कीमत समुद्र या खजाने मे पडे रहने पर नही हो सकती। जौहरी के हाथ मे पहुचने पर ही रत्न की कीमत होती है। इसी प्रकार गगकुमार की कीमत यहा बने रहने से नही होगी, किन्तु पिता की सेवा करने से और अपने धर्म का पालन करने से होगी।

जब बालको का सुधार और बिगाड बहुत अशो मे माता–पिता के ही हाथ मे है और पत्येक माता–पिता अपने बालक को सुधारना चाहता है–कोई बिगाडना नही चाहता तो फिर क्यो इस ओर उपेक्षा की जाती है? माता–पिता द्वारा प्रारम्भ मे डाले गए सस्कारो को देव भी बिगाडने मे समर्थ नही हो सकता। अतएव गगा के द्वारा दी हुई शिक्षा की तरफ ध्यान देकर बालक को सुसस्कारी सदाचारी धर्मपरायण और कर्त्तव्यशील बनाना ही उचित है। गगा फिर कहती है–

निष्काम वृत्ति को धार करो तुम राज–काज–व्यवहार,
निर्विकार चित मे मत आने देना कभी विकार।
स्फटिक मणि सम निर्मल रहना जिससे होवे सुधार।।50।।
विनय सहित कर श्रवण वचन वह बोला गगकुमार
भाग्यशाली मैं हुआ आज जो– पाया शिक्षा–सार।
तव आज्ञा अनुसार रहूगा नही लोपूगा कार।।51।।
विधिवत् वदन करके मात को चलने हुए तैयार
आशीर्वाद तब दिया मात ने धर्म बडा सुखकार।

हर्ष–शोक अश्रु की दृष्टि से देखे राय असवार।।52।।
पुत्र पति को समझा करके भेजे राय के ताय?
किसी तरह से मन बहलाते, आये शहर के माय।
स्वतन्त्र वन मे रहे गगाजी, सुखमय समय बिताय।।53।।

गगा कहती है– पुत्र! जिनका हृदय निर्वल होता है उन्हे सत्ता का नशा वहुत जल्दी चढ जाता हे। सत्ता पाकर और उसके नशे मे बेभान होकर सत्ता का दुरुपयोग करने वाले लोग वहुत हैं। सदुपयोग करने वाले विरले ही दृष्टिगोचर होते हैं। अगर महाराज कभी तुझे राज्य–सत्ता सौंपे तो तू उसका दुरुपयोग मत करना। निष्कामभाव से राज्य का सचालन करना।

कहा जा सकता हे कि निष्कामभाव से राज्य का सचालन किस प्रकार किया जा सकता है? राजा को साम, दाम, दड ओर भेद की नीति से काम लेना पडता है। ऐसी स्थिति मे निष्काम भावना केसे रह सकती है?

इस प्रश्न का समाधान शास्त्र मे बहुत विचार के साथ किया गया है। इसके लिए भरत चक्रवर्ती का उदाहरण भी दिया गया हे। चक्रवर्ती भरत ने भगवान् ऋषभदेव से पूछा– प्रभो! मैं कितने भवो के बाद मोक्ष प्राप्त कर सकूगा? भगवान् ने उत्तर दिया–भरत! तू इसी भव मे मोक्ष प्राप्त करेगा।

इस प्रश्नोत्तर के समय वहा एक ओर पुरुष बेठा था। उसने मन मे सोचा–भरत महाराज चक्रवर्ती हैं। इनके आरम्भ–समारम्भ का ठिकाना नही! फिर भी भगवान् ने इन्हे इसी भव मे मुक्ति मिल जाना बतलाया हे तो मुझे तो इनसे भी पहले मुक्ति मिल जानी चाहिए। इस तरह सोचकर उसने भी भगवान से यही प्रश्न किया। भगवान वीतराग ओर त्रिकालदर्शी थे। उन्होने कहा–अभी तेरे ससार का अन्त नहीं हे–अर्थात् तेरा मोक्ष समीप नही हे।

भगवान का उत्तर सुनकर वह सोचने लगा–भगवान भी पक्षपात करते जान पडते हैं। भरत छह खड के राजा हे फिर भी इसी भव मे मोक्ष प्राप्त कर लेगे और मेरे भवभ्रमण का अभी अन्त ही नही हे। उसे विश्वास हो गया कि भगवान ने पक्षपात करके यह उत्तर दिया हे। भरतजी उसके मन की बात ताड गये। उन्होने कोई युक्ति करके उसका भ्रम दूर करने का विचार किया।

भरत ने उसे अपने पास बुलाया। उससे कहा–तुम्हारे मन मे यह भ्रम घुसा हुआ हे कि भगवान ने मोक्ष बतलाने मे मेरे साथ पक्षपात किया हे।

आज का जमाना होता तो वह भरत के प्रभाव का ओर भगवान के प्रभाव का ख्याल करके गलत उत्तर दे देता या उत्तर ही न देता। मगर उस

समय के लोग बहुत सरल स्वभावी थे। अतएव उसने कहा—हा महाराज आपका ख्याल ठीक है।

भरत ने कहा— ऐसा भ्रम होना अस्वाभाविक बात नही है। तेरे और मेरे आरम्भ मे बिन्दु और सिन्धु के बराबर अन्तर है। फिर भी भगवान् ने मुझे इसी भव मे मुक्त होना बतलाया है और तुम्हारा ससार अपरिमित कहा है। भगवान के इस कथन पर बहिर्दृष्टि वालो को सन्देह हो सकता है। यद्यपि भगवान् पूर्ण वीतराग और सर्वज्ञ है, उनके वचन पर सन्देह नहीं होना चाहिए, लेकिन सब पुरुषो की चित्तवृत्ति एक—सी नही होती। बल्कि भगवान् के वचन पर अश्रद्धा होना ही इस बात की सूचना है कि अश्रद्धा करने वाले का मोक्ष निकट नही है। खैर तुम्हे एक काम करना होगा।

उस पुरुष ने कहा—भला, आपका काम क्यो नही करूगा?

भरत बोले—मैं तेल से भरा एक कटोरा तुम्हे देता हू। तुम इस कटोरे को लिये—लिये विनीता नगरी मे घूम आओ, मगर तेल की एक भी बूद इसमे से न गिरने पावे। एक भी बद गिरी तो ये सिपाही तुम्हारे साथ जा रहे हैं, बूद गिरते ही तुम्हारा सिर गिरा देगे।

इस प्रकार कहकर भरत ने उस आदमी के साथ कुछ सिपाही कर दिये। सिपाहियो से एकान्त मे कह दिया गया कि इसे भय भले ही दिखाना, मगर मार मत डालना। उस दिन भरत ने विनीता नगरी खूब सजवाई थी। आदमी तेल से भरा कटोरा हथेली पर रखकर चला। वह सोचता था कि यह तेल क्या है मेरे प्राण हैं। एक भी बूद टपका नहीं कि मेरे प्राणो पर आ बनेगी। इस भय के कारण वह बडी सावधानी से, कटोरे पर दृष्टि गडाये धीमे—धीमे चल रहा था। कटोरे के तेल मे सजी हुई विनीता नगरी का प्रतिबिम्ब पडता जाता था। वह प्रतिबिम्ब को देखता जाता था और सोचता जाता था कि यह नगरी का प्रतिबिम्ब है। अगर मै नगरी की सजावट देखने लगा और तेल गिर पडा तो मार डाला जाऊगा। कोई प्रतिबिम्ब अच्छा भी आता था और कोई बुरा भी। कोई सामान्य आता था और कोई विशेष भी। लेकिन उस ओर उसका कोई लक्ष्य नहीं था। उसकी दृष्टि का एक मात्र केन्द्र कटोरे मे का तेल था। वह सोचता था—इस प्रतिबिम्ब के भुलावे मे पडना अनर्थकारी होगा।

वह आदमी जैसे—जैसे चलता जाता था प्रतिबिम्ब भी पलटते जा रहे थे। परन्तु उसने उस ओर लक्ष्य नही दिया। जैसे—तैसे भरा कटोरा भरत के सामने लाकर रख दिया।

भरत के सामने कटोरा रख देने के बाद उसकी जान मे जान आई। वह सोचने लगा—चलो, जान बची लाखो पाये।

भरत—कहो, नगरी मे घूम आये?

आदमी—जी हा।

भरत—तेल मे से बूद तो नहीं गिरने दी?

आदमी—इसमे मेरे प्राण थे। कैसे गिरने देता महाराज?

भरत—आज विनीता नगरी बहुत सुसज्जित है। देखा कैसी सजावट हुई है?

आदमी—तेल मे प्रतिबिम्ब पडते थे और वे एक के बाद दूसरे बदलते भी जा रहे थे। मगर मेरा सारा ध्यान तो तेल की ओर था। मैं प्रतिबिम्बो को देखकर तेल को कैसे भूल सकता था।

भरत—तुमने पुरस्कार के योग्य काम किया है। लेकिन जो बात बतलाने के लिए मैंने तुम्हे कटोरा लेकर भेजा था, वह समझे या नहीं?

आदमी—मैं कुछ नही समझा। कृपा करके आप ही बतलाइए।

भरत—मैं तुम्हे यह समझाना चाहता था। विनीता नगरी आज अपूर्व शोभा धारण किये हे। तुमने नगरी मे चक्कर लगाया फिर भी नगरी के सोन्दर्य से कोई सरोकार नही रखा। तुम्हारा मन इस कटोरे मे ही लगा रहा। यही स्थिति मेरी है। में राज्य—सम्पदा के बीच मे रहता हू, मगर मेरा मन उसमे लिप्त नहीं होता। मेरा मन एकान्त धर्म मे ही लीन रहता है। तुमने कटोरे मे पडने वाले प्रतिबिम्बो के विषय मे माना था कि ये तो आते—जाते ही रहते हे। इसी तरह मैं भी ससार की सुख सामग्री को पुण्य का प्रतिबिम्ब मानता हू ओर यह भी मानता हू कि यह तो आते—जाते ही रहते हैं। इसमे क्या धरा हे? इस विचार के कारण ससार की सर्वोत्तम सुख—सामग्री के बीच मे रहकर भी मेरा मन उसमे कभी लिप्त नहीं होता। इसी कारण भगवान ने मुझे इसी भव मे मोक्ष प्राप्त होना कहा हे। दूसरी ओर तुम हो। तुम प्रकट मे तो कम आरम्भ—समारभ करते हो किन्तु ससार के प्रपचो मे डूबे रहते हो। इसी कारण प्रभु ने तुम्हारा मोक्ष निकट न होना वतलाया हे।

भरत की यह कथा बडे काम की हे। आप भी सोच सकत हें कि ससार के पदार्थ आते—जाते ही रहते हे। मिलना और विछुडना पुद्गलो का स्वभाव हे। फिर में इनमे क्यो फसू? इस प्रकार विचार करन स हृदय क विकार दूर हो जाते हें चित्त की वृत्ति शात ओर पवित्र वनती हे।

कहने का आशय यह है कि भरत छह खण्ड के अधिपति होने पर भी और राज्य की व्यवस्था करते हुए भी किस प्रकार निष्काम रहते थे। भरत की यह कथा निष्काम कर्म करने का आदर्श उपस्थित करती है।

गगा कहती है—हे पुत्र! तू भी भरत की तरह निष्काम भाव से राज्य करना। मन मे किसी पकार का विकार मत आने देना।

गगा का उपदेश आत्मा को पवित्र बनाने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। जो इस पर ध्यान देगा और अमल मे लाएगा, उसका कल्याण हुए बिना नही रह सकता।

आखिर द्रवित हृदय से गगकुमार ने गगा को प्रणाम किया और पिता के साथ रवाना हो गया।

11 · शान्तनु और सत्यवती की भेट

गगकुमार हस्तिनापुर मे आ गया। महाराज शान्तनु अपने इकलोते पुत्र को पाकर मानो निहाल हो गए। गगकुमार भी कोई साधारण पुत्र नही था। उसकी असाधारण विनम्रता, कुशलता आदि गुण देखकर शान्तनु के आनन्द की सीमा न रही। प्रजा को भी सुयोग्य उत्तराधिकारी पाकर अपार हर्ष हुआ। लेकिन गगकुमार के हृदय की थाह ली जाय तो विदित हुए बिना नहीं रह सकता कि उसके हृदय के भीतरी भाग मे कोई बडा असन्तोष कोई अभाव, घर किये बैठा है। वह बोलता–चालता है राजकाज मे योग देता है राजमहल मे सभी प्रकार की सुख–सामग्री उसके मनोरजन के लिए प्रस्तुत है किसी वस्तु की कमी नहीं है फिर भी उसमे कभी आन्तरिक आह्लाद नजर नही आता। वह गम्भीर बना रहता है। यत्र की तरह अपने कर्त्तव्य मे जुटा रहता है। उसके जीवन मे एक प्रकार की नीरसता व्यापी रहती है। कभी किसी ने उसे खिलखिला कर हसते नही देखा। मित्रमडली मे वह बैठता है लेकिन वहा भी एक अपरिलक्षित विषाद जैसे उसे घेरे रहता है। जान पडता है उसका शरीर हस्तिनापुर मे है और हृदय वन मे हे। शरीर उसने अपने पिता की सेवा मे समर्पित कर दिया हे ओर हृदय माता के चरणो मे हे।

महाराज शान्तनु गगकुमार की यह अवस्था देखते हैं ओर उदास हो जाते हैं। गगकुमार को अत्यन्त स्नेह के साथ बुलाते हें बिठलाते हें उससे बाते करते हैं समझाते हें ओर उसके आन्तरिक विषाद को दूर करने के सभी सम्भव उपाय करते हैं। गगकुमार पिता के प्रति विनम्र व्यवहार करता हे लेकिन जो विषाद उसके जीवन मे एकरस हो गया हे उसे वह दूर नही कर सकता। यह देख शान्तनु कभी–कभी विह्वल हो उठते हे। गगकुमार की उदासीनता के लिए अपने आपको अपराधी भी समझते हें और गगा का स्मरण करके छटपटाने लगते हें। मगर गगा की कभी प्रत्यक्ष रूप से चर्चा नहीं करते। शायद इसलिए कि इससे गगकुमार को अधिक कष्ट होगा।

कभी–कभी गगकुमार सोचने लगता हे– माता– अलोकिक त्याग और बलिदान की साक्षात मूर्ति। धर्म के लिए तूने पति का त्याग किया ह। पुत्र के कल्याण का विचार करके तूने पुत्र को भी त्याग दिया हे। किस साधना के लिए तू वनवास कर रही ह? यह साचते–साचत उसका हृदय विह्वल हा जाता हे। गगकुमार एक क्षण क लिए भी अपनी माता की मूर्ति का आखा स ओझल नही होन देता।

सट्टेबाज सौ–सौ शपथ खाकर भी अपनी शपथ को भग कर ही डालता है। उसे सट्टा किये बिना चैन नही पडता। शराबी शराब न पीने का आज निश्चय करता है और शाम होते–होते उसका निश्चय हवा मे उड जाता है। सट्टा भी दुर्व्यसन है मदिरापान भी दुर्व्यसन है। इसी तरह शिकार करना भी दुर्व्यसन है। शिकारी की भी वही हालत होती है जो शराबी और सट्टेबाज की। शान्तनु प्रतापी राजा होकर भी अपने कुव्यसन का गुलाम है। वह बडे भूमिभाग पर शासन करता है पर अपने हृदयप्रदेश पर उसका अधिकार नही है। कभी–कभी सोचता है–जिस दुर्व्यसन के कारण मुझे गगा–जैसी सती और धर्मपरायण रानी से हाथ धोना पडा उसके अधीन होना कितनी नीचता है। लेकिन जब उसकी चाण्डाल–चौकडी जमा होती है और वह शिकार की गुणावली का गान करती है तो शान्तनु अतीत को भूल जाता है और शिकार के लिए लालायित हो उठता है।

एक दिन की बात है। राजा शान्तनु घोडे पर बैठा हुआ अपने साथियो के साथ यमुना के किनारे–किनारे चला जा रहा था। अचानक उसे सुगन्ध का अनुभव हुआ। राजा सोचने लगा–यह असाधारण गध किस वस्तु की होगी? मैंने तरह–तरह के इत्र काम मे लिये हैं, भाति–भाति के फूल सूघे है मगर इस प्रकार की गध तो कभी किसी मे नही देखी। यह कैसी मोहक सुगन्ध है?

राजा शान्तनु उस सुगन्ध पर मुग्ध होकर आगे बढा। कुछ आगे जाने पर उसने देखा–एक कन्या नाव पर खडी नाव चला रही है। उसके रूप–यौवन को देखकर राजा दग रह गया। वह यमुना के किनारे टकटकी लगाकर कन्या की ओर देखने लगा। वह सोचने लगा–यह रत्न यहा कैसे आया?

राजा को टकटकी लगाए अपनी ओर देखते देख कन्या को भी विस्मय हुआ। वह सोचने लगी–यह पुरुष वेषभूषा से राजा जान पडता है। राजा होकर भी यह इस प्रकार मेरी ओर निहार रहा है। कन्या इस आश्चर्य मे डूबी है और राजा इस आश्चर्य मे डूबा है कि इतनी असाधारण रूपराशि की स्वामिनी यह कन्या नाव कैसे चला रही है?

राजा ओर कन्या अपने–अपने मन मे इस प्रकार के विचार करने लगे। कन्या जब समीप आई तब राजा शान्तनु उससे कहने लगा–सुभगे! क्या मै तुम्हारा परिचय पा सकता हू? मेरे सामने बोलने मे तुम्हे सकोच न हो तो तुम्हे अपना परिचय देने की याचना करता हू।

राजा के इस भाति सम्मानपूर्ण शब्द सुनकर कन्या, जिसका नाम सत्यवती था आश्चर्य करने लगी। उसने किचित लज्जायुक्त होकर कहा—महाराज! मेरा परिचय ही क्या है? मैं शिवदास कोली की कन्या हू। मेरा नाम सत्यवती है। मै अपने पिता का काम नाव चलाना भी करती हू।

राजा—ऐसी सुन्दरी और सुकुमारी होकर भी यह काम कैसे करती हो?

सत्यवती—महाराज! जिस कुल मे जन्म लिया है उसके कार्य से घृणा करना निरा अहकार है। मैं कोली के कुल मे जन्मी हू। नाव चलाना इस कुल का परम्परा का कर्त्तव्य है। अगर मैंने नाव चलाना न सीखा होता तो मैं पिता को कष्ट देने वाली साबित होती।

राजा—तुम्हारा विचार उदार ओर उत्तम है सुन्दरी, मगर नाव चलाने का कठिन कार्य तो पुरुषो के योग्य है। गृहकार्य करना ही कन्याओ के लिए काफी है। तुम इस कठोर कार्य के योग्य नही हो।

सत्यवती—मैं किस काम के योग्य हू और किस काम के लिए अयोग्य हू, यह निर्णय करना मेरे पिताजी के हाथ मे है। मैं स्वय इसका निर्णय नही कर सकती। मैं तो—

आज्ञा गुरूणामविचारणीया।

अर्थात—गुरुजनो की आज्ञा आख मूदकर माननी चाहिए इस सिद्धान्त का पालन करती हू।

राजा—सुन्दरी जेसा तुम्हारा बाह्य रूप श्रेष्ठ है वैसा ही आन्तरिक रूप भी। यद्यपि तुम्हारा उत्तर निरुत्तर बनाने वाला हे, फिर भी कहे बिना नही रहा जाता कि तुम्हारा पिता लोभी जान पडता हे। इसी कारण उसने तुम—जैसी सुकुमारी को नाव चलाने के कठिन ओर सकटमय कार्य मे लगा रखा हे।

राजा का यह आक्षेप सुनकर सत्यवती की त्योरिया चढ गई। लेकिन वह तत्काल सम्भल कर कहने लगी—आप जो कुछ कहना चाहे मुझको ही कह ले पिताजी के विषय मे कुछ न कहे। आपने बिना जाने—पहिचाने ही मर पिताजी को लोभी कह दिया! आप उन्हे लोभी केसे कह सकत हैं? जिरान यह आज्ञा दे रखी हे कि जो पेसा न दे सकता हो फिर भी पार उतरना चाहता हो उसे धर्मार्थ पार उतार देना वह क्या लोभी हा सकता हे? अपन पिता की इस आज्ञा की प्रतीति म आपको करा सकती हू। आप पार चलना चाहत हा तो चलिए। कुछ लिए विना ही में आपको परले पार पहुचा दूगी।

शान्तनु राजा है। फिर भी उसे सत्यवती की बात सुनकर दग रह जाना पडा। वह सोचने लगा—यह कन्या धन्य है, जिसमे माता—पिता के प्रति अगाध श्रद्धा है। यह निर्भीक है और उदार भी है। बिना कुछ लिए मुझे पार उतारने को तैयार है। मुझे राजा समझकर भी कुछ मागती नही वरन मेरा उपकार करने को उद्यत है।

राजा ने कहा—जिसमे बिना पैसा लिए नाव द्वारा पार उतार देने की उदार भावना है। वह घर मे बैठकर ही क्या ईश्वर का भजन नहीं कर सकती? उसे नाव चलाने के सकट मे पडने की क्या आवश्यकता है?

सत्यवती—(हसकर) राजन्, आपका पश्न विकट है, फिर भी मै इसका उत्तर देती हू। मै नदी मे यह नाव चलाती हू, उसी प्रकार आप राष्ट्र की नाव चला रहे है। मैं जनता को सुभीता कर देती हू और आप भी प्रजा को कष्ट से मुक्त करते है। क्या आपको घर मे बैठकर भगवान् का भजन करना नही आता? फिर आप मुझसे यह प्रश्न क्यो करते हैं? आलस्य मे पडे रहकर धर्म का भरोसा करना धर्म का अपमान करना है। जब आप धर्म का अपमान नही करना चाहते तो मुझे ऐसा करने के लिए क्यो कहते हैं?

सत्यवती के इस कथन ने राजा को निरुत्तर कर दिया। वह कुछ भी न बोल सका। उसने मन मे कहा—हे सुभगे! तू मुझे नाव से नदी के पार पहुचाना चाहती है पर मैं तेरी सहायता से ससार की कठिनाइयो को पार करना चाहता हू। अपने जीवन के इस व्याकुल प्रवाह मे स्थिरता पाने के लिए मै तेरा आश्रय लेना चाहता हू।

इतने वार्तालाप से राजा सत्यवती के शील—स्वभाव को परख सका। वह पहले उसकी शारीरिक सुन्दरता पर मुग्ध हुआ था। अब उसे जान पडा कि यह कन्या अकेले रूप की ही धनी नही वरन् उत्तम स्वभाव और गुणो की भी धनी है। यह देखकर कन्या के प्रति उसका आकर्षण और बढ गया।

राजा शक्तिशाली था सत्ता उसके हाथ मे थी। सत्यवती वहा अकेली थी उसका कोई रक्षक नही था। राजा उसके रूप—लावण्य पर मुग्ध भी हो चुका था। वह चाहता तो कन्या को उठाकर ले जा सकता था। लेकिन राजा न मालूम किस धर्म से बधा हुआ था? उसने सोचा—इस कन्या से कुछ कहना अन्याय है। मै धर्म की रीति से इसके पिता से विधिवत् याचना करूगा और फिर इसके साथ विवाह करूगा।

12 भीष्म प्रतिज्ञा

राजा शान्तनु नदी के तट से चल दिया। उसने सत्यवती के पिता का नाम-ठाम पूछ लिया था। वह सत्यवती के पिता शिवदास के पास पहुचा। शान्तनु राजा हे ओर दूसरो को दान देता हे फिर भी आज वह याचक बनकर शिवदास के द्वार पर जा खडा हुआ है।

गरीब शिवदास स्वप्न मे भी नही सोच सकता था कि किसी दिन शान्तनु जैसा प्रतापी नरेश उसकी झोंपडी के द्वार पर याचक बनकर आ सकता है। अतएव राजा को आते देख वह दहल गया। उसने सोचा-आज मेरे द्वार पर राजा क्यो आ रहा है? मुझसे कोन-सा भयकर अपराध हुआ है? वह व्याकुल, सशक और कापता हुआ हाथ जोडे राजा के समक्ष उपस्थित हुआ और बोला-महाराजा की जय हो! कहिए क्या आज्ञा हे इस दास को?"

राजा ने शिवदास की व्याकुलता समझ ली। उसे आश्वासन देते हुए कहा-घबराओ मत, शिवदास। तुमने कोई अपराध नहीं किया हे। मैं याचक बनकर तुम्हे दाता बनाने आया हू।

शिवदास का भय दूर हो गया लेकिन वह आश्चर्य मे डूब गया। वह कहने लगा-"पृथ्वीनाथ! मेरे पास ऐसी क्या वस्तु हे जिसकी याचना आप कर सकते हैं? अगर कोई ऐसी वस्तु होती भी तो आपका हुक्म ही काफी था। मैं हुक्म पाते ही सेवा मे हाजिर हो जाता।"

शान्तनु-शिवदास ! वह वस्तु आज्ञा देकर मगवाने की नहीं हे किन्तु याचक बनकर मागने की हे।

राजा जब नदी-तट से रवाना हुआ तभी उसका प्रधान भी साथ हो लिया था। उसे राजा ने अपनी इच्छा से परिचित कर दिया था। इस समय भी वह राजा के साथ था। उसने कहा-तुम्हारी कन्या सत्यवती का भाग्य उदय हुआ हे शिवदास! महाराज ने उस कन्या को देखा हे। उसी की याचना करने के लिए महाराज यहा पधारे हैं। अब विलम्ब मत करो। जल्दी "हा" कर दो। ऐसा पात्र तुम्हे दूसरा नही मिलने का।

शिवदास-नि सदेह मैं भाग्यशाली हू, मगर यह केसे भूल सकता हू कि मैं गरीब कोली हू ओर महाराज प्रख्यात प्रतापी नरेश ह। मैं महाराज का जामाता बनाने की हसियत मे नही हू। कन्या को वड ठिकान भेज दन पर तो उसका दखना भी मर लिए कठिन हा जायगा। इसलिए महाराज ओर प्रधानजी मुझ क्षमा प्रदान कर। मरी धृष्टता वडी ह मगर आपकी उदारता और क्षमाशीलता उससे भी वडी ह।

वास्तव मे शिवदास का यह कहना मात्र था। उसके हृदय मे कुछ और बात थी। शिवदास के कहने का ढग ही ऐसा था कि उसके बहाने को समझ लेना कोई बडी बात नही थी। राजा समझ गया। उसने प्रधान से कहा—पधानजी शिवदास का यह कथन बहाना है। जो रानी होगी, उसे अपने पिता से मिलने को कौन मना कर सकता है? कुरुवश ऐसा नही कि अपने दाता या श्वसुर को भूल जाय भले ही जाता जम या दसवा ग्रह माना जाता है परन्तु कुरुवशी ऐसे नही होते। इसलिए शिवदास से कहो कि असली बात कह दे। वृथा बहाना बनाने से क्या लाभ है?

शिवदास ने विचार किया—राजा मेरे बहाने को समझ गये हैं और वह असली बात जानना चाहते है। असली बात को छिपाने से लाभ ही क्या होगा? आखिर तो वह कहनी ही होगी । यह सोचकर उसने कहा—महाराज! वास्तविक बात यह है कि आपके गगकुमार पुत्र मौजूद हैं। वे ऐसे प्रतापी हैं कि सारा ससार उनकी धाक मान रहा है। वही राज्य के उत्तराधिकारी हैं। प्रथम तो आपके बडे पुत्र होने के कारण ही वह राज्य के उत्तराधिकारी हैं दूसरे प्रतापशाली होने के कारण भी। ऐसी स्थिति मे मेरी कन्या का पुत्र राज्य का अधिकारी नहीं हो सकेगा और पुत्र के राज्याधिकारी न होने के कारण मेरी लडकी सदा दु खित रहेगी। आपके यहा जब ऐसे प्रतापी पुत्र मौजूद हैं तो आपको दूसरा विवाह करने की आवश्यकता भी क्या है? मैं इसी कारण आप सरीखे सुयोग्य पात्र का सत्कार करने मे असमर्थता अनुभव कर रहा हू।

राजा ने सोचा था—गरीब शिवदास कुछ शुल्क लेना चाहता है। अब उसकी बात सुनी तो चक्कर मे पड गया। अगर मैं सत्यवती के पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की प्रतिज्ञा करता हू तो गगकुमार का हक मारा जाता है। ऐसा नही करता तो सत्यवती हाथ से जाती है। शिवदास अपनी कन्या के उज्ज्वल भविष्य की यदि कामना रखता है तो उसे अनुचित भी कैसे कहा जा सकता है? यद्यपि सत्यवती ने मेरा मन हरण कर लिया है और वह मेरी नाव पार लगाने वाली है फिर भी गगकुमार के न्यायसगत अधिकार का अपहरण नही किया जा सकता। जब शिवदास कोली होते हुए भी अपनी सन्तान के हिताहित का इतना अधिक विचार रखता है तो मैं कुरुवशी राजा—न्यायाधीश होकर भी क्या अपनी सन्तान के हित का विचार त्याग दू? क्या मै अपने सुख के लिए गगकुमार जैसे सुयोग्य विनीत और समर्थ पुत्र को उसके अधिकार से वचित कर दू? नही ऐसा नही होगा।

राजा अनमने भाव से हस्तिनापुर की ओर लोट चला। शिवदास अपनी झोंपडी मे जा वेठा। शिवदास के मन मे तनिक भी पश्चात्ताप नही हे। उसका ख्याल हे कि उसने जो कुछ कहा हे वह एकान्त उचित ओर न्यायसगत है।

राजा अपने महल मे आकर भी अत्यन्त खिन्न हे। वह एक दरिद्र कोली के घर से निराश होकर लौटा हे। राजा होकर भी वह भिखारी बना लेकिन कितने परिताप की वात हे कि उसे भिक्षा न मिली। वह पश्चात्ताप की आग मे जल रहा था। उसे राज्य-वैभव राजमहल खानपान ओर अपना शरीर भी दु खदायी प्रतीत होने लगा। जव मनुष्य प्रवल आकाक्षा करके किसी वस्तु की याचना करता हे ओर पाता नहीं हे तव उसका दु ख "मरणादतिरिच्यते" अर्थात् मृत्युकष्ट से भी वढ जाता हे। राजा के विपाद की कोई सीमा नही थी। आवेश मे आकर वह अपने आपको धिक्कारने लगा। कहने लगा-हे इन्द्रियो! क्या तुमने मुझे नही छला? हे नाक, तू ऊची होने गई थी या नीची होने गई थी? अगर तूने योजनगधा- सत्यवती-की गध ग्रहण न की होती ओर ग्रहण करके भी उस पर मुग्ध न हुई होती तो क्या इस प्रकार अपमानित होना पडता? गध को खोजने के लिए तूने ही इन आखो को उत्सुक वनाया था। अरे नेत्रों! तुम केसे निर्लज्ज हो कि उसके रूप पर जाकर अटक गए? हृदय! तूने मुझे कितनी वार छला हे? वास्तव मे तू ही मेरा वेरी हे। तेरे पडयन्त्र के विना ये वेचारी इन्द्रिया क्या कर सकती थी? इन्द्रिया अपने-अपने विपय को ग्रहण करती हें मगर विपयों मे मोह उत्पन्न करने का कारण तू ही ह। असल मे शिवदास ने मेरा अपमान नही किया अपमान तुम सवने मिलकर किया हे। तुमने आगे-पीछे का विचार नही किया। ठोर-कुठोर का विचार त्याग दिया। यह भी न सोचा कि इसका परिणाम अच्छा होगा या वुरा होगा?

शान्तनु ने नाक के फेर मे पडकर आखो को सत्यवती के देखन म लगा दिया था। रावण ने कानो के चक्कर मे पडकर-काना से सीता के सोन्दर्य की प्रशसा सुनकर-अपने ओर अपन परिवार का सर्वनाश किया था।

राजा कहता ह-अरे कानो! तुम भी नाक आर आख सरीख वन गय। तुमने उस सुन्दरी की वात सुनी ही क्या? आर हे जीभ! तू उसस सभापण न करती तो तरा क्या विगडता था?

श्रृगारशतक म कहा ह-

शम्भुस्वयम्भूहरयो हरिणेक्षिताना
येनाक्रियन्त सतत गृहकर्मदासा ।।

वाचामगोचर चरित्र विचित्रिताय
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ।।1।।

कामदेव के सामने भर्तृहरि ने भी घुटने टेक दिये। वे कहते है–हे काम! या तो ईश्वर ऐसा है कि जिसका वाणी द्वारा वर्णन नही किया जा सकता या तू ऐसा है। तेरा वर्णन तो दूर रहा, एक स्त्री के चरित्र का वर्णन भी कठिन है। तूने मुझे ही नही छला बल्कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव से भी मृगाक्षी स्त्रियो के लिए पानी भरवाया है। तेरा चरित्र कहने मे वाणी असमर्थ है।

ब्रह्मपुराण शिवपुराण और विष्णुपुराण से प्रकट है कि ब्रह्मा को सावित्री के लिए अपना सिर कटवाना पडा शकर को पार्वती के लिए नाचना और भागना पडा और विष्णु को तो गोपिकाओ ने नचाया था। यह चरित्र विकारी हैं। हम जिनका वर्णन किया करते हैं वे निर्विकार चरित्र वाले ब्रह्मा आदि दूसरे ही है। पसिद्ध जैनाचार्य श्री अकलकदेव कहते हैं–

त्रैलोक्य सकल त्रिकालविषय सालोकमालोकितम्
साक्षाद्येन यथा स्वय करतले रेखात्रय सागुलम्।
रागद्वेषभयामयान्तकजरालोलत्वलोभादयो
नाल यत्पदलघनाय स महादेवो मया वन्द्यते।।

अर्थात–जो तीन काल सम्बन्धी तीनो लोको को हथेली की रेखाओ के समान पत्यक्ष देखते हैं अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं तथा जिन्होने राग, द्वेष भय रोग मृत्यु जरा लोभ आदि समस्त दोषो को जीत लिया है अर्थात वीतराग हैं उन महादेव को मैं वन्दना करता हू।

अकलकदेव ने इसी प्रकार के ब्रह्मा और विष्णु आदि को भी नमस्कार किया है। भर्तृहरि ने अपने पद्य मे जहा काम की निन्दा की है वही उसकी पबल शक्ति का दिग्दर्शन भी कराया है क्योकि वे स्वय भी उससे धोखा खा चुके थे।

शान्तनु हृदय की व्यथा को हल्का करने के लिए अपनी इन्द्रियो की निन्दा करने लगा लेकिन उसका मन काबू मे नही आया। शान्तनु उसे शात करने का ज्यो–ज्यो प्रयत्न करता था मन त्यो–त्यो उचटकर सत्यवती के पास जा पहुचता था। कभी सत्यवती की सरलता कभी सुन्दरता कभी बुद्धि की चतुरता और कभी उसकी वाकपटुता का वह विचार करने लगता था।

इस पकार राजा का चित्त घोर अशाति का अनुभव करने लगा। नाना पकार के सकल्प–विकल्प उसके चित्त मे समुद्र मे लहरो की भाति उत्पन्न होते और विलीन होते थे। उसके मन मे कभी गगकुमार का विचार

आता और कभी सत्यवती का चित्र खिच जाता। वह सोचने लगता—दोनो मे से किसको अपनाऊ। कभी उसके मन मे आता कि दरिद्र शिवदास की इतनी मजाल! उसे मेरा अपमान करने का साहस हुआ! ससार जानता है कि रत्नो का स्वामी राजा होता है। सत्यवती रमणीरत्न है और उसका असली स्वामी मैं हू। क्यो न मैं उसे पकड मगाऊ?

इसके बाद ही विचार परिवर्त्तित हो जाता। वह सोचने लगता—क्या एक रमणी के खातिर पूर्वजो—द्वारा रक्षित धर्म को ठुकरा देना उचित होगा? कौरववश के नररत्न जिस मर्यादा का प्राणपण से पालन करते आये हैं, क्या तुच्छ स्वार्थ मे फसकर उस पवित्र मर्यादा को भग करना मेरे लिए उचित होगा? नही, शान्तनु कौरव—कुल को कलकित नही कर सकता। कौरव—कुल की कीर्ति मे धब्बा लगाना शान्तनु सहन नहीं कर सकता।

इस प्रकार के सकल्प—विकल्प करते—करते दिन पर दिन बीतते गये। राजा की उलझन बढती गई , मन पर वह विजय न पा सका। गगकुमार और सत्यवती मे से वह किसी का मोह न त्याग सका। सतत चिन्ता के कारण राजा पीला पड गया। बुढापा न होने पर भी उसके चेहरे पर बुढापे के लक्षण दिखाई देने लगे। वह इसी सोच—विचार मे रहता कि यदि वह अनिद्य सुन्दरी और गुणवती तरुणी महल मे आकर न बसी तो मेरा जीवन ही निष्फल हो गया। लेकिन अपने सुख के लिए विनीत नीतिमान् बलवान् और पितृभक्त पुत्र गगकुमार के अधिकार का अपहरण कैसे किया जा सकता है? शिवदास का प्रस्ताव गगकुमार के सामने रखा जाय तो वह उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेगा और राज्याधिकार त्याग देगा लेकिन ऐसा करना क्या पिता का कर्त्तव्य है?

कभी—कभी राजा सोचने लगता—"यद्यपि शिवदास का शरीर काला और बेडौल है परन्तु जब मेरे सामने खडा हुआ और मेने उसके हृदय की पहिचान की, तब वह ऐसा सुन्दर प्रतीत हुआ जैसे उसके समान सुन्दर और कोई हे ही नही! पहले में सोचता था कि ऐसे कोली के यहा ऐसी सुन्दरी का जन्म केसे हुआ? परन्तु देखता हू कि उसका हृदय जितना स्वच्छ हे उतना किसी राजा—महाराजा का भी शायद ही हो। मै उसकी कन्या की याचना करके उसका जामाता बनना चाहता था। उसे अपना श्वसुर बनाना चाहता था। राजा का श्वसुर बन जाने पर उसे किस चीज की कमी रह सकती थी? उसका भाग्य खुल जाता मगर उसने ऐसा विचार नही किया। उसने नही सोचा कि नाव चलाने की किल्लत हमेशा के लिए मिट जाएगी और पालकी बेठने को मिलेगी। उसे ऐसा लोभ नही हुआ। यह लाभ किसे नही हो सकता

था? मगर शिवदास ने आती हुई लक्ष्मी को उसी प्रकार ठुकरा दिया जैसे वन का तपस्वी राज्य को ठुकरा देता है।"

मित्रो! सत्यवती वास्तव मे शिवदास की नही, दूसरे की कन्या है। शिवदास यह बात भली-भाति जानता है। बहुत-से लोग लोभ के फेर मे पडकर अपनी ही कन्या की भलाई का विचार नही करते तो पराई कन्या का कब भला सोचेगे? मगर एक यह शिवदास है जो अपनी भलाई की परवाह न करके कन्या की भलाई ही सोचता है। वह सोचता है कि सत्यवती राजकन्या है फिर भी इसका पुत्र अगर राजा न हुआ तो सत्यवती दु खी होगी। कन्या को कष्ट पहुचाने वाला कार्य मैं कदापि नही करूगा।

शिवदास का चरित्र उन लोगो की आखे खोल देने के लिए काफी है जो स्वार्थ के वश होकर अपनी ही कन्या को बेच देते हैं और यह नही देखते कि वर बूढा या रोगी है या मृत्यु के नजदीक पहुच रहा है।

राजा शान्तनु की अवस्था बडी विचित्र है। वह तीन तरह के विचारो मे पडा व्याकुल हो रहा है। एक ओर सत्यवती का आकर्षण है, दूसरी ओर गगकुमार का न्यासगत अधिकार है। कभी-कभी वह सत्यवती को पकड मगवाने का भी विचार करता है मगर दूसरे ही क्षण उसे अपने धर्म का स्मरण हो जाता है।

आज तो समर्थ को दोषी ही नही माना जाता। कहा जाता है-

समरथ को नही दोष गुसाई।

बडो के बडप्पन को सौ गुनाह माफ समझे जाते हैं। परन्तु मैं कहता हू कि ससार मे अधिक दोष बडे कहलाने वालो ने ही फैलाये हैं। जनता बडो को आदर्श मानकर उनका अनुकरण करती है और फिर बडो के दोष छोटो मे भी घुस जाते हैं। कहावत भी है-

महाजनो येन गत स पन्था।

इस कहावत के अनुसार साधारण जनता बडो के दोषो को भी आदर्श मानकर अपना लेती है और ससार मे पाप फैल जाता है।

शान्तनु कठोर दुविधा मे पडा हुआ दुबला होता जा रहा है। भले ही और मार्ग उसके अधिकार मे नही थे लेकिन एक ऐसा मार्ग अवश्य था जिस पर चलने से वह सारी दुविधाओ से बच सकता था। अगर शान्तनु अपनी कामवासना को जीत लेता ओर ब्रह्मचर्य धारण कर लेता तो उसे बडी शाति मिलती। वह सोच सकता था कि गगा स्त्री होकर भी जब ब्रह्मचर्य का पालन कर रही हे और उसने प्राप्त भोगोपभोगो को भी ठुकरा दिया है तो मैं भी

ब्रह्मचर्य क्यो न पालू? इस विचार को अमल मे लाने से उसकी व्याकुलता मिट जाती और उसे जीवन मे अपूर्व शाति प्राप्त होती। जेसे गगकुमार महापुरुष उत्तम पुरुष और बुद्धपुरुष माने जाते हैं, उसी प्रकार शान्तनु भी माना जाता। मगर वह ऐसा न कर सका। वह अपनी कामवासना को जीतने मे असफल रहा। फिर भी वह इस अश मे प्रशसनीय है कि सत्यवती को बहुत अधिक चाहने पर भी एव उसके विरह मे घोर मानसिक वेदना सहन करके भी उसने मर्यादा का उल्लघन नहीं किया। लोग चाह के वश मे होकर ही मर्यादा तोड डालते हैं, जैसे पाटन के प्रभु सिद्धराज ने जसमा के लिए मर्यादा भग कर दी थी। वैसे राजा शान्तनु ने मर्यादा भग नही की। गीता मे कहा है–

विहाय कामान् य सर्वान् पुमाश्चरति नि स्पृह ।
निर्ममो निरहकार स शातिमधिगच्छति ।अ 2/71

अर्थात् जो सब प्रकार की काम–वासना को त्यागकर निस्पृह बन जाता है और ममता एव अहकार से रहित होकर विचरता है वही शाति पाता है।

✲जसमा की कथा के लिए देखो–जवाहरकिरणावली चौथी किरण।

यद्यपि उत्तम पुरुष कामभोग का त्याग करता है, परन्तु इतनी शक्ति न होने पर क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध मे कहा है–

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठ समुद्रमाप प्रविशति यद्वत् ।
तद्वत्कामा य प्रविशति सर्वे,
सशातिमाप्नोति न कामकामी ।।गी. 2/70

अर्थात समुद्र नदियो को निमत्रण देकर बुलाता नही हे। फिर भी समस्त नदिया उसी मे जाकर मिलती हे। इसका कारण यह हे कि समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लघन नही करता। ससार की सभी नदिया समुद्र मे ही जाकर मिलती हैं मगर कभी कोई समुद्र चार अगुल भी नही बढता। जो पुरुष समुद्र की भाति मर्यादा की रक्षा करते हें ओर निष्काम रहते हे उन्हे शाति भी मिलती है ओर उनके पास ऋद्धि दोड–दोडकर आती हे इसके विपरीत जो धन के लिए स्त्री के लिए या कीर्ति के लिए हाय–हाय करता रहता हे ओर कामो की ही कामना करता हे उसे कभी शाति नही मिलती। आचारागसूत्र मे भी कहा है–

कामकामी खलु अय पुरिसे से सोयति झूरति तिप्पति कूरेति।

अर्थात्–काम की कामना करने वाला पुरुष सदैव दु खी रहता है, व्याकुल रहता है और अशात बना रहता है।

राजा शान्तनु काम को जीत तो न सका मगर कामान्ध होकर उसने मर्यादा का त्याग भी नही किया। आप भी अगर पूरी तरह ब्रह्मचर्य नही पाल सकते तो कम से कम गृहस्थधर्म की मर्यादा की तो रक्षा करो। जिस स्त्री का पाणिग्रहण किया है जिसके साथ अग्नि मत्र, देव, देवी आदि की साक्षी से विवाह किया है और पत्नीव्रती रहने की पतिज्ञा की है उसे धोखा मत दो। कम से कम परस्त्रीगमन का त्याग अवश्य करो। अतीत मे जो कुछ हुआ सो हुआ अब आगे के लिए सम्भलोगे तो परम कल्याण होगा।

शान्तनु ने राज्य का समस्त भार गगकुमार के कधो पर डाल दिया था। वह उस ओर से सर्वथा निश्चिन्त था। गगकुमार के शासन से प्रजा भी सन्तुष्ट और सुखी थी। गगकुमार को कोई सत्यवादी, कोई धर्मात्मा और कोई पुण्यशाली कहता था और यह कथन गगकुमार की चापलूसी करने के लिए उसके सामने नही वरन् परोक्ष मे भी किया जाता था। प्रजा वास्तव मे ऐसा ही अनुभव करती थी। गगकुमार का उदार व्यवहार और धर्मनिष्ठ जीवन ही ऐसा था कि उसकी प्रशसा हुए बिना नही रह सकती थी। गगकुमार ने अपने प्रेम से शत्रुओ का हृदय भी जीत लिया था। उसकी कीर्ति दिन–दिन बढती जाती थी और अन्य राजा लोग कीर्ति सुनकर प्रमोद प्रकट करते थे। गगकुमार के प्रति किसी को ईर्ष्या या द्वेष नही था।

13 भीष्म की प्रतिज्ञा

एक दिन गगकुमार जब पिता की चरण–वन्दना के लिए गये तो पिता की दुरवस्था देखकर उन्हे बडा आश्चर्य हुआ और चिन्ता भी हुई । वह मन ही मन सोचने लगे–पिताजी के हृदय मे क्या काटा चुभा है जिससे यह इस प्रकार विषण्ण और दुर्बल होते जाते हैं। जिस पुत्र के मौजूद रहते पिता को कष्ट हो, उस पुत्र को धिक्कार है।

गगकुमार ने राजा शान्तनु से पूछा– पिताजी यह मैं समझ सकता हू कि आपके कष्ट का कारण मै ही हू। मेरे निमित्त से ही आपका शरीर सूखकर काटा हो गया है। लेकिन आपकी यह दशा अब असह्य है। अतएव अगर मेरा भला चाहते हो तो कृपाकर स्पष्ट बतलाइए कि आपकी मनोव्यथा का कारण क्या है? किस कारण आपकी यह दशा हो गई है? अगर कारण बतलाने मे सकोच न हो और वह कारण जानने के लिए मैं अयोग्य न होऊ तो मुझे बतलाइए। मै अपने प्राण देकर भी आपको सुखी रखने की चेष्टा करूगा।

गगकुमार की भावनामय विनम्र प्रार्थना सुनकर शातनु का हृदय गद्‌गद् हो गया। वह मन मे कहने लगा–क्या ऐसे सुशील बालक का अधिकार दूसरे को लुटाया जा सकता हे? अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इसका भविष्य अन्धकारमय केसे बनाया जा सकता है? एक विचित्र दुविधा की स्थिति मे शान्तनु की आखो से आसू निकल पडे बोली न निकली।

पिता की यह स्थिति देख गगकुमार ने कहा–पिताजी मेने आपसे जो कारण पूछा है सो इसलिए नही कि आपका दु ख ओर वढाऊ।

शान्तनु ने गगकुमार को गले से लगा लिया ओर प्रेम से सिर पर हाथ फेरते हुए कहा–पुत्र! चिन्ता करने योग्य कोई बात नही हे।

गगकुमार–आप सरीखे महापुरुष अकारण ही इतने दु खी ओर दुर्वल नही हो सकते। अतएव अगर आप मुझे इस योग्य समझते हो तो कोई पर्दा न रखिए और कृपा कर अपनी चिन्ता का कारण वतलाइए। हा अगर आपकी चिन्ता का निवारण करना मानवीय शक्ति से परे हो तो में इतना ही कहूगा कि ऐसी वात के लिए चिन्ता करना ही व्यर्थ हे।

शान्तनु–वेटा ! मुझे तेरी ही चिन्ता ह। तू मेरा एक ही पुत्र हे। तुझ कारव वश का सूर्य कहू या चन्द्र कहू जा कुछ ह तू ही ह। तुझ भी युद्ध करन के लिए शत्रुओ के वीच जाना पडता हे। म सोचता हू, कान जान कव क्या घटना घट जाए? म तरा कल्याण चाहता हू।

पिता की बात सुनकर गगकुमार ने मुस्कराकर कहा–पिताजी! मुझ पर आपका असीम स्नेह है। इसलिए आप अपनी चिन्ता का असली कारण बतलाकर मुझे दु खी नही करना चाहते। आपका पुत्र ऐसा नही है, जिसके लिए आपको चिन्तित होना पडे। यह बात आप स्वय जानते भी है। चिन्ता का कारण कुछ और ही है जिसे आप पकट नही करते। कृपा कर मुझे वास्तविक कारण से परिचित कीजिए।

शान्तनु सोचने लगे–समझा था कि ऐसा कहने से गगकुमार प्रसन्न और सन्तुष्ट हो जायेगा। मगर न वह प्रसन्न हुआ, न सन्तुष्ट ही।

यह सोचकर शान्तनु बोले–वत्स! मेरी एक चिन्ता यह भी है कि तुम्हारी माता ने तो अपनी पतिज्ञा का पालन किया मगर मैं न कर सका। तुम्हारी माता प्रतिज्ञा का पालन करके भी तप कर रही है और मैं प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होकर भी राजमहल के सुख भोग रहा हू।

इतना कहकर शान्तनु ने पिछला सम्पूर्ण वृत्तान्त गगकुमार से कह सुनाया। किस प्रकार वह शिकार के लिए वन मे गया, किस प्रकार गगा से भेट हुई किस प्रकार प्रतिज्ञा की और तोडी और आखिर गगा उसे छोडकर चल दी इत्यादि समस्त घटनाए शान्तनु ने गगकुमार के सामने उपस्थित कर दी।

तत्पश्चात खेदखिन्न होकर वह कहने लगा–मुझे बार–बार यही विचार आता है कि आज तुम्हारी माता यहा होती तो तुम अकेले क्यो होते? तुम सरीखा तुम्हारा और भाई होता। उस अवस्था मे मुझे काहे की चिन्ता थी? एक पुत्र भी कोई पुत्र है! एक आख भी कोई आख है?

गगकुमार पिछला सारा वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त गम्भीर हो गया था। उसे अपनी माता का अपूर्व स्नेह याद आ गया। माता की दृढता और धार्मिकता की कथा सुनकर उसकी छाती फूल उठी। वह गौरव अनुभव करने लगा। लेकिन तपोमय जीवन का स्मरण करके उसके हृदय मे केसी भावना उत्पन्न हुई यह कहना कठिन है। उसे कुछ ऐसा हुआ जिसे विषादमय सन्तोष कहा जा सकता है।

गगकुमार बोला–पिताजी! चिन्ता की क्या बात हे? माताजी तप कर रही हे यह तो प्रसन्नता की बात है। आपने अपनी ओर से उनका परित्याग नही किया ह यह सोचकर आप भी सन्तोष कर सकते हैं। माताजी की तपस्या की शक्ति से मे आप और यह कुल शक्तिशाली हें। कदाचित आपकी चिन्ता का यही कारण हो तो प्रश्न होता हे कि इससे पहले आपको यह चिन्ता

क्यो नही हुई थी? माताजी की स्मृति ने आपको इतना ज्यादा दु खी कर दिया है, इसका कोई तात्कालिक कारण तो होना चाहिए?

शान्तनु इससे आगे कुछ न कह सके। पेट की बात जीभ पर लाने मे उन्हे घोर लज्जा प्रतीत होती थी। लज्जा और सकोच ने मिलकर उनका मुह बन्द कर दिया।

शान्तनु की बात से गगकुमार को कुछ-कुछ असली बात का आभास मिल गया था। उसने बिना कहे ही पिता का हृदय पहिचान लिया था। वह समझ गया था कि पिता के हाड-पिजर निकल आने और आखे बैठ जाने का कारण मैं ही हू।

गगकुमार अपने जीवित पिता का श्राद्ध करने के लिए तत्पर हो गया। अन्य लोग तो मृत पिता का श्राद्ध करते हैं मगर गगकुमार ने जीवित पिता का ही श्राद्ध करना निश्चित कर लिया। श्राद्ध का अर्थ है-"जो श्रद्धापूर्वक किया जाय।" "श्रद्धया दीयते-इति श्राद्ध । तात्पर्य यह है कि श्रद्धापूर्वक जो त्याग किया जाता है, किसी के बहकाने या फुसलाने मे आकर नही, परम्परा का पालन करने के लिए भी नही, वरन् हृदय की श्रद्धा से जो त्याग किया जाता है, वह श्राद्ध है। गगकुमार ऐसा श्राद्ध करने के लिए तैयार हो गया।

गगकुमार ने अपने मन्त्रियो को बुलाकर कहा-आज मैं सकट मे हू और सकट टालने के लिए ही आपको बुलाया है। मन्त्री भौंचक्के-से रह गए। वे कहने लगे-आप जेसे बलवान् नीतिज्ञ ओर प्रजा के प्रिय राजकुमार पर क्या सकट आ सकता हे?

गगकुमार-अब मे प्रशसा के योग्य नहीं हू। जिस पुत्र के रहते पिता दु खी हो वह पुत्र प्रशसा का पात्र नहीं कहा जा सकता। मत्रीगण! जब तक पिताजी सुखी न हो मेरा जीवन वृथा है। आज मैंने पिताजी से उनके दु ख का कारण पूछा था। उन्होने कुछ कारण बतलाए भी हें मगर उनसे मेरा सन्तोष नही हुआ। अगर आप मे से कोई उनके दु ख का वास्तविक कारण जानता हो तो बतलाइए।

गगकुमार की चिन्तायुक्त बात सुनकर मत्रीगण हसकर कहने लगे-महाराज को किसी बडी बात का दु ख नही हे। बात वास्तव म जरा-सी है। महाराज एक धीवर की कन्या पर मोहित हुए हे ओर जब से मोहित हुए हैं तभी स चितित रहते ह। चिन्ता का कारण यह हे कि धीवर अपनी कन्या

से उत्पन्न पुत्र को ही राज्याधिकारी बनाने की माग कर रहा है और महाराज आपका अधिकार छीनना नही चाहते। यही चिन्ता का वास्तविक कारण है।

गगकुमार—महाराज को जिस बात की चिन्ता है, वह आपकी दृष्टि मे क्या छोटी है?

प्रधान—छोटी नही तो और क्या बडी है? एक धीवर की छोकरी के लिए इतनी चिन्ता करने की आवश्यकता क्या है? राजा रत्नभोगी होते हैं। अतएव धीवर की लडकी के लिए किसी से पूछताछ करने की जरूरत नही। उसे पकड कर बुलवा लेना चाहिए। महाराजा को यह सम्मति दी गई थी। मगर उन्होने हमारी बात नही मानी और चिन्ता ही चिन्ता मे घुले जा रहे हैं। एक धीवर के कहने से किसी का राज्य किसी को नही दिया जा सकता और न ऐसी बातो से राज्य ही चलता है। सीधी तरह न मानने वालो की पूरी तरह खबर लेने से ही राज्य चल सकता है।

ऐसे समय गगकुमार का क्या कर्त्तव्य था? अगर वह मस्तिष्क की सलाह मानता तो मस्तिष्क उसे वही सलाह देता जो मन्त्रियो ने दी थी। मगर हृदय की बात दूसरी है। गगकुमार हृदयेश्वर है। उसने प्रधानो से कहा—अब मैं समझ गया कि पिताजी राजा क्यो हुए और आप प्रधान ही क्यो रह गये? आपको प्रजा के कष्ट की पीडा नही है। पिताजी धन्य हैं, जो अपनी चाह मे नमक की डली की तरह घुलते रहे पर जिन्होने धर्म नही त्यागा अर्थात धीवर की कन्या को जबरदस्ती नहीं लाये। वह धीवर भी सचमुच धी—वर (बुद्धिमान) है जिसने अपने स्वार्थ की परवाह न करके अपनी कन्या का ही हित सोचा। पिताजी के हृदय मे पाप नही है। उनका हृदय अत्यन्त स्वच्छ और पवित्र है। इसी कारण से मेरे अधिकार की भी रक्षा कर रहे हैं और यह भी विचार कर रहे है कि किसी की कन्या को बलात् छीनना न्यायसगत नहीं है। कन्या को पिता की गोद से छीनना ईश्वर से छीनना है। वास्तव मे पिताजी का विचार बहुत पवित्र है। कोली निर्धन और निर्बल है तो क्या हुआ, वह अपने धर्म का पालन कर रहा है। धर्म पालने वाले को राज्य—सत्ता के कारण दण्ड देना सत्ता का दुरुपयोग करना है। पिताजी राजधर्म का पालन करने के कारण ही उस कन्या को जबर्दस्ती नही ला रहे है और मेरे अधिकार का विचार करके ही कोली को विश्वास नही दे रहे हैं कि उसकी कन्या का पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा। पिताजी सोचते है—गग का हक दूसरे को कैसे दिया जाय? इस प्रकार पिताजी के दुख का कारण मै ही हू। इस समय मेरे लिए 'इद न मम' कहने का अवसर उपस्थित हुआ है। अतएव मत्रीगण! पिताजी मेरे

कारण ही दु खी हो रहे हैं, इसलिए में प्रतिज्ञा करता हू कि जव तक पिताजी का दु ख दूर न हो जायेगा तव तक मैं अन्न ग्रहण नही करूगा। में तपस्विनी माता गगा का पुत्र हू। अपने पिता का कष्ट अवश्य ही दूर करूगा चाहे मुझे कितना भी त्याग क्यो न करना पडे।

''अन्न वै प्राणा' इस कथन के अनुसार अन्न त्यागने का अर्थ है–प्राण त्याग देना। बल्कि कभी–कभी प्राण त्यागना सरल होता हे मगर अन्न त्यागना कठिन हो जाता है। गगकुमार ने अन्न त्यागने की प्रतिज्ञा की है। वह समझता है कि यह तन–धन तो जाने को ही है फिर इससे यज्ञ' का लाभ क्यो न ले लिया जाय?

गगकुमार ने कहा–मन्त्रियो! चलो शिवदास के घर चले और उसे समझा–बुझाकर पिताजी का कष्ट मिटाए।

मन्त्री–आप उनके घर जाए इससे बेहतर क्या यह न होगा कि उसी को यहा बुलवा लिया जाय? आप सरीखा प्रतापी वीर उस कोली की झौंपडी पर जाए, यह कुछ शोभा नहीं देता।

आजकल के राजा होते तो मन्त्रियो की यह सलाह बहुत पसन्द करते। मगर गगकुमार दूसरी ही प्रकृति के राजपुत्र थे। उनकी असाधारण प्रकृति ने ही उन्हे ससार के इतिहास मे अमर बना दिया हे। आज भी भारत उनका ऋणी हे। गगकुमार ने मन्त्रियो का प्रस्ताव स्वीकार नही किया। कहा–जिससे याचना करनी है उसे अपने घर बुलाना उचित नही हे। याचक को दातार के पास पहुचना चाहिए।

गगकुमार रथ मे बेठकर धीवर के घर रवाना हुए। उन्हाने अपने मन्त्रियो से कहा–आप शिवदास का घर जानते ही हें इसलिए आप भी साथ चलिए। आप लोगो की साक्षी से ही में यज्ञ करूगा।

रथ मे बैठकर सव शिवदास के घर आये। उसे चिन्ता थी कि मेंने राजा को कन्या देना अस्वीकार कर दिया था, इसी कारण राजा नाराज हो गया होगा। पर उसे सन्तोष इस वात से था कि मेंने राजा को अनुचित उत्तर नही दिया हे। मेंने न तो उद्दण्डता की हे न अन्याय किया है। वह इसी सोच–विचार मे था कि उसे रथ आता दिखाई दिया। उसे कुछ–कुछ भय ता हुआ मगर उसने यह विचार कर दृढता धारण की कि भल ही राजा अपना धर्म त्याग दे पर में अपना धर्म नही त्याग सकता।

शिवदास क घर पहुचकर गगकुमार रथ स नीव उतर। शिवदास न यथायाग्य अभिवादन किया आर आसन दकर विराजमान हान की प्रार्थना

की। जब गगकुमार ने आसन ग्रहण कर लिया तो शिवदास ने कहा—कहिए राजकुमार! क्या आज्ञा है दास के लिए?

गगकुमार—मै जिस कार्य के लिए आया हू, वह तुम्हे सुनाता हू। परन्तु उसे स्वीकार करने मे तुम जो बाधा समझते हो उसे निर्भयतापूर्वक स्पष्ट रूप से प्रकट करो। किसी प्रकार का भय मत करो। मै तुम्हे डराने—धमकाने नही आया हू।

भय असत्य का प्रधान कारण है। जहा भय है वहा असत्य आ ही जाता है। सच्ची बात वही कह सकता है जिस पर किसी प्रकार का दबाव न हो और जो निर्भय हो। सत्य तो सत्य और प्रेम से ही प्रकाश मे आता है।

गगकुमार ने शिवदास से कहा—अब मै अपने आने का कारण बतलाता हू। पिता तुम्हारे द्वार से अपमानित होकर लौटे। इस अपमान के कारण उन्होने अपना शरीर ही सुखा डाला है, मगर उनके दु ख का कारण मैं हू, तुम नही हो। मै न जन्मा होता तो न तो तुम्ही पिता को खाली लौटाते और न उन्हे ही वचन देने मे सकोच होता। इस प्रकार वह दु ख से बच सकते थे। मगर मेरे कारण सब बात बिगड गई है। इसलिए मै स्वय पिताजी का दु ख मिटाने आया हू। मैं पिताजी की वाछित वस्तु लेने आया हू। वह तुम्हारे यहा है। मैं उसे लेकर ही लौटूगा खाली नही। मैं बलात्कार से वह वस्तु तुमसे छीनना नही चाहता। ऐसा करना होता तो मेरे आने की आवश्यकता ही न पडती। मैं तुम्हे सन्तुष्ट करके तुम्हारी चीज ले जाना चाहता हू। अगर मैं उसे न ले जा सका तो पिताजी के लिए मैंने अन्न—त्याग दिया है और प्राण भी त्याग दूगा। यह शरीर पिता का ही है। पिता के निमित्त इसे त्याग देना कोई बडा भारी त्याग नही है। इतना त्याग करके भी अगर पिता को सुखी बना सका तो मैं धन्य हो जाऊगा। पिता के दिये शरीर से इतने दिन जी लिया और सुख भोग लिये हैं अब अगर उन्ही को यह शरीर समर्पण कर दिया जाय तो क्या बडी विशेषता है? तुम मेरा आशय समझ गये होगे। अब जो कुछ कहना हो स्पष्ट कहो।

गगकुमार की बात ध्यानपूर्वक सुनने के अनन्तर शिवदास सोचने लगा—इन—जैसे पितृभक्त वीर पुत्र को धन्य है। परन्तु जो ऐसा वीर है वह मेरी पुत्री क पुत्र को राज्य कैसे करने देगा? देखना चाहिए कि इनकी पितृभक्ति सात्विक है या इनमे पिता के लिए सचमुच ही त्याग करने की तत्परता है? यह सोचकर शिवदास कहने लगा—आपकी पितृभक्ति ओर पिता के निमित्त त्यागवृत्ति सर्वथा सराहनीय है। आपका दर्शन पाकर मै कृतार्थ हुआ। आपके

पिता की इच्छित वस्तु देने मे मेरी ओर से तनिक भी देर नही है। अगर देर है तो सिर्फ आपकी ओर से। आपके पिताजी को आपका जो ख्याल हे वह अनुचित नहीं कहा जा सकता। उन्हे यह भी विचार हो सकता है कि कदाचित वे दूसरे को राज्य देना स्वीकार भी कर ले तो गगकुमार उसे लेने भी कैसे देगे? और आप सरीखे वीर योद्धा के सामने किसी की क्या चल सकती है? ऐसी स्थिति मे मेरी लडकी को दु ख के सिवाय और क्या हो सकता है? इससे अच्छा यही है कि मैं उसका विवाह किसी छोटे घर मे ही कर दू। हा अगर आप पिता का दु ख दूर करना चाहते हैं तो एक उपाय है– आप प्रतिज्ञा करे कि–"मै राज्य नहीं लूगा और सत्यवती का पुत्र ही राजा होगा और मैं उसकी रक्षा करूगा।" ऐसी प्रतिज्ञा आप कर सके तो महाराज का दु ख मिट सकता है।

शिवदास गगकुमार से अपने अधिकार का राज्य त्याग देने की प्रतिज्ञा करवाना चाहता है। क्या गगकुमार को ऐसी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए? अपना राज्य अपने सौतेले भाई को दे देना चाहिए? गगकुमार अब बालक नही है। वह हस्तिनापुर का युवराज है और सत्ता उसके हाथ मे है। ऐसे समय पर राज्य को त्याग देना कोई सरल कार्य नही है। परन्तु धर्मशास्त्र मे अगाध विचार भरे पडे हैं।

गगकुमार ने ध्यान से शिवदास की बात सुनी। वह अपनी आत्मा को समझाने लगे–"रे आत्मा! इस भूतल पर असख्य राजा, महाराजा और चक्रवर्ती हो गए। परन्तु उन्हे भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त नही हुआ जेसा पितृयज्ञ करने का सौभाग्य तुझे प्राप्त हुआ हे। मैं इस पितृयज्ञ मे सारे ससार को आमत्रण दूगा। हे मन तू "इद न मम" का पाठ पढने के लिए तैयार हो जा। अगर गगकुमार राजा न हुआ तो हानि क्या होगी? ससार के असख्य मनुष्य प्राणी क्या सभी राजा ही हुए हैं? राजा हुए बिना कोन–सा काम रुकता हे? इस दुर्लभ मानव–जीवन का उद्देश्य राजपद को प्राप्त कर लेना नही हे। ऐसा होता तो तेरे पूर्वज अनेक चक्रवर्तियो ने–जो इसी कुल मे हुए हे–क्यो राज्य त्यागा होता? राज्य लेना वडी वात हे या मिलते हुए राज्य को ठुकरा देना वडी वात है? इसलिए हे मन! तू दृढ हो जा और ऐसा दृढ हो जा कि चाहे मेरु हिल जाय पर तू न हिले। की हुई प्रतिज्ञा कभी झूठी न हो।"

कहते हें कि महादेव ने विष का पान किया था। किसलिए? वास्तव मे दूसरे के कल्याण के लिए विष पीने वाला ही महादेव है। कहा जाता है कि गगा महादेव के सिर पर गई ओर गगकुमार गगा क पुत्र ह। महादेव वह

जहर पी गए तो देखना चाहिए कि गगा के कुमार कैसा जहर पीते है। दूसरे के कल्याण के लिए पिया जाने वाला जहर पीने से पहले ही जहर जान पडता है और उसका पीना कठिन भी होता है परन्तु पीने के पश्चात् वह अमृत बन जाता है और पीने वाले को अमर बना देता है।

श्रोत्रादीनीद्रियाण्यन्ये सयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।अ 4 / 26

श्रोत्र आदि इन्द्रियो को सयम की अग्नि मे हवन करना महायज्ञ है। गगकुमार आज ही महायज्ञ करने के लिए तैयार हुए हैं। जो आखे राजवैभव देखकर ललचाती थी पसन्न होती थी, गगकुमार उन्हे पितृहित की अग्नि मे होम देते है। उन्होने अपने कानो से कह दिया–हे कानो! तुम पितृयज्ञ की अग्नि की सामग्री बन जाओ। अब यह सुनने की आशा मत करो कि गगकुमार राजा है। तुम यह सुनने को तैयार हो जाओ कि सत्यवती का पुत्र राजा है और गगकुमार सेवक है । हे नाक! तू राजा होने के लिए ऊची मत रह, किन्तु पितृहित के यज्ञ मे पावन बनने के लिए ऊची रह। हे पाव! तुम कर्त्तव्यपथ पर दौडकर यह कहो कि सत्यवती का पुत्र ही राजा है। अब तक तुम अपने राज्य की रक्षा के लिए दौडते रहे थे पर अब भाई के राज्य की रक्षा के लिए तुम्हे दौडना पडेगा। ए हाथो! अब तक तुम दूसरो का अभिवादन लेने के लिए ऊपर उठ रहे हो अब दूसरो का अभिवादन करने के लिए ऊपर उठना। अब तुम अभिवादन लेना छोडकर अभिवादन करना सीखो। और हे शरीर! तू सिहासन पर बेठकर चवर ढुलवाने की इच्छा मत रख। यह महत्त्व अपने भाई को समर्पित कर दे । हे मस्तक! तू मुकुट की आशा न रखना। तू अपने त्याग से ही ऊचा रह सके तो रहना। भाई के राज्य की रक्षा के लिए अगर तुझे शरीर से अलग होना पडे तो उसके लिए भी तैयार रहना।

गगकुमार के शरीर और प्रत्येक अग ने जब साक्षी दी तो वह बोले–शिवदास! क्या तुझे मेरे कुल का ज्ञान नहीं है? तू कौरव–कुल को नही जानता? कौरव–कुल मे उत्पन्न हुए दो भाइयो को यह विचार कभी आता ही नही कि यह राज्य मेरा हे या मेरे भाई का है? इस बात को तू लोगो से यहा तक कि देवो ओर गन्धर्वो से भी पूछ सकता है। कुरुवशी सौतेली माता को दूसरी नही समझते। वे उसे सगी माता ही मानते हैं। जिसे पिता ने पत्नी बनाया हे वही पुत्र के लिए माता है। तुझे इतना भेदभाव मालूम पडता है इससे जान पडता है कि तुझ पर तेरे कुल का प्रभाव है। तूने दूसरे राजाओ की बाते सुनी होगी इसीलिए मुझे भी वेसा ही समझता हे। तूने पिताजी को

कोरा उत्तर दिया और वह चुपचाप लौट गए। फिर भी तुझे कौरववश की महत्ता मालूम नही हुई? उन्होने किसी प्रकार का दबाव नही डाला मे भी सद्भावपूर्वक याचना कर रहा हू। फिर भी तुझे विश्वास नहीं आता? विश्वास नही आता तो ले में प्रतिज्ञा करता हू। मेरी प्रतिज्ञा वीर क्षत्रिय की प्रतिज्ञा है। वह कभी पलट नही सकती। चाहे शरीर से प्राण निकल जाए चाहे सूर्य अन्धकार देने लगे चाहे चन्द्रमा अग्नि बरसाने लगे चाहे पृथ्वी आश्रय देना बन्द कर दे चाहे जल और अग्नि अपना-अपना स्वभाव बदल दे लेकिन मेरा प्रण नही पलट सकता। मै प्रण करके कहता हू कि मै राज्य ग्रहण नही करूगा।

शिवदास! राज्य के त्याग को तुम कोई बडा त्याग समझते होओगे लेकिन मेरे लिए यह त्याग बडा नही है। मैं इसे तुच्छ बात मानता हू। जैसे दाहिने हाथ मे अगूठी पहनना या बाए हाथ मे पहनना बराबर है। उसी प्रकार बडे भाई या छोटे भाई का राज्य करना भी बराबर है।

शिवदास सोचने लगा-"गगकुमार है तो वीर। कुरुवश ऐसा ही वीर है। परन्तु ऐसे वीर गगकुमार के लडके कौन जाने कैसे वीर होगे? सतयुग जा रहा हे और कलियुग आ रहा है। कदाचित इनके लडको पर कलियुग की छाया पड गई तो क्या होगा? हकदार होते हुए भी इनके लडके राज्य नही कर पाएगे और मेरा दौहित्र राज्य करेगा तो उनकी आखो मे खटकेगा। इसलिए इस अवसर पर उसका भी उपाय कर लेना उचित हे।"

यह विचार कर शिवदास बोला-"कुमार! आपकी प्रतिज्ञा पर मुझे पूरा भरोसा है फिर भी आपके पिता के साथ मेरी लडकी का विवाह होना कठिन दिखाई देता हे। एक और बडी वाधा हे जिसका निराकरण करने के लिए में आपसे निवेदन भी नही कर सकता।"

ऐसी गुस्ताखीभरी बात सुनकर गगकुमार को क्रोध आ जाना स्वाभाविक था। गगकुमार सोच सकते थे कि इसके सन्तोष के लिए मैंने राज्य का त्याग कर दिया हे फिर भी यह टालमटूल करने की हिम्मत करता ह! मगर गगकुमार अगर क्रोध करते तो उनकी कथा ही केसे कही जाती? साधारण मनुष्यो के लिए इतिहास म कोई स्थान नही हे। इतिहास म असाधारण मनुष्य ही स्थान पाते ह। अगर उनकी असाधारणता अनुकरणीय होती हे-देश आर जाति क लिए प्ररणा प्रदान करन वाली हाती ह तव ता पढन वाले लाग उन्हे मस्तक झुकात ह आर यदि उनकी असाधारणता [illegible]

तो लोग घृणा के साथ उन्हे याद करते है। गगकुमार की कथा क्यो कही जाती है यह बात एक उदाहरण से समझाई जाती है।

एक मकान मे आग लगी। आग बुझाने के लिए बहुतेरे आदमी आये यहा तक कि राजा भी आया और आग बुझाने का "फायर ब्रिगेड" आदि सामान भी आया। वही खडा हुआ एक आदमी आग बुझाने वालो से कहता है–"मूर्खो! आग क्यो बुझाते हो? इस आग के पताप से ही तो यहा महाराज का पदार्पण हुआ है और दूसरे इतने लोग आये हैं।" ऐसा कहने वाले की बात गलत नही कही जा सकती क्योकि वास्तव मे अग्नि लगने के कारण ही सब लोग वहा जमा हुए थे। परन्तु इसी कारण आग लगाना ठीक है या बुझाना उचित है? सासारिक सघर्ष मे से ही राजनीति, लोकनीति और धर्मनीति का विकास हुआ है। परन्तु क्या उस सघर्ष को बनाए रखना उचित है? ससार के कामशास्त्र आदि अन्यान्य शास्त्र इस सघर्ष को बढाने वाले है, परन्तु धर्मशास्त्र उसे मिटाता है। हमे ससार मे फैली हुई सघर्ष की ज्वालाओ को शात करना है। अगर कोई कहता है कि इस आग को रहने दिया जाये तो हम उसकी बात नही मानते। हमे मोक्षतत्त्व निकालना है, अतएव सघर्ष की आग बुझाना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है।

गगकुमार क्रोध करके शिवदास के कान ऐठ सकते थे। उसे देश–निकाला दे सकते थे और सत्यवती को जबर्दस्ती ले जा सकते थे। गगकुमार यह सब कर सकते थे किन्तु धर्म का रास्ता यह नही था। धर्म का रास्ता निराला होता है। अतएव उन्होने शात भाव से पूछा–अब जो बाधा रह गई है वह भी कह डालो। उसके निराकरण का मार्ग भी निकल जाएगा।

शिवदास बोला–आप अपना प्रण निभाएगे इसमे तो कोई सदेह नही है मगर कदाचित आपके पुत्र ने कह दिया कि मेरे पिता का प्रण पिता जाने मे उस प्रण को पालने के लिए बाध्य नही हू तो उस अवस्था मे क्या होगा? मेरा दुहिता राज्य कैसे कर सकेगा?

गगकुमार–आखिर तुम चाहते क्या हो?

शिवदास–इस भय की जड ही कट जाय तो सत्यवती का विवाह महाराज के साथ होने मे कोई बाधा न रहे।

गगकुमार–आखिर वह जड कैसे काटना चाहते हो?

शिवदास–आपके ब्रह्मचारी रहने से भय की जड नही रहेगी।

गगकुमार कुछ क्षणो के लिए गभीर हो गए मानो अपनी अन्तरात्मा से परामर्श करते हो। राज्य त्यागने की अपेक्षा यह प्रतिज्ञा बडी कठोर थी।

फिर भी समर्थ पुरुषो के लिए ससार मे कुछ भी कठिन नही रह जाता। गगकुमार ने शीघ्र ही अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। वे कहने लगे–मेरी माता मुझे लेकर जगल मे चली गई थी। मैं प्रकृति से शिक्षा पा रहा था। उस समय मुझे एक चारण मुनि के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मुनि महाराज का तेज अपूर्व था। मैने विचार किया कि यह तेज किस प्रकार प्राप्त हो सकता है? जब मुनि ने अपना ध्यान समाप्त किया तो मैंने प्रश्न किया–भगवन! आपमे यह अद्भुत तेज कहा से आया है? मुनिराज ने धीमे और मधुर स्वर मे कहा–"त्याग और व्रत से।" मैंने उनसे निवेदन किया–प्रभो मैंने क्षत्रियोचित सब विद्याए तो सीख ली हैं मगर मुझे ऐसे तेज की अभिलाषा है। मेरी प्रार्थना पर उन्होने उपदेश देते हुए कहा था–ब्रह्मचर्य दिव्य शक्ति और दिव्य तेज प्रदान करने वाली महान् रसायन है। जो मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है, उसके लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नही रहती । उनका उपदेश सुनकर मैं पूर्ण व्रत तो अगीकार नहीं कर सका परन्तु मैंने स्वीकार किया था कि मैं (1) निरपराध त्रस प्राणी की हिसा नही करूगा (2) जानबूझ कर मनुष्य पशु या पृथ्वी के विषय मे असत्य भाषण नहीं करूगा (3) किसी का हक छीनकर मालिक बनने का कार्य (चोरी) नही करूगा और (4) यदि पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन कर सका तो अच्छा ही है, अन्यथा इस समय तो यही प्रतिज्ञा करता हू कि परस्त्री को माता–बहिन के समान समझूगा। हे शिवदास! जान पडता है कि उन मुनि की शक्ति आज तुझ मे आ गई है। इसी कारण तू मुझे ब्रह्मचर्य पालने की प्रेरणा करता है।

हे शिवदास! तेरे हृदय को पिता ने पहचाना था ओर तेरा हृदय वास्तव मे उत्तम है। इसी कारण तू अपनी लडकी का अधिकार सुरक्षित कर रहा हे। तूने मुझ से जो कुछ मागा उस माग को सुनकर मुझे प्रसन्नता ही हुई है। तू मुझ कमल को विकसित करने वाला सूर्य हे। चारण मुनि ने जो वात उस समय कही थी ओर जिसे मे तव स्वीकार नही कर सका था उसका लाभ आज तेरे निमित्त से हो रहा हे। हे धीवरराज! विवाह करके मे दो–चार पुत्रा का ही पिता हो सकता था मगर विवाह न करने की प्रतिज्ञा कराकर तू मुझे सम्पूर्ण ससार का पिता वना रहा हे। ले मैं तेरे सामने प्रतिज्ञा करता हू–

"हे देवो! आकाश–मण्डल पर विचरण करने वालो! सुनो। ह पृथ्वी पानी पावक ओर पवन! तुम साक्षी हो। यद्यपि तुम्हारे नियम अटल हे तथापि चाहे व वदल जाए मगर मेरा प्रण नही वदलगा। गगा क पुत्र की प्रतिज्ञा

जीवन–पर्यन्त अटल रहेगी। मै तुम सबके सामने प्रतिज्ञा करता हू कि मे आजीवन ब्रह्मचारी रहूगा।"

चारण मुनि के समक्ष ली हुई प्रतिज्ञा के साक्षी देवो ने जयनाद से आकाश–मडल गुजा दिया। आकाश–वाणी हुई–धन्य हो! गगकुमार धन्य हो! पृथ्वी तुम्हारी पादपाशु से पावन हुई। हे कुरु वश के अवतस! तुम्हारी जय हो! युग–युग मे तुम्हारी कीर्ति अक्षय रहेगी! ससार तुम्हारे यश का वर्णन करते अघाएगा नही। हे धर्म की साक्षात् प्रतिमा! तुम्हारा आदर्श अक्षुण्ण रहे। प्रण पालन की तुम्हारी शक्ति अबाध रहे।

शिवदास अपनी लडकी के ही हित का विचार करता है, लेकिन गगकुमार के हक मे यह प्रतिज्ञा बहुत हितकर सिद्ध हुई। देवगण फूल बरसाकर कहने लगे–"हम आपकी निष्काम पितृभक्ति पर मुग्ध हैं। यह प्रतिज्ञा करने मे आपको कठिनाई मालूम होती या किसी कामना से प्रेरित होकर प्रतिज्ञा करते तो उसका महत्त्व इतना अधिक न होता। यह प्रतिज्ञा करके आपने अपने को जगत् का पिता बना लिया है। आपने भारत–भूमि को कल्याणमयी बना दिया है। यह भीषण प्रतिज्ञा करने से आप आज से "भीष्म" कहलाएगे।"

इस प्रतिज्ञा के कारण भीष्म धन्य है या भारत धन्य है? हमारी समझ मे इसके लिए केवल भीष्म ही धन्यवाद के योग्य नही भारत भी धन्यवाद के योग्य अवश्य है। चीन मे एक ऐसी प्रथा है कि जब पुत्र कोई उत्तम काम करता है तो उसके पिता को उपाधि दी जाती है। इस प्रथा के कारण सतान–परम्परा के सुधार की प्रेरणा मिलती है। जो व्यक्ति उपाधि लेना चाहता है, वह अपने पुत्र को सुधारता है । भारत देश आपका कुछ लगता है? अर्थात् आपका कोई सबधी है या नही? आज भीष्म नहीं है लेकिन भारतीय होने के नाते आप भारत की सतान तो हैं न? भीष्म ने अपने अपूर्व त्याग द्वारा भारत का गौरव बढाया ऐसा गौरव जिसकी उपमा ससार मे मिलनी कठिन है। मगर भारत की सतान होकर भी आप भारत के लिए कितना त्याग करते हैं? जिन भारतीयो को भारतीय खानपान और रहन–सहन बुरा मालूम होता है उन्हे भारत का सपूत किस प्रकार कहा जा सकता है? ऐसे लोग भारत के कपूतो मे ही गिने जा सकते है। भारत के किसी अग्रेज गवर्नर से पगडी बाधने के लिए कहा जाए तो क्या वह राजी होगा? वह कहेगा–"हम अपने देश का गौरव घटाने यहा नही आए हैं किन्तु अपने देश के हित के लिए भारत पर शासन करने आए ह।" मगर आप तो भारत मे रहते हुए भी अग्रेजो की

वेष–भूषा की भद्दी नकल करने मे अपना गोरव समझते हैं। आपको भारतीय वस्त्र पसन्द नही भारतीय भोजन पसन्द नही भारतीय आदर्श पसन्द नही ओर भीष्म का कार्य भी पसन्द नही हे। ऐसा करके आप अपनी मातृभूमि की इज्जत नही खो रहे हैं?

अगर आप भारतीय हैं–भीष्म की सन्तान हैं तो कम से कम परस्त्री का ही त्याग करो ओर भारतीय वस्तुओ से घृणा मत करो। आप अपना कल्याण चाहते हो और सुखमय जीवन बिताना चाहते हो तो भारत की पवित्र परम्परा का महत्त्व समझो, विदेशो का अन्धानुकरण मत करो। इग्लेंड वालो को अगर इग्लैड प्यारा है तो भारतीयो को भारत प्यारा क्यो न हो? भारतीय होकर भी इग्लेंड का खानपान रहन–सहन अपनाने तथा फैशन के चक्कर मे पड जाने से कभी–कभी कितना कष्ट उठाना पडता है यह बात एक उदाहरण द्वारा बतलाना ठीक होगा।

किसी आदमी के घर पुराने ढग की स्त्री है। वह पुराने ढग का भोजन बनाना जानती है। उसे नई फैशन का भोजन बनाना नही आता। पति होटल मे भोजन करता हे ओर होटल सरीखा भोजन न बना सकने के कारण अपनी स्त्री को डाटता हे। कुछ समय तक इसी प्रकार चलता रहा। मान लीजिए इस कारण से स्त्री पुराने ढग का भोजन बनाना भी भूल गई। उधर होटल वाला भी चल दिया। अब पति पर केसी वीतेगी?

इस उदाहरण से आजकल के फेशन की सभी वाते समझी जा सकती हैं। मुह पर पाउडर मलकर नाटक–सिनेमा मे नाचने वाली स्त्रियो पर जो मुग्ध हो जाता हे, उसे भोली ओर सीधी–सादी गृहिणी क्यो अच्छी लगेगी? लेकिन सिनेमा की नटी क्या सुख–दु ख मे समान भाव से साथ दे सकती हे?

माता गगा के नाम से गगकुमार का नाम "गगकुमार" पडा था। मुनि के समक्ष व्रत धारण करने से उनका दूसरा नाम "देवव्रत" हुआ ओर फिर भीषण प्रतिज्ञा करने के कारण तीसरा नाम "भीष्म" हुआ।

गगकुमार की प्रतिज्ञा सुनकर शिवदास एक वार तो दहल उठा। उनकी वीरता और पितृभक्ति देखकर वह चकित रह गया। उसने सत्यवती को वुलाकर कहा– "वेटी गगकुमार ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा की हे इसलिए अव तुम जाओ आर गगकुमार की माता वन जाओ।"

सत्यवती को गगकुमार की प्रतिज्ञाओ का हाल सुनकर अत्यन्त आश्चर्य ओर खेद हुआ। वह लज्जा के कारण झुक गई। उसे शिवदास पर वेहद क्रोध भी आया। वह कहने लगी–स्वार्थी पिता! तुमने यह क्या कर

डाला। तुम जिसकी माता बनने को मुझसे कह रहे हो वह क्या मेरा पुत्र नही हो गया? मेरे पुत्र के साथ तुमने घोर अन्याय कैसे कर डाला? कौन जानता है कि मेरे सतान होगी भी या नही होगी? परन्तु पहले से इस प्रकार की पतिज्ञा करने को जो तैयार हो सकता है उस पर अविश्वास करने का क्या कारण था? आखिर तो तुम धीवर ही हो न। महाराज ने पहले मुझसे ही बातचीत की थी। मैने सोचा—मैं जिन पिता के घर रहती हू, जो मेरा पालन-पोषण कर रहे हैं उनकी आज्ञा के बिना विवाह करना उचित नही है। लेकिन तुमने गगकुमार से ऐसी पतिज्ञाए करवा डाली। तुमने मेरा हित देखकर ही सब कुछ किया है पर दूसरे का भी थोडा भला तो देखना चाहिए था। तुमने मुझे मुह दिखलाने योग्य भी नही रखा। मै कौन सा मुह लेकर महाराज के पास जाऊगी? पिताजी आपने घोर अनर्थ कर डाला। मैं अपने जीवन मे शक्ति का अनुभव कैसे कर सकूगी? मेरा हृदय सदैव सताप की आग मे जलता रहेगा। आपने मेरे जीवन मे काटे बो दिये।

सत्यवती केवल नाम से ही सत्यवती नही वरन् काम और विचार से भी सत्यवती है। वह सत्य का विचार कर रही है। वह शिवदास से कहती है—"गगकुमार जैसा पुरुष तुम्हारे द्वार पर आया और तुमने ऐसी प्रतिज्ञा करवाई। यह बडा ही अनुचित हुआ है। मेरी समझ मे नही आता कि जो अवाछनीय घटना घट गई है उसे किस प्रकार पलटा जाय? मेरे हृदय का दाह किस प्रकार शात हो सकता है?

इसके बाद सत्यवती ने कुमार गग से कहा—"आप मुझे माता कहते हे परन्तु वास्तव मे आप मेरे पिता होने योग्य हैं। आपके त्याग के कारण मेरा मस्तक झुक गया है। मैं लज्जा के अथाह जल मे डूबी जा रही हू। आपने स्वेच्छा से—आत्मा की आन्तरिक प्रेरणा से इस प्रकार की प्रतिज्ञा की होती तो मुझे कोई सताप न होता मगर आपने जो भीषण प्रण किया है उसका निमित्त मैं हू। ऐसी दशा मे मैं किस तरह आपके साथ चलू? आप स्वय ब्रह्मचर्य पाल रहे हे फिर इस झमेले मे क्यो पडे? आप ब्रह्मचर्य पाल सकते हैं और पालने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं परन्तु में ब्रह्मचर्य नही पाल सकती। इसी बात का यह झगडा हे।

भीष्म सत्यवती की पश्चात्तापयुक्त वाणी सुनकर आश्चर्य करने लगे। उन्होंने मन ही मन सोचा—कहा शिवदास ओर कहा सत्यवती? दोनो की प्रकृति मे कितना महान अन्तर हे? वास्तव मे सत्यवती कोरवकुल की माता होने योग्य ह। पिताजी की पसन्द अनुचित नही हे।

उन्होने सत्यवती से कहा– माता आपका हृदय बहुत उत्तम हे। मुझे आश्चर्य है कि आपका जन्म धीवर के कुल मे कैसे हो सकता है? आपका हृदय भी उच्च कुल की सुसस्कृता महिला से हीन नही है। यद्यपि आपका कथन अयथार्थ नही कहा जा सकता फिर भी आप मेरा परिश्रम निष्फल नही करेगी। आप चाहे चले या न चले मैं प्रतिज्ञा कर चुका हू और इस जीवन के साथ ही उसका अन्त होगा। मैं न राज्य करूगा और न विवाह करूगा। अगर आपकी मुझ पर कृपा है तो आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। आप मेरे साथ चलिए और पिताजी का कष्ट मिटाइए। आप जैसी उत्तम माता की मौजूदगी मे राज्य करने का तो कोई प्रश्न ही उपस्थित न होगा।"

सत्यवती अपने सकोच को अभी तक नही जीत सकी थी। लेकिन उसने कहा–पुत्र, कौन जाने मैं पुत्र को कब जन्म दूगी, या नही दूगी परन्तु तुम्हारे जैसा महापुरुष मुझे माता कहता है, यह मेरा परम सौभाग्य है। तुम–सा पुत्र पाकर कौन निहाल न हो जाएगी? जिस कुल मे तुम्हारे जैसे उत्तम पुरुष विद्यमान हैं उसके साथ जुडना क्या कम सौभाग्य की बात है? मैं उससे जुडने को तैयार हू।

भीष्म ने सत्यवती को रथ मे बैठ जाने को कहा। सत्यवती रथ मे बैठ गई। सत्यवती को जाते देख शिवदास के आसू बहने लगे। पिता से दूर होने के विचार से सत्यवती भी रोने लगी। उसी समय भीष्म के पास आकर शिवदास ने कहा–गगकुमार! आपका अनुमान सत्य है। मैं सत्यवती का सिर्फ पालक पिता हू, जन्मदाता पिता नही।

शिवदास ने अब तक बडे यत्न से जो भेद छिपा रखा था उसे आज खोल दिया। सत्यवती और भीष्म–दोनो आश्चर्य करने लगे ।

सत्यवती ने सोचा था–"जिसका हृदय इतना मलिन हे जो दूसरे के न्यायसगत अधिकार को भी सहन नही कर सकता ओर केवल अपना ही अपना अधिकार चाहता है उस पिता से मेरा जन्म केसे हुआ? अपनी सन्तान के स्वार्थ के लिए दूसरो के हक को हडप लेना, उत्तम पुरुषो का कर्त्तव्य नही है। इस आशय की बात उसने शिवदास से पहले कह भी दी थी।

शिवदास मच्छीमार हे। अपने तुच्छ लाभ के लिए मछलियो के गले मे काटा फसाना इसका काम था। इस कारण अपनी सतान के हित के लिए उसने दूसरे की सतान का हित भुला दिया। दूसरे की सतान का हित न देखन के कारण सत्यवती ने उसे फटकार भी वतलाई। परन्तु सत्यवती क साथ आप भी क्या शिवदास को वुरा कहेगे? शिवदास ने कम स कम अपनी सन्तान का

हित तो देखा है। आप तो अपने स्वार्थ के सामने अपनी सन्तान के हित को भी नष्ट करने से नही चूकते। कुछ हजार रुपये गिनाकर अपनी कन्या को के गले मढ देने वालो के साथ इस मच्छीमार की तुलना तो करो। अपनी सन्तान के हित के लिए दूसरो का हक छीनने वाला अगर कोटी–... है तो उन्हे क्या कहना चाहिए जो अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए अपनी ... सन्तान का हक छीन लेने मे लज्जित नही होते।

शिवदास फिर कहने लगा–"पुत्री। तू यहा इतनी बडी हुई मगर तूने आज तक किसी को मेरे ऊपर आक्षेप करते नही सुना है। जैसे अगरबत्ती जलकर अपनी सुगन्ध देती है उसी प्रकार तूने भी समय पर अपनी सुगन्ध फैलाई है। तू मेरे कार्य से पसन्न नही हुई। तूने ही सच्ची बात कही है। अब तुझे यह पश्चात्ताप है कि ऐसे मलिन हृदय से तेरा जन्म केसे हुआ? लेकिन बेटी तू पश्चात्ताप मत कर। तू इस हृदय से उत्पन्न नही हुई।

सत्यवती–पिताजी, मेरी समझ मे कुछ भी नही आ रहा है। क्या सचमुच मे मैं आपकी कन्या नही हू?

शिवदास–नही तुम मेरी कन्या नही हो। काटो की डाली कल्पवृक्ष की रक्षा कर दे तो इसमे उसके लिए अभिमान का कोई कारण नही है। सत्यवती रूपी कल्पवृक्ष मेरे यहा पला यह बात दूसरी है पर सत्यवती मेरी कन्या नही है। भीष्मजी इस कन्या ने मुझसे जो कुछ कहा है ठीक ही कहा है। वास्तव मे मैं आपको पहिचान नही सका। आप जैसे उच्चकुलीन महानुभाव से ऐसी प्रतिज्ञा करवाना उचित नहीं था। लेकिन आखिर तो मैं मच्छीमार धीवर ही ठहरा न। अब मे बतलाता हू कि सत्यवती मेरे यहा किस प्रकार आई।"

शिवदास फिर कहने लगा– 'भीष्मजी। यमुना के तट पर अपना धधा करके मैं थक गया था। मैं अशोकवृक्ष के नीचे जा पडा। पडे–पडे मुझे विचार आया कि मैं कितना अभागा हू कि मेरे कोई सन्तान नही है। यो तो मै पाप का धन्धा करता हू, मगर मैंने कोई गुप्त पाप नहीं किया। फिर मेरे यहा सन्तान क्यो न हुई? मैं अपनी सारी जिन्दगी के कार्यो की आलोचना करता हुआ चिन्ता मे डूबा था कि इतने मे मेंने एक आश्चर्य देखा। मैंने देखा कि आकाश से फकी हुई एक कन्या चली आ रही हे। वह कन्या पास ही घास की एक क्यारी मे गिरी। मै भागा हुआ उस क्यारी के पास गया और कन्या को देखकर मुझे ऐसी प्रसन्नता हुई जेसे जन्माध को अचानक आखे मिल गई हो। मैंने

सोचा—कदाचित् मेरी पत्नी किसी कन्या को जन्म देती तो वह इतनी सुन्दर न होती। यह कितनी खूबसूरत कन्या है? मैं इसे पराई न समझकर अपनी ही समझूगा। यह स्वर्गलोक से मानो मेरे लिए ही आई हे।"

मैं कन्या को अनमोल द्रव्य की भाति उठाकर चलने को तैयार हुआ ही था कि मुझे दिव्य—वाणी सुनाई दी—"यह कन्या एक विभूति हे। तू इसका जितना हित करेगा, तेरे लिए अच्छा ही होगा। यह कन्या रत्नपुरी के रत्नागद राजा की रत्नवती रानी की कन्या है। रत्नागद के एक शत्रु ने क्रोध करके रत्नागद की सतान को नष्ट करने के लिए उसे हरण किया था मगर कन्या समझकर उसने मार डालना उचित नही समझा। वह इसे यहा छोड गया है। यह कन्या राजा शातनु की पत्नी और सम्राट की माता होगी।

इतना कहकर शिवदास भावादेश से गद्गद् हो गया। उसने फिर कहा—"हे गगकुमार! यही वह कन्या सत्यवती है।"

शिवदास के मुख से अपना यह अद्भुत वृत्तान्त सुनकर सत्यवती अचरज मे पडी हुई कहने लगी—पिताजी! आवेश मे आकर मैंने आपके प्रति जो अनुचित शब्द कह डाले है, उनके लिए आप क्षमा करे। आपने सदैव मेरा हित किया है। आपने जितना मेरा हित चाहा है शायद सगा पिता भी न चाहता। यह बात दूसरी है कि आपने गगकुमार से बहुत वडी और कडी प्रतिज्ञा करवाई हे फिर भी आपके हृदय मे किसी प्रकार का स्वार्थ नही था। आपने इसी मे मेरा एकान्त हित समझा था।

शिवदास—"बेटी सत्यवती! तू सचमुच सत्यवती हे। तूने अपने हित की उपेक्षा करके भी सत्य बात प्रकट कर दी।"

सत्यवती—"में आपकी कृपा से ही जीवित हू। आपका मुझ पर असीम उपकार हे। में आपकी चिर—ऋणी रहूगी। मेरी प्रशसा करके अव उस ऋण को अधिक न वढाइए।"

शिवदास गगकुमार की ओर उन्मुख होकर कहने लगा—"कुमार! मेर यहा रहकर सत्यवती ने मेरा बडा उपकार किया हे। में गरीव इसे क्या तो पहना—ओढा सकता था ओर क्या खिला—पिला सकता था? मगर इस भोली कन्या ने मुझे किसी चीज के लिए परेशान नही किया। मेंने जो कुछ इसक सामने रख दिया खुशी—खुशी इसने ग्रहण किया। कभी कोई फरमाइश नही की ओर न नाक सिकोडा। यह सव प्रकार स मुझ ओर मरी पत्नी का सहायता पहुचाती रही । इसकी सगति से मुझम ओर मेरी पत्नी म सत्य का प्रकाश प्रकट हुआ ह। उस सत्य क प्रकाश म म देख पाया कि किसी का गला

काटकर अपना पेट भरना उचित नही है। तभी से मैने मछली मारना त्याग दिया और नाव चलाकर अपनी आजीविका चलाने लगा। नाव चलाने के कष्टकर और सकटपूर्ण कार्य मे भी सत्यवती ने मुझे खूब सहायता पहुचाई है। यद्यपि मैं अपनी नाव द्वारा गरीबो को बिना पैसे लिये ही पार उतारता रहा हू, फिर भी मुझे पैसे की कभी कमी नही रही। मुझे आशा है कि सत्यवती के दिये पकाश से सहज ही मेरे जीवन की नाव भी किनारे लग जायेगी और कौरव–कुल की नौका को वह सकुशल पार लगायेगी।"

"हे कुमार! मैंने आपको पतिज्ञा के बन्धन मे बाधकर बडी भूल की है। अब मै नही चाहता कि सत्यवती का पुत्र ही राज्य करे और आप राज्य न करे तथा विवाह भी न करे। आपने मेरी प्रेरणा से ही यह प्रतिज्ञा की है, अतएव मैं अपनी प्रेरणा वापिस लेता हू और आपको अपनी ओर से प्रतिज्ञामुक्त करता हू।"

गगकुमार ने सत्यवती की ओर उन्मुख होकर कहा–माता, तुम मेरी ही नही सारे ससार की माता होने योग्य हो। तुम्हारी बात सुनकर ही तुम्हारे पिता के हृदय मे परिवर्तन हुआ है। भले ही इनका हृदय पलट गया है, पर मेरी प्रतिज्ञा नही पलट सकती। प्रतिज्ञा करते समय मैंने कोई छूट नही रखी है। मै पहले ही कह चुका हू कि ससार के पलट जाने पर भी मेरी प्रतिज्ञा नही पलटेगी। क्षत्रिय का प्रण मिथ्या नही हो सकता। वह जो प्रतिज्ञा कर चुका, कर चुका। वह फिर पलट नही सकती।

गगकुमार और सत्यवती ने शिवदास को यथोचित नमस्कार किया। रथ रवाना हुआ। शिवदास की आखे बरसने लगी और सत्यवती की भी। जब तक रथ दिखाई दिया, शिवदास उसी ओर आखे गडाए रहा।

किसी भी देश और जाति की प्रतिष्ठा एव अप्रतिष्ठा उसके अगभूत व्यक्तियो के आचरण पर निर्भर रहती है। एक भी भारतीय अपने उच्चतम आचार से भारत का मुख उज्ज्वल कर सकता है। इसके विपरीत एक भारतीय अपने निन्दनीय आचरण के द्वारा अपनी मातृभूमि का सिर नीचा कर सकता है। एक भीष्म ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके भारतीयो के समक्ष अमर और अनुपम आदर्श उपस्थित किया है। इस आदर्श मे आत्मोत्सर्ग की महत्ता है, पितृभक्ति की पवित्र प्रेरणा है ब्रह्मचर्य का वीरतापूर्ण सन्देश है विषय–विरक्ति की विज्ञप्ति है। भीष्म के आदर्श त्याग से भारत का गौरव बढा हे। यह भारत ही भीष्म का पिता–माता ह। आप भी इसी भारत की सन्तान है। अगर आप भीष्म की बराबरी नही कर सकते तो उनके मार्ग पर धीमी–धीमी गति से

अवश्य चल सकते हैं। कम से कम इतना तो कर सकते हे कि अपनी मातृभूमि को बदनाम करने वाला कोई कार्य न करे। अगर आप इतना ख्याल रखे कि आपके किसी कार्य से भारत की लाज न लुटने पावे तो भी कुछ कम नहीं है। अगर आप इतना भी कर सके तो भीष्म का चरित सुनना आपके लिये सार्थक हो जाएगा।

सत्यवती शान्तनु के समक्ष हाथ जोडकर खडी हुई। अचानक सत्यवती को सामने पाकर राजा को विस्मय हुआ। वे सोचने लगे—यह मैं क्या देख रहा हू? क्या यह वही सत्यवती है जिसे याचना करके भी मैं नही पा सका? है तो वही सत्यवती, एकाएक यह यहा कैसे?

दूसरी ओर गगकुमार और मत्रियो को खडा देखकर राजा ने कहा—"मैं यह सब क्या स्वप्न देख रहा हू!"

मत्री—नही, महाराज! आप जागृत हैं और स्वप्न नही सत्य देख रहे हैं। जब आपको चिन्तामणि सरीखे पुत्र गगकुमार प्राप्त हैं तो आपके लिए कमी किस चीज की हो सकती है?

राजा—पहेली मत बुझाओ। स्पष्ट कहो, सत्यवती यहा कैसे आई है?

मत्री—कुमार शिवदास के घर गये। उन्होने प्रतिज्ञा की है कि राज्य मैं नही करूगा, सत्यवती का पुत्र करेगा। यह प्रतिज्ञा करके कुमार इन्हे ले आये हैं।

राजा—कुमार यह तुमने क्या गजब किया? में तो तुम्हारा ख्याल करके ही मन मसोसे बेठा था।

मत्री—महाराज! जो होना था हो चुका हे। अब भीष्म की प्रतिज्ञा नही टल सकती। ऐसा पुत्र पाने के लिए अपने भाग्य की सराहना कीजिए।

राजा—केसी विचित्र बात है!

मत्री—महाराज! यह विचित्र बात नही हे। विचित्र बात तो यह हे कि कुमार ने धीवर का सन्देह निवारण करने के लिए आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा की हे।

राजा यह सुनकर व्याकुल हो उठे। उन्हे ऐसी चोट पहुची मानो किसी ने हृदय मे भाला भोक दिया हो। फिर कहने लगे—क्या इसस अच्छा यह न होता कि में स्वय ब्रह्मचर्य का पालन करता! गगा मुझे छाडकर चली गई। वह ब्रह्मचर्य का पालन कर रही हे—तपस्विनी का जीवन यापन कर रही हे। उसने अपन हृदय का हार अपन सासारिक जीवन का सार गगकुमार मुझ उपहार मे दिया था। इसकी यह दशा हुई! आर वह भी मरी दुर्बुद्धि क कारण।

हाय मै ब्रह्मचर्य पालता तो कौन बडी बात हो जाती। मुझ–सा कामी और गगा–सा धर्मी और कौन मिलेगा? यह पुत्र नही कोई दिव्य शक्ति है जिसने पुत्र के रूप मे मेरे यहा अवतार लिया है। मै क्या इसका पिता कहलाने योग्य हू? अपनी ओर से पुत्र के जीवन की सुकुमार भावनाओ का अकाल मे ही घात करने वाला ऐसा दुष्ट पिता ससार मे दूसरा कौन होगा? मैं कैसा राक्षसी विचार वाला पामर प्राणी हू। अरे गगकुमार! मेरे जैसे दुष्ट के लिए तूने यह क्या कर डाला? मुझे अपने पापो का प्रायश्चित्त क्यो नही करने दिया?

शान्तनु की यह स्थिति देखकर गगकुमार असमजस मे पड गए। वे सोचने लगे–मैंने पिताजी को सुखी बनाने के लिए जो किया, उससे तो उनका दु ख ही बढा! इस समय सान्त्वना देने की आवश्यकता है। अतएव वे पिता से कहने लगे–

"पिताजी ! आप सोचते हैं कि गग का राज्य गया और उसे ब्रह्मचारी रहना पडेगा लेकिन क्या राज्य का त्याग और ब्रह्मचर्य का पालन बुरा है? आप ब्रह्मचर्य पालते तो देशत ही उसका पालन कर सकते थे। लेकिन देशत पालन करने पर भी ब्रह्मचर्य अच्छा माना जाता है। वह अगर पूर्णरूप से पाला जाये तो क्या अधिक अच्छा न होगा? अगर मैं किसी शत्रु को जीतकर लौटता तो आपके हर्ष का पार न रहता। पर मैं प्रबल कामशत्रु को जीतकर आया हू, तो आप शोक और सताप क्यो कर रहे हैं? आपकी कृपा और माता की शक्ति से ही मैं काम को जीतने मे समर्थ हो सका हू। अन्यथा उसे जीतना सरल नही था।"

आज भारतवर्ष मे ब्रह्मचर्य की बडी कमी है। ब्रह्मचर्य के अभाव ने पजा को निर्बल निस्तेज अल्पायु, रोगी और गुलाम बना दिया है। आधुनिक कॉलेजो के अधिकाश विद्यार्थियो के चरित्र की आलोचना सुनकर घोर निराशा होती है। जब शिक्षितो का यह हाल है तो अशिक्षितो का कहना ही क्या है?

गगकुमार कहते हैं–"पिताजी आपको मेरे राज्य–त्याग की चिन्ता है पर त्याग के लिए भी क्या पश्चात्ताप की आवश्यकता है? आप और मैं त्यागियो के चरणो मे मस्तक टेकते हैं त्यागी को महान पुरुष मानते हैं। कुरुवश मे एक से एक बडे त्यागी हुए हैं। फिर चिन्ता क्यो करते हैं? मैंने अपने भाई के लिए अगर राज्य त्याग दिया तो कौन–सा बडा त्याग कर दिया है? आपकी इस चिन्ता से तो भरत के लिए राम का राज्य त्यागना भी बुरा समझा जाएगा। "मै और "मेरा" को लेकर ही ससार के सारे झगडे खडे होते हैं। अपने भाई के लिए त्याग करना कोई त्याग ही नही है। राज्य भाई का होगा

और भाई मेरा होगा तो राज्य भी मेरा ही रहेगा। इसमे खेद का कोई कारण नही है। मैंने जो कुछ त्याग किया भी है, वह पितृभक्ति की प्रेरणा से ही किया है। अगर आप पितृभक्ति को हेय न मानते हो तो चिन्ता का त्याग कीजिए और इन माता के साथ विवाह करके मुझे गगा माता की गोद के बदले माता सत्यवती की गोद मे रखिए।"

गगकुमार के प्रिय शब्दो ने शान्तनु को आश्वासन दिया। उनकी चिन्ता कम हो गई। उन्होने सत्यवती के साथ विवाह किया और आनन्द से समय व्यतीत करने लगे।

आज के बहुत से लोग कहा करते हैं—भीष्म की कथा पौराणिक कथा है और पौराणिक कथा काल्पनिक होती है—सत्य नहीं। हम तो सिर्फ इतिहास की बात ही सच्ची मानते हैं।

वास्तव मे धर्मकथा को हम भी इतिहास नही कहते क्योकि धर्मकथा के सामने इतिहास तुच्छ है। हमारा अभिप्राय यह नही है कि आप धर्मकथा को इतिहास के रूप मे ही माने, लेकिन धर्मकथा से निकले हुए सत्य के प्रकाश को तो स्वीकार करे। धर्मकथा मे बतलाए हुए त्याग के अनुसार आप त्याग न कर सके तो धर्मकथा के त्याग को तो बुरा न कहे।

मेवाड के इतिहास मे दो घटनाए ऐसी मिलती हैं, जो भीष्म के त्याग की ओर कृष्ण द्वारा रुक्मिणी की रक्षा की अधिकाश मे पुनरावृत्ति—सी जान पडती हैं। मेवाड के इतिहास मे भीष्म के त्याग की थोडी—बहुत समता करने वाली घटना चूडा का राजत्याग है। और जैसे कृष्ण ने रुक्मिणी की रक्षा की थी उसी प्रकार राजसिह ने रूपनगर की राजकुमारी की रक्षा की थी। कदाचित् कोई भीष्म के त्याग को काल्पनिक घटना मानता है तो चूडा का त्याग तो ऐतिहासिक हे। भीष्म—सा त्याग नही कर सकते तो चूडा—सा त्याग ही करो, मगर काल्पनिकता का वहाना करके त्याग से वचने का प्रयत्न मत करो। ऐसा करने से भीष्म का कुछ बिगाड नही होगा तुम्हारी जिन्दगी ही वर्बाद होगी।

वही बात हमारे काम की हे जो धर्म के साथ सगत हे। धर्म के साथ जिसकी सगति नहीं हे उससे हमे कोई प्रयोजन नही। गगकुमार न राज्य का अधिकार भी त्यागा था ओर व्रह्मचर्य भी स्वीकार किया था। चूडाजी व्रह्मचर्य का पालन न कर सक फिर भी उन्हान जो त्याग किया उसका मूल्य कुछ कम नही है। पिता की साधारण तोर पर हसी म कही हुई वात रा अपा आपका राज्याधिकार स वचित कर लेना भाई क राज्य का प्रवन्ध करना आर

राज्य की सारी बागडोर हाथ मे होते हुए भी विमाता के सन्देह के कारण राज्य की सीमा से बाहर निकल जाना कोई सरल बात नही है। चूडाजी के इस पकार चले जाने पर राम की भी याद आ जाती है। राम चाहते तो कैकेयी को घुडकी बता सकते थे कि मेरे अधिकार का राज्य छीनने वाली तुम कौन होती हो? लेकिन सोच मे पडे हुए पिता को चिन्तामुक्त करके राम वन को चल दिये। इसी पकार चूडाजी भी माता को टरका सकते थे कि राज्य मेरा है, उस पर मेरा अधिकार है तुम दखल देने वाली कौन हो? अगर राम और चूडाजी अपनी–अपनी सौतेली माता को ऐसा उत्तर देते तो वह कुछ भी नही कर सकती थी परन्तु उन्होने ऐसा नही किया।

चूडाजी की बात ऐतिहासिक है और भीष्म की कथा धर्मशास्त्र की , है। धर्मशास्त्र की यह कथा ऐतिहासिक हो तो इसमे आश्चर्य की कौन–सी बात है? इस कथा मे कोई भी ऐसी वस्तु नही है जो उसकी ऐतिहासिकता का विरोध करती हो। फिर भी मेरा कहना तो यह है कि धर्मकथा को इतिहास की दृष्टि से न देखकर आदर्श की दृष्टि से देखना चाहिए। हमे देखना चाहिए कि भीष्म के आदर्श ने जगत् की कुछ भलाई की है या नही? और कोई बुराई तो उत्पन्न नहीं की? किसी भी बात के असली आदर्श पर पहुचना चाहिए और वही आदर्श अपनाना चाहिए, जिससे स्थायी शाति प्राप्त हो सके। यही बात एक उदाहरण द्वारा समझिए।

एक बादशाह ने किसी अपराधी को फासी की सजा दी। अपराधी ने सोचा–अब मैं मौत का शिकार होने ही वाला हू, फिर मन की क्यो न निकाल लू? यह सोचकर उसने बादशाह को खूब गालिया सुनाई। यद्यपि बादशाह अपराधी द्वारा दी जाने वाली गालिया सुन रहा था मगर जिस भाषा मे वह गालिया दे रहा था बादशाह वह भाषा नही समझता था। बादशाह के दो वजीर वही मौजूद थे और वे अपराधी की भाषा समझ रहे थे। बादशाह ने एक वजीर से पूछा–यह क्या कह रहा हे?

वजीर ने कहा–यह आपको दुआ दे रहा है। कहता है कि वास्तव मे मैने अपराध किया था। इस लोक मे दण्ड से बच भी जाता तो परलोक मे दोहरा दण्ड भोगना पडता। अच्छा हुआ बादशाह ने मुझे दण्ड देकर परलोक मे ज्यादा दड भोगने से बचा लिया। बादशाह अमर रहे।

यह सुनकर बादशाह बहुत खुश हुआ। उसने कहा–अपराधी को सजा देने का उद्देश्य यही हे कि उसका हृदय बदल जाय। जब इसका हृदय बदल गया ह तो इसे फासी लगाने से क्या लाभ है?

बादशाह ने उसकी सजा माफ कर दी। अपराधी प्रसन्न होता हुआ वहा से चला गया।

दूसरा वजीर नाराज होकर कहने लगा—मालिक के सामने इस प्रकार झूठ बोलने का काम इन्ही से वन सकता हे। ऐसा विश्वासघात दूसरा नही करेगा।

बादशाह ने पूछा—बात क्या है?

दूसरे वजीर ने कहा—वह अपराधी, पापी आपको मनचाही गालिया दे रहा था। फासी की सजा पा चुकने के बाद भी उसे पश्चात्ताप नहीं था। फिर भी इन्होने झूठी बात कहकर उसे छुडा दिया।

बादशाह दोनो वजीरो पर विश्वास करता था। वह असमजस मे पड गया कि किसकी बात सही और किसकी गलत समझी जाय? पहले की बात मानकर वह अपराधी को मुक्त कर ही चुका है। अगर दूसरे की बात सही मानता है तो उसका क्रोध बढता है। स्वय बादशाह अपराधी की भाषा नही समझता और दोनो ही वजीर उसकी दृष्टि मे विश्वासपात्र हैं। अब बादशाह किसका कहना सच माने और किसका झूठ?

बादशाह बुद्धिमान् था। उसने दूसरे वजीर से कहा—भले ही पहले वजीर की बात झूठी हो पर वह दया उत्पन्न करने वाली है। और तुम्हारी बात चाहे सच ही हो कि अपराधी मुझे गालिया दे रहा था तब भी वह क्रोध उत्पन्न करने वाली है। इसकी बात मानकर मैंने अभियुक्त को छोड दिया है। तुम्हारी बात मानू तो उसे फिर पकडवा कर सजा दू! अतएव तुम्हारी बात भले ही सच हो पर मानने योग्य बात इसकी हे।

मनुष्य की ज्ञानशक्ति परिमित हे। कोई भी बुद्धिमान मनुष्य यह दावा नही कर सकता कि वह अभ्रान्त हे ओर उसने कभी कोई भूल नही की। एक बार नहीं अनेक बार मनुष्य भ्रम मे पडकर दूसरे को अनुचित दण्ड दे देता हे। अपराधी साफ बच जाता है और निरपराधी मारा जाता हे। चोरी आदि जो भी अपराध किये जाते हैं वे सब तृष्णा—लोभ के वश होकर ही किये जाते हैं। इसमे आत्मा का दोप नहीं हे। लेकिन मनुष्य अपूर्ण हे। दड देने वाले लोग तृष्णा एव लोभ मे पडकर अपराध करने वालो को तो दड देते हें परन्तु यह नही देखते कि अपराधी ने जिन कारणा से अपराध किया हे वह कारण हम मे भी मोजूद हे या नही? अपराधी ने भले चोरी करक किसी का लूटा हे आर हम सफेद चोरी करक ता किसी को नही लूटते हें? वस हुए सुन्दर ग्राम का वम पटककर नष्ट कर दना क्या अपराध नही ह?

जैसे बादशाह अपराधी की बात नही समझता था, उसी प्रकार आप भी नही समझते कि कौन–सा धर्म सच्चा है और कौन–सा नही? ऐसी दशा मे आपको यही देखना चाहिए कि किस धर्म से शाति मिलती है? किस धर्म से मेरी और दूसरो की भलाई हो सकती है? इस प्रकार का विचार करके धर्म को स्वीकार करोगे और उसका अनुगमन करोगे तो धर्म से अवश्य ही शाति प्राप्त होगी। अन्यथा धर्म के लिए सिर–फुटौवल होने पर शाति कोसो दूर भाग जाती है।

परमाणु बम के द्वारा हिरोशिमा जैसे बडे नगर को धूल मे मिला देना और लाखो निरपराध बालको स्त्रियो एव नागरिको की हत्या कर डालना एक ऐसा भयानक अपराध है जिसका मुकाबिला भीषण से भीषण हत्यारे का अपराध भी नहीं कर सकता। मगर आज ऐसा करने वाले विजेता अपराधी पराजित देशो के अपराधो का हिसाब लगाने बैठे हैं और उन्हें सजा सुना रहे हैं। ऐसे न्याय की बलिहारी।–सम्पादक

14 भीष्म की वीरता

सत्यवती के साथ विवाह करके राजा शान्तनु आनन्दपूर्वक रहने लगे। समय पाकर सत्यवती के उदर से चित्रागद ओर विचित्रवीर्य नामक दो पुत्रो का जन्म हुआ। कुछ दिनो के पश्चात् शान्तनु ने शरीर त्याग दिया। महात्मा भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चित्रागद को राज्यासन पर बिठाया और स्वय राजकाज देखने लगे। चित्रागद बहुत पराक्रमी राजा हुए परन्तु किसी गधर्व के साथ युद्ध करते हुए परलोक सिधारे। उनकी अत्येष्टि क्रिया करके भीष्म ने विचित्रवीर्य को राजा बनाया। विचित्रवीर्य भी सुन्दर और शक्तिशाली था। भीष्म पूर्ववत् राज्य का प्रबन्ध करते रहे। विचित्रवीर्य नम्र था और वह भीष्म की आज्ञा का ही अनुसरण करता था।

विचित्रवीर्य राजा हो चुका था, फिर भी उसका विवाह नहीं हुआ था। आज की तरह उस जमाने मे विवाह के लिए जल्दबाजी नहीं की जाती थी। लडका कमाने-खाने योग्य हो या न हो, वयस्क हो गया हो या न हुआ हो, उसे विवाह की आवश्यकता प्रतीत होती हो या नही आजकल के माता-पिता का प्रथम कर्त्तव्य उसे विवाह के बधन मे जकड देना है। यही कारण है कि आज की प्रजा अशक्त होती जाती है।

विचित्रवीर्य को वयस्क और विवाह के योग्य देखकर भीष्म ने उसका विवाह कर देने का विचार किया। उन्ही दिनो काशीनरेश ने अपनी अम्बा अम्बिका और अम्बालिका नामक तीन कन्याओ का स्वयवर रचा और सब राजाओ को निमत्रण दिया। परन्तु सम्भवत यह सोचकर कि सत्यवती धीवर की कन्या है और विचित्रवीर्य उसी का पुत्र है विचित्रवीर्य को आमत्रण नही दिया। काशीराज के द्वारा [illegible]मत्रण न मिलना भीष्म ने कुरुवश का अपमान समझा। तेजस्वी पुरुष कठि[illegible]स कठिन विपत्ति सह सकते हैं पर अपने कुल का अपमान सहन नही कर सकते। भीष्म विचार करने लगे- मेरे रहते कोरव-कुल का अपमान हो ओर में चुप बेठा रहू, यह नही हो सकता। मुझे इस अपमान का प्रतिकार करना चाहिए।

भीष्म सत्यवती के पास पहुचे। सत्यवती को यथोचित प्रणाम कर उन्होने कहा-भाई विचित्रवीर्य विवाह के योग्य हो गया हे।

सत्यवती-जिसने तुम-सा समर्थ भाई पाया हे उसके विवाह की क्या चिन्ता करना ह! जो उचित समझा करा।

भीष्म-यह तो ठीक हे। लकिन काशीराज न अपनी कन्याआ क स्वयवर का निमन्त्रण नही भजा।

सत्यवती—नही भेजा तो न सही। कन्याओ का अकाल थोडे ही हे।

भीष्म—नही अकाल नही पडा है, पर यह कौरव कुल का अपमान है। मैं यह अपमान सहन नही करूगा। मैं बिना निमत्रण ही स्वयवर मे जाऊगा और इस अपमान का आना—पाई समेत बदला लूगा।

सत्यवती—आप अकेले होगे ओर वहा राजाओ का जमघट होगा।

भीष्म—(हसकर) आपका पुत्र अकेला ही काफी है। राजा लोग तभी तक अपनी आभा दिखला सकते है जब तक कुरुकुल का सूर्य मौजूद नही है। मै अकेला ही सबकी खबर ले सकता हू।

सत्यवती सहमत हो गई। बोली—ऐसी ही इच्छा है तो जाओ। तुम्हारा कल्याण हो।

भीष्म रथ मे सवार होकर अकेले ही काशीराज के यहा जा पहुचे। स्वयवर—मडप मे जहा अनेक बलवान् और कुलवान् नरेश बैठे थे, भीष्म वही जा धमके। भीष्म को स्वयवर—मडप मे आया देखकर राजा लोग सहम गए। आपस मे कानाफूसी करने लगे। किसी ने कहा—'भीष्म बिना निमत्रण ही यहा कैसे आये ? इन्हे आने का अधिकार ही नही है।"

दूसरे ने कहा—आज इनकी कलई खुली है। अभी तक बालब्रह्मचारी कहलाते थे अब बुढापे मे स्वयवर की शोभा बढाने आये हैं।

तीसरा कहने लगा—विचित्रवीर्य ने इनका अपमान किया है। सोचते होगे बिना स्त्री के बुढापे मे कौन खोज—खबर लेगा? इसी से अब बुढऊ को विवाह करना सूझा है।

चौथा कुछ समझदार था वह कहने लगा—मामला क्या है? भीष्म ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा भग नहीं कर सकते। फिर इनके आने का उद्देश्य क्या है?

इस प्रकार राजा लोग तरह—तरह की कल्पनाए करने लगे और बडी उत्सुकता एव बेचैनी के साथ भीष्म की ओर ताकने लगे।

काशी—नरेश की तीनो कन्याए मण्डप मे घूम रही थीं। सबके देखते—देखते अचानक ही भीष्म का रथ स्वयवर—मण्डप के मध्य मे आ खडा हुआ। भीष्म के असाधारण तेज के मारे किसी का साहस न हुआ कि वह रथ को रोकता। भीष्म ने गभीर ध्वनि से गर्जना करते हुए और उपस्थित राजाओ को ललकारते हुए कहा—"मैं कुरुवशोत्पन्न गगकुमार अपने लिए नही वरन् अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए इन तीनो कन्याओ का हरण करता हू, जिसमे शक्ति हो मुझे रोके।

इतना कहकर भीष्म ने तीनो कन्याओ को रथ मे बेठा लिया। सभी राजा हक्के–बक्के रह गए। किसी को कुछ सूझ ही न पडा कि क्या करे और क्या न करे ?

भीष्म चाहते तो रथ को निर्विघ्न भगा ले जा सकते थे पर उन्होने ऐसा नही किया। भीष्म ने विचार किया–विना युद्ध किये इस प्रकार कन्याओ को ले जाना उचित न होगा। इन्हे चुराकर नहीं वरन् जीतकर ले जाने मे ही हमारी और हमारे कुल की शोभा होगी। उन्होने सब राजाओ को चुनौती देते हुए कहा–तुम लोग बहुत हो और मैं अकेला हू। मैं तुम सब के सामने इन कन्याओ को विचित्रवीर्य के लिए ले जाता हू। काशीराज ने विचित्रवीर्य को निमत्रण नहीं भेजा और इस प्रकार कुरुवश का अपमान किया है। मैं उस अपमान का बदला लेने और कुरुवश की वीरता का परिचय देने के लिए इन कन्याओं का हरण करता हू। अगर तुममे से किसी मे शक्ति है तो सामने आओ और अपना बल दिखलाओ। अगर तुम जीत जाओ तो इन कन्याओ को ले जाना, अन्यथा मैने तो अपना पुरुषार्थ बतला ही दिया है।

भीष्म की चुनौती सुनकर कन्याए सोचने लगी–यह कौन वीर पुरुप है जिसने हमे रथ मे बिठलाकर भी दाव पर चढा दिया है। यह हमे अपने लिए तो ले नही जा रहा है, जिसके लिए ले जा रहा है वह कैसा वीर होगा? इस प्रकार के सकल्प–विकल्प मे पडी वह कन्याए भय से कापने लगी।

भीष्म की ललकार सुनकर अन्य राजाओ का वीररस भी जाग उठा। वे कहने लगे–तुम भाई के लिए कन्याए ले जाने की बात कहते हो। अगर यह सच हे तो अपने भाई को ही क्यो न भेज दिया? भाई को भेजते तो हम उसे मजा चखाते। ब्रह्मचारी होकर इस झमेले मे पडने की तुम्हे क्या जरूरत थी? विवाह नहीं करना था तो इन कन्याओ का स्पर्श ही क्यो किया? लो अव करो सामना देखते हैं तुम्हारी वीरता?

इस प्रकार कहकर राजा लोग एक ही साथ भीष्म पर वाण वरसाने लगे। भीष्म ने सारथी से कहा–मेरे रथ को चक्र की तरह गोल घुमाओ। भीष्म राजाओ के चलाए वाणो को फुर्ती के साथ काटते जाते और समय पाकर बीच–बीच मे प्रहार भी करते जाते थे। उनके शत्रुओ को उनक रथ का अन्दाज ही नही वैठता था कि वह कव किधर आता–जाता हे? सव राजा भीष्म की वीरता ओर चतुरता देखकर विस्मित हा गए। कहने लग–वुढापे म इसका यह हाल ह तो जवानी मे यह कितना वीर रहा होगा? कई आपस म कहने लगे–इस वूढ को पराजित करना ब्रह्मचर्य की शक्ति का पराजित करना

है और ऐसा करना सम्भव नही जान पडता। इस ब्रह्मचारी ने [illegible] भूल की है। इसमे ब्रह्मचर्य का अदभुत बल है। हम [illegible] सामना नही कर सकते।

इस प्रकार विचार कर कई राजा युद्ध से विरत हो गए परन्तु [illegible] शाल्व भीष्म से भिड पडा। उसका कहना था कि हमारे देखते-देखते कन्याओ का अपहरण होना हमारा घोर अपमान हे। काशीराज की अम्बा नामक कन्या के साथ शाल्व का मानसिक सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। इस कारण भी वह शान्त नही रह सकता था। वह भीष्म के साथ युद्ध करने लगा। दोनो का घमासान सग्राम हुआ मानो हथिनी के लिए दो हाथी आपस मे युद्ध कर रहे हो। अन्त मे शाल्व पराजित हो गया। वह निराश होकर अपनी राजधानी को चला गया। अन्य राजागण भी काशीराज की कन्याओ के बदले निराशा और लज्जा का वरण करके अपने-अपने ठिकाने लगे।

युद्ध की भयकरता और अपने भविष्य के अनिश्चिय के कारण कन्याए काप रही थीं। भीष्म ने उन्हे सान्त्वना देते हुए कहा-पुत्रियो! घबराओ मत। मैं तुम्हे हस्तिनापुर ले जाऊगा और वहा के राजा विचित्रवीर्य के साथ तुम्हारा विवाह होगा।

पहले तो उन्होने सोचा-न जाने विचित्रवीर्य कैसा राजा है? फिर यह सोचकर कि कुरुकुल का राजा है तो अच्छा ही होगा, सन्तोष धारण किया।

हस्तिनापुर के लिए रवाना होते समय भीष्म ने काशीराज से कहा-तुमने कुरुकुल का जो अपमान किया था, उसका सूद समेत बदला मिल गया या नहीं? हिम्मत हो तो सामने आओ और अपनी कन्याओ को छुडाओ, अन्यथा मै विजय का शख बजाता हू।

काशीराज भीष्म की भयकरता देख चुका था। वह इस चुनौती से लज्जित हो गया। नीचा सिर करके उसने उत्तर दिया-"मुझ से यह भूल हो गई।

भीष्म ने कहा-जो हुआ सो हुआ। अब आप विचित्रवीर्य के स्वसुर है और इस कारण मेरे लिए भी पिता के समान पूजनीय हैं।

तीनो कन्याओ को लेकर विजय-शख बजाते हुए भीष्म काशी से हस्तिनापुर आ गये।

जैन कथा के अनुसार तीनो कन्याए विचित्रवीर्य को ब्याही गई थी। परन्तु महाभारत के अनुसार अम्बा नाम की कन्या का विचित्रवीर्य के साथ विवाह नही हुआ था। अम्बा का विवाह विचित्रवीर्य के साथ क्यो नही हुआ

इस सम्बन्ध मे महाभारत मे एक उज्ज्वल कथा हे। भले ही वह कथा जेन ग्रन्थो मे अथवा अन्य ग्रन्थो मे नही हे लेकिन कथा तो भावदर्शन के लिए होती है अतएव जैन ग्रन्थो मे अथवा अन्य ग्रन्थो मे न होने पर भी भावदर्शन के लिए उसकी कल्पना की जा सकती हे। कथा तो किसी भाव को सिद्ध करने या उसका सक्रिय रूप दिखलाने का ढाचा मात्र हे। कथा मे से असली तत्त्व की बात खोज लेनी चाहिए।

भीष्मजी तीनो कन्याओ को तो ले ही आए थे फिर भी उन्होने विवाह के सम्बन्ध मे कन्याओ की स्वीकृति ले–लेना अपना कर्त्तव्य समझा। उन्होने कन्याओ से कहा–"पुत्रियो! मुझे इस प्रकार तुम्हे लाने की आवश्यकता नही थी। लेकिन अपने कुल के गोरव की रक्षा के लिए मुझे इस झमेले मे पडना पडा। यद्यपि मैं विचित्रवीर्य के लिए तुम्हे जीत कर लाया हू, फिर भी तुम्हारी स्वतन्त्रता पर आच नही आने देना चाहता। अतएव मैं तुमसे पूछता हू–क्या तुम विचित्रवीर्य के साथ विवाह करना चाहती हो? सकोच और भय का त्याग करके अपने मन की बात स्पष्ट कह देना।

क्या भीष्म का इस प्रकार प्रश्न करना उनके लिए अपमानजनक है? आप तो शायद अपनी निज की लडकी से भी यह प्रश्न करना अपना अपमान समझे। मगर भीष्म नीतिमान् थे। नीतिकारो का कथन हे–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

अर्थात्–जहा स्त्रियो की पूजा होती है वहा देवता क्रीडा करते हें।

यहा स्त्रियो की पूजा का अर्थ उन्हे फूल फल या अक्षत चढाना नही है। किन्तु स्त्री का अपमान न करना–सम्मान करना ही उनकी पूजा हे। साधुओ की सेवा करने का अर्थ भी यह नहीं कि उनके चरणो मे फूल चढाए जाए। किन्तु मर्यादा के अनुसार साधुओ का सम्मान करना ही साधुआ की सेवा हे। तात्पर्य यह हे कि जहा स्त्रियो की प्रतिष्ठा होती हे उनका सम्मान होता हे वहा दिव्य शक्ति से सम्पन्न पुरुपो का जन्म होता हे। अपमानित लाछित ओर दासी समझी जाने वाली स्त्रियो की सन्तान उन्ही जेसी होगी।

यद्यपि भीष्म स्त्रीत्यागी थे फिर भी उनके हृदय म स्त्रीजाति क प्रति आदर का भाव था। वह धर्मात्मा ओर नीतिज्ञ थे। इसी कारण उन्हाने लाई हुई कन्याओ से विवाह के विषय म प्रश्न किया ओर उनकी सम्मति मागी।

भीष्म के प्रश्न के उत्तर मे अविका ओर अवालिका न कहा– 'हम स्त्री हें। आखिर हमे अपना हृदय किसी को सापना ही ह। हमारा साभाग्य ह कि कुरुवशी राजा हमारे पति हाग आर आप जेस परम त्यागी जठ की सवा करन का अवसर मिलेगा।

इस पकार दोनो ने विचित्रवीर्य का पति बनाना स्वीकार कर लिया परन्तु अम्बा के हृदय मे दूसरे ही भाव उठ रहे थे। वह नीचा सिर किए चुपचाप बैठी रही। तब भीष्म ने उससे पूछा—राजकुमारी! तुम्हारी क्या इच्छा है?

अम्बा ने कहा—जिस पकार आप अपने धर्म का पालन करना चाहते हैं उसी पकार मैं भी अपने धर्म का पालन करना चाहती हू।

भीष्म—ठीक है। तुम अपना धर्म पालने के लिए स्वतन्त्र हो पर यह तो बतलाओ कि किस पकार अपने धर्म का पालन करना चाहती हो क्या चाहती हो?

अम्बा—राजा शाल्व ने मेरे पिता से मेरी याचना की थी और पिता ने उन्हे स्वयवर के समय का आश्वासन दिया था। वे स्वयवर मे आये ओर मने उन्हे देखकर मन ही मन वरण कर लिया। मेरा विवाह उन्ही के साथ होता पर आप मुझे पकड लाये। युद्ध की उस गडबड मे मैं कुछ कह न सकी और भय की मारी आपके साथ चली आई। जब आप धर्म की रक्षा चाहते हैं तो मैं यह बात कैसे छिपाती? मैं हृदय से उन्हे अपना चुकी हू। यद्यपि राजा विचित्रवीर्य सब पकार से सुयोग्य हैं और कुरुकुल भी श्रेष्ठ है तथापि मैं अपने हृदय को कैसे ठगू? अतएव मैं हाथ जोडकर राजा शाल्व के पास जाने की स्वीकृति चाहती हू। आपने मुझे पुत्री कहा है। मेरे धर्म की रक्षा का उत्तरदायित्व आपके ऊपर आ गया है। इस जन्म मे उन्हे छोडकर मेरा दूसरा पति नही हो सकता। आप सच्चे धर्मनिष्ठ क्षत्रिय हैं, इसलिए मेरे धर्म की रक्षा कीजिए।

यदि भीष्म भी आज के लोगो की तरह होते तो अम्बा की बात कौन सुनता? जिस अम्बा को भीष्म इतनी कठिनाई से लाये विशेषत जिसके लिए ही शाल्व ने युद्ध किया था। और भीष्म के प्राण सकट मे पड गए थे क्या उसी जीती हुई अम्बा को भीष्म शाल्व के पास चली जाने दे? भीष्म कह सकते थे—मैं तुम्हे युद्ध मे जीतकर लाया हू ओर तुम्हे विचित्रवीर्य के साथ विवाह करना पडेगा। पर भीष्म अन्याय करने वाले नही थे। अम्बा की स्पष्ट उक्ति सुनकर उन्हे प्रसन्नता हुई। उन्होने सान्त्वना देते हुए कहा— 'राजकुमारी! मैं तुम्हारे धर्मपालन मे बाधा नही डालना चाहता। तुम प्रेम—बन्धन मे बधी हो मैं उसे तोडना नहीं चाहता। अगर मैं किसी वृक्ष को जल न दे सकू तो उसे काटने का भी मेरा काम नही है। मैं सतप्त को शाति पहुचाना चाहता हू। दु खी का दु ख मिटाना चाहता हू ओर परोपकार मे ही अपना जीवन लगाना चाहता हू'

भीष्म विचारने लगे— 'जिसे लोग अबला कहते हैं उसमे भी धर्म—पालन की पबल इच्छा रहती है। यद्यपि विचित्रवीर्य की तुलना मे शाल्व

सोन्दर्य की दृष्टि से भी तुच्छ है और बल–वेभव के लिहाज से भी परन्तु इस कन्या को धन्य है। जो इन कारणो से अपने हृदय को नही ठगना चाहती। इसके हृदय का अपमान करना धर्म का अपमान करना है। जब मैंने शिवदास धीवर का भी अपमान नही किया तो यह तो राजकन्या है और कहती है कि मै तो अपना हृदय शाल्व को समर्पित कर चुकी हू। ऐसी दशा मे इसके प्रेम और प्रण को भग करके मैं उस धर्म की जड कदापि नहीं काट सकता जिसे मैं कल्पवृक्ष के समान समझता हू।"

आज कन्या का विवाह वर के साथ किया जाता है या कचन के साथ? बारह वर्ष की कन्या किसी अयोग्य और विचारशून्य बूढे के गले मढ दी जाती है, सो क्या कन्या की स्वीकृति से? क्या यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि कन्या उस बूढे को पसन्द करती है या नही? कुछ लोगो का विचार तो यहा तक सुना जाता है कि लडकी विधवा हो जाएगी तो क्या बुरा है–ब्रह्मचर्य पालेगी? यह विचार नीति और धर्म से कितना गिरा हुआ है। बलात् सयम पलवाना और किसी के अधिकार को लूट लेना श्रावक का कर्त्तव्य नही है। जो स्वय तो बुढापे मे भी नयी दुलहिन लाने से नही चूकता और लडकी को विधवा बनाकर ब्रह्मचर्य पलवाना चाहता है। उसके लिए क्या कहा जाय? यह धर्म नही धर्म की विडम्बना है। स्वार्थी लोग ऐसे कृत्य करके धर्म को लजाते हैं।

इधर भीष्म को देखो। वे दूसरे की कन्याए हरण करके लाये हैं। फिर भी विवाह के सम्बन्ध मे उनकी स्वीकृति ले रहे हे। वे सोचते हैं कि किसी को दु खी करना धर्म नही है।

भीष्म ने अम्बा से कहा–बेटी तुम ठीक कहती हो। यद्यपि शाल्व के साथ मेरा युद्ध हो चुका हे पर वह उसी समय के लिए था। शाल्व के पास तुम्हे भेज देने मे मुझे कोई आपत्ति नही हे।

भीष्म ने सारथी को बुलाकर कहा– 'राजकुमारी अम्बा को शाल्व क पास सुरक्षित पहुचा दो ओर लोटकर मुझे सूचना देना। अगर शाल्व कुछ कहे तो उसे चुपचाप सुन लेना। दूसरे को अपना हृदय दे चुकने वाली कन्या का हाथ लगाने का मुझे कोई अधिकार नही था।

शिवाजी के सेनिक किसी सरदार की सुन्दर स्त्री को उसके पास ले आये। सेनिका ने समझा–स्त्री सुन्दर हे इसे पाकर हमार स्वामी प्रसन्न होग आर हमे अच्छा इनाम मिलेगा। उस समय शिवाजी किसी पहाडी गुफा मे थ ओर युद्ध से छुटी पाकर अपने इष्ट का ध्यान कर रह थ। सेनिक उस स्त्री

को लेकर गुफा की ओर ही गये। शिवाजी जब गुफा [illegible]
स्त्री को देखते ही सैनिको से पूछा–इस माता का [illegible]
से कापती हुई उस स्त्री से उन्होने कहा–आप यहा [illegible]

स्त्री अभी तक काप रही थी। भय के मारे [illegible]
पर शिवाजी के मुख से 'माता' सबोधन सुनकर वह [illegible]
महाराज जब मेरे पुत्र बन गए हैं तो अब भय की क्या बात [illegible]

शिवाजी ने अन्त मे कहा–पालकी मे बिठलाकर इन [illegible]
पास पहुचा आओ। कदाचित् इनके पति कोई बात [illegible]
क्योकि तुमने अपराध किया है। ध्यान रखना इस माता को किसी [illegible]
कष्ट न हो।

भीष्म ने अपने सारथी से भी यही कहा। भीष्म के [illegible]
और वहा उपस्थित दूसरे लोगो को अत्यन्त हर्ष हुआ। सबने भीष्म की [illegible]
की और मन मे उन्हे प्रणाम किया।

अम्बा शाल्व से सिर नीचा किये कहने लगी– मै [illegible]
वरण कर चुकी हू, अत आप मुझे स्वीकार करने का अनुग्रह कीजिए। मै
जबर्दस्ती पकडी गई थी और रथ मे मूर्छित हो गई थी। इस कारण उस
समय कुछ बोल न सकी। मेरा अपराध क्षमा करिये और मुझे स्वीकार
कीजिए।

शाल्व अकडने लगा। बोला–भीष्म द्वारा त्यागी हुई स्त्री को कैसे
स्वीकार कर सकता हूं? ससार मुझे क्या कहेगा? जिसका हाथ पकडकर
भीष्म ने रथ मे बिठला लिया और जिसे अपने घर ले गया, वह स्त्री मेरे लिए
त्याज्य है। भीष्म सरीखे बहादुर को छोडकर तुम यहा आई ही क्यो?

अम्बा–मैं आपका वरण पहले ही कर चुकी थी। इसलिए भीष्म को
पति नही बना सकती थी। इसके अतिरिक्त क्या आपको विदित नही है कि
भीष्म ब्रह्मचारी हैं।

शाल्व–ब्रह्मचारी रहा होगा तब रहा होगा, अब वह ब्रह्मचारी नही है।
स्वयवर मे आया और ब्रह्मचर्य नष्ट हुआ। फिर भले ही वह ब्रह्मचारी हो तुम
मेरे काम की नही हो।

अम्बा–आप भूलकर रहे है महाराज! भीष्म ने अपनी स्त्री बनाने के
लिए हमारा हरण नही किया था किन्तु कुल का अपमान हटाने के लिए
अपनी शक्ति दिखाने के लिए और अपने भाई का विवाह करने के लिए ही
हम तीनो बहिनो का अपहरण किया था।

शाल्व–अपने लिए न सही, भाई के लिए ही सही तुम भीष्म की नही तो विचित्रवीर्य की हो चुकी। उसकी परित्यक्ता स्त्री को मैं अपनी पत्नी किस प्रकार बना सकता हू? मे ऐसे नीच कुल का नहीं हू।

अम्बा–अबला को इस प्रकार दुत्कारना उचित नहीं है। यद्यपि मेरा यह अपराध है कि मैं भीष्म के रथ मे बैठ गई और मैंने प्राण नही त्याग दिये लेकिन हस्तिनापुर पहुचकर भी मैंने आपके सिवाय दूसरे पुरुष का चिन्तन नहीं किया है। यद्यपि विचित्रवीर्य का वैभव आपसे कम नहीं है, पर मे आपके सिवाय दूसरे को नही चाहती थी। मैं आप पर ही अनुरक्त थी। इसलिए आप मुझे अपने यही स्थान दे। मेरा तिरस्कार न करे। मैं हस्तिनापुर से चली आई हू। अब वहा लौटकर कैसे जा सकती हू? और पिता के घर जाने का मुझे अधिकार ही क्या है? आप मुझे जिस तरह रखेगे रहूगी। जो देगे वही खाऊगी, पर मेरा तिरस्कार न कीजिए।

शाल्व–तुम्हारा कहना अनुचित नही है, देवी! और यहा खाने–पीने की मेरे यहा कमी भी नहीं है। लेकिन तुम्हे यहा रखने से मेरा अपमान होगा। मैं अपमान नहीं सह सकता हू और इसी कारण तुम्हे रखने मे असमर्थ हू।

शाल्व का उत्तर सुनकर अम्बा घबरा उठी। वह सोचने लगी–अब मैं क्या करू ओर कहा जाऊ? मेरे लिए अब कोई उपाय नही है। केवल एक ही चारा है कि मैं क्षत्रियो का मद उतारने वाले परशुराम की शरण मे जाऊ और उनसे प्रार्थना करू। वे ही किसी को समझाएगे। उनमे भीष्म को भी समझाने की शक्ति है और शाल्व को भी वे समझा सकते हैं।

अन्त मे अम्बा परशुराम के पास पहुची। उसने सारा वृत्तान्त सुनाया। परशुराम ने कहा–शाल्व अयोग्य और मिथ्याभिमानी है। वह मेरे योग्य वीर नही हे। मे उससे तो कुछ नही कह सकता लेकिन तेरा विवाह भीष्म से कराऊगा।

अम्वा–लेकिन भीष्म तो बालब्रह्मचारी हैं।

परशुराम–इसके लिए चिन्ता मत कर। तुझे हाथ लगाते ही भीष्म का ब्रह्मचर्य चला गया। उसमे ऐसी शक्ति नही कि मेरे कहने पर भी तेरे साथ विवाह न करे। कौन ऐसा क्षत्रिय हे जो मेरे आदेश की अवज्ञा करने का साहस करे?

परशुराम ने अम्वा का पक्ष लेकर भीष्म के साथ उसका विवाह कराने का प्रण किया और भीष्म ब्रह्मचारी रहने का प्रण कर चुके है। अब देखना चाहिए किसका प्रण पूरा होता है? मगर इस कथा को हम यही समाप्त कर देते हैं।

पाण्डव चरित

द्वितीय–भाग,

1 गाधारी का गभीर त्याग

जैन कथा के अनुसार भीष्म द्वारा हरण की गई तीनो कन्याओ का विवाह विचित्रवीर्य के साथ ही हुआ था। उन तीनो स्त्रियो से धृतराष्ट्र पान्डु और विदुर का जन्म हुआ। विचित्रवीर्य तीनो रानियो के भोग मे ऐसे फस गए कि अतिभोग के कारण उन्हे क्षय रोग हो गया और अन्त मे इसी रोग के कारण उनका देहान्त हो गया।

जो पुरुष सिर्फ भोग के लिए विवाह करता है उसकी ऐसी ही गति होती है। शास्त्रो मे इसीलिए पत्नी को धर्म– सहायिका' कहा है। अगर वह कर्म–सहायिका ही होती तो उसे धर्मसहायिका कहने की क्या आवश्यकता थी? जैसे दवा रोग मिटाने को खाई जाती है उसी प्रकार विवाह धर्म की सहायता करने और कामवासना को सयत करने के लिए किया जाता है। इसके विपरीत जो पत्नी को कामक्रीडा की सामग्री समझता है उसकी गति विचित्रवीर्य के समान होती है।

अतिभोग के कारण विचित्रवीर्य की मृत्यु हो गई और राज्य का भार फिर भीष्म के कन्धो पर आ पडा।

जिस वस्तु के प्रति आसक्ति रहती है वह दूर–दूर भागती है और आसक्ति का त्याग कर देने पर वह आप ही आ जाती है। भीष्म ने राज्य का त्याग किया तो पहली बार तो शान्तनु के मरने के बाद जब चित्रागद छोटा था, उन्हे राज्य करना पडा। चित्रागद की मृत्यु के पश्चात जब विचित्रवीर्य छोटा था तब दूसरी बार उन्हे राज्य मिला। अब विचित्रवीर्य के मरण के बाद फिर राज्य उनके चरणो मे आ गिरा। ऐसी स्थिति मे ससार की बडी से बडी वस्तु के लिए भी धर्म से च्युत होना उचित नही हे।

विचित्रवीर्य के लडके पाण्डु का विवाह कुन्ती के साथ हुआ। धृतराष्ट्र अन्धे थे। वह जब युवावस्था मे आया तो भीष्म ने जान लिया कि यह ब्रह्मचर्य पालने मे समर्थ नही हे। ऊपर से ब्रह्मचारी होने का ढोग करना ओर भीतर पोल चलाना ब्रह्मचर्य को बदनाम करना हे। यह सोचकर उन्होने धृतराष्ट्र का विवाह कर देने का विचार किया। उन्हे मालूम हुआ कि गधार देश के महाराज सबल की कन्या गाधारी सभी तरह से योग्य है। भीष्म ने सबल के पास दूत भेजकर कहलाया–भीष्म ने धृतराष्ट्र के लिए आपकी कन्या गाधारी की मगनी की हे।

भीष्म का दूत राजा सबल के पास पहुचा। उसने सबल को प्रणाम किया। परिचय जानकर राजा ने उसका सत्कार किया और पूछा—क्षत्रियो मे सूर्य के समान भीष्म ने क्या आज्ञा दी है?

दूत ने कहा—अपने भाई के लडके धृतराष्ट्र के लिए जो आखो से अधे है आपकी कन्या की याचना की है।

दूत की बात सुनकर महाराज सबल पशोपेश मे पड गए, सोचने लगे—क्या करना चाहिए? क्या अधे को अपनी कन्या दे दू? यह नही हो सकता। भीष्म कितने ही महान् पुरुष क्यो न हो, मैं अपनी कन्या नही दे सकता। साधारण आदमी भी अधे वर को अपनी कन्या नही देता तो मैं राजा होकर कैसे दे सकता हू?

यह सोचकर उन्होने दूत को कहा—अच्छा, अभी विश्राम करो। बाद मे विचार कर उत्तर दूगा। दूत वहा से उठा और अपने डेरे पर चला गया।

दूत के चले जाने के बाद सबल ने अपने लडके शकुनि से पूछा—थोडे दिनो बाद राज्य का सारा भार तुम्हारे सिर आने वाला है। इसलिए तुम बतलाओ कि इस विषय मे क्या करना उचित है?

शकुनि ने कहा—अपने बलाबल का विचार करते हुए गाधारी का विवाह धृतराष्ट्र के साथ कर देना ही उचित है। अपने देश पर विदेशियो और विधर्मियो के आक्रमण होते रहते हैं और देश की रक्षा करने मे कठिनाई होती है। यह सबध होने से कुरुवश अपना शत्रु न बनकर सहायक बनेगा और कुरुवश की धाक से बिना युद्ध ही देश की रक्षा हो जायेगी। यह तो कन्या ही देनी पड रही है अवसर आने पर तो देश की रक्षा के लिए पुत्र का भी रक्त देना पडता है।

सबल—सग्राम मे पुत्र का रक्त देना दूसरी बात है और कन्या के अधिकार को लूटकर देश की रक्षा चाहना दूसरी बात है। राज्य—रक्षा के लोभ मे पडकर कन्या का अधिकार छीन लेना क्या क्षत्रियो के लिए उचित कहा जा सकता है? गाधारी स्वेच्छा से शत्रु के साथ युद्ध करके अपना रक्त बहा दे तो हर्ज नही है परन्तु कन्या के अधिकार का बलात अपहरण करके उस पर अन्याय करना उचित नही है। गाधारी की इच्छा के बिना मैं उसका विवाह नही करूगा। ऐसा करने पर चाहे राज्य ही क्यो न चला जाय। हा! गाधारी स्वेच्छा से अगर अधे—पति की सेवा करना चाहे तो बात दूसरी है। मैं उसे रोकूगा भी नही। लेकिन इच्छा के विरुद्ध मे अधे के साथ उसका विवाह नही कर सकता।

कुमार शकुनि का पक्ष गिर गया। सभा मे उपस्थित सभी लोगो ने राजा के विचार का समर्थन किया और कहा—आप राजा होकर भी अगर कन्या के अधिकार को लूट लेगे तो दूसरे लोग आपके चरित का न जाने किस प्रकार दुरुपयोग करेगे।

राजा कहने लगा—राजकुमारी की सम्मति किस प्रकार ली जाय? क्या मैं स्वय ही पूछ लू? तब पुरोहित ने कहा—पहले मैं पूछ लेता हू। फिर आप भी पूछ ले जिससे बात भलीभाति पुष्ट हो जायेगी। राजा ने पुरोहित की बात स्वीकार कर ली।

गाधारी राजकुमारी थी, युवती थी सुन्दर थी और गुणवती थी। पाण्डव—चरित के अनुसार वह ऐसी सती थी कि किसी के शरीर को देखकर ही वज्र बना सकती थी। ऐसे गाधारी की मगनी अन्धे पुरुष के लिए आई है। इस समय गाधारी का क्या कर्त्तव्य है? अगर पिता सगाई कर देते तो गाधारी के सामने विचारने के लिए कोई समस्या ही न रहती, मगर पिता ने इस सबध को स्वीकार करने या न करने का उत्तरदायित्व स्वय उसी पर छोड दिया है। अब गाधारी को ही अपने भविष्य का निर्णय करना है। देखना चाहिए, कुमारी गाधारी क्या निर्णय करती है?

जब राजसभा मे पूर्वोक्त निर्णय हो गया तो राजसभा मे रहने वाली दासी यह सब सुनकर गाधारी के पास दौडी आई। उस समय गाधारी अपनी सखियो के साथ महल के एक कमरे मे बैठी हास्य—विनोद कर रही थी।

दासी दौडी हुई वहा आ पहुची। उसे उदास ओर घबराई देखकर गाधारी ने कारण पूछा। कहा—क्यो आज क्या समाचार हे? उदास क्यो हे? दासी—गजब हुआ राजकुमारी!

गाधारी— क्या गजब हुआ? पिता और भाई तो सकुशल हैं? दासी—और सब के लिए तो कुशल—मगल है आप के लिए ही अनर्थ हुआ हे।

गाधारी ने मुस्करा कर कहा—देख में तो आनन्द म वैठी हू। मेरे लिए अनर्थ हुआ और मैं मजे मे हू ओर तू घबरा रही हे।

दासी—में एक ऐसी वात सुनकर आई हू कि आपके हितेपी का दु ख हुए विना रह ही नही सकता। आप सुनगी तो आपका भी दु ख हागा।

गाधारी—मुझे विश्वास नही होता कि म अपन सवध म कोई वात सुनकर तेरी तरह घवरा उठूगी। मं अच्छी तरह जानती हू कि घवराहट किसी भी मुसीवत की दवा नही हे। वह स्वय एक मुसीवत ह ओर मुसीवत वढान वाली हे। खेर वतला ता सही वात क्या ह?

दासी—कुरुवशी राजा शान्तनु के पौत्र और विचित्रवीर्य के अधे पुत्र धृतराष्ट्र के लिए तुम्हारी याचना करने के लिए भीष्म ने दूत भेजा है। इस विषय मे राजसभा मे गरमागरम बातचीत हुई है।

गाधारी—यह तो साधारण बात है। जिसके यहा जो चीज होती है मागने वाले आते ही है। अच्छा आगे क्या हुआ सो बतला।

दासी—महाराज ने कहा कि मैं अधे के साथ गाधारी का विवाह नही करूगा। राजकुमार ने कहा कि अपना बल बढाने के लिए राज्य की रक्षा करने के लिए तथा राज्य पर आये सकट को टालने के लिए धृतराष्ट्र के साथ गाधारी का विवाह कर देना चाहिए।

गाधारी—फिर? विवाह निश्चित हो गया?

दासी—नही अभी कोई निश्चित नही हुआ है। इससे मैं आपको सूचना देने आई हू। राजकुमारी चेत जाओ। आपकी रक्षा आपके हाथ मे है। महाराज ने आपकी इच्छा पर ही निर्णय छोड दिया है। पुरोहित आपकी सम्मति जानने आएगे। अगर जन्म भर के दु ख से बचना चाहे तो किसी के कहने मे मत आना। दिल की बात साफ—साफ कह देना। सकोच मे पडी तो मुसीबत मे पडी।

इसी बीच मे मदनरेखा नामक सखी ने कहा—बडी सयानी बन रही है तू, जो राजकुमारी को यह उपदेश दे रही है। क्या यह इतना भी नही समझती कि अधा पति जिदगी भर की मुसीबत है? जब राजकुमारी को स्वय निर्णय करना है तो घबराहट की बात ही क्या रही? जो बात अबोध कन्या भी समझती है वह क्या राजकुमारी नही समझेगी?

चित्रलेखा नामक सखी गौर से राजकुमारी के चेहरे की ओर देख रही थी। चेहरे पर कुछ भी मनोभाव न पाकर वह बोली—सखी आप किस विचार मे हैं? यह तो नही सोच रही हो कि पति अन्धा हो तो भले रहे कुरुवश की राजरानी बनने का गौरव तो मिलेगा? इस लोभ मे मत पड जाना। राजरानी बनना तो आपका जन्मसिद्ध अधिकार है ही। जहा जाओगी, राजरानी ही बनोगी। लेकिन धृतराष्ट्र जन्माध है तुम लोभान्ध हो जाओगी तो जोडी अच्छी बनेगी। पर बहिन जान—बूझकर कोई अधा नही बन सकता। पहली बार ही ऐसा दो—टूक जवाब देना कि पुरोहितजी पुरोहिताई करना भूल जाए और उलट परो भाग खडे हो।

अपनी सखियो की सम्मति सुनकर और यह समझकर कि इनकी बुद्धि एव विचारशक्ति इतनी ही उथली है गाधारी थोडी मुस्कराई। उसने

कहा—सखियो तुम मेरी भलाई सोचकर ही सम्मति दे रही हो इसमे कोई सन्देह नही। पर क्या तुम्हे मालूम है कि मेरा जन्म किस उद्देश्य के लिए हुआ है?

एक सखी ने उत्तर दिया—बचपन से साथ रहती हू तो जानती क्यो नही? आपका जन्म इसलिए हुआ है कि आप किसी सुन्दर ओर शूरवीर राजा की अर्धांगिनी बने, राजकुमार पुत्र को जन्म दे राजकीय सुख भोगे और राजमाता का गौरव पावे।

गाधारी—सखी, यह सब तो जीवन मे साधारणतया होता ही है पर जीवन का उद्देश्य यह नही है। तुम इतना ही समझती हो इसमे आगे की नहीं सोचती। मैं सोचती हू कि मेरा जन्म जगत् का कोई कल्याणकारी कार्य करने के लिए हुआ है। यह जीवन बिजली की चमक के समान क्षणभगुर है—कोन जानता है, कब है और कब नही? अतएव इसके सहारे कोई विशिष्ट कार्य कर लेना चाहिए जिससे दूसरो का कल्याण हो।

सखी—तो क्या आप अभी से वैरागिन बनेगी? सयम ग्रहण करेगी?

गाधारी—सयम और वैराग्य का उपहास मत करो। जिसमे सयम धारण करने का सामर्थ्य हो और जो सयम ग्रहण कर ले वह तो सदा वन्दनीय है। अभी मुझ मे इतनी शक्ति नही है। मेरी अन्तरात्मा अभी सयम लेने की साक्षी नही देती। अभी मुझमे पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की क्षमता नही जान पडती।

चित्रलेखा—जब ब्रह्मचर्य नही पलता है और विवाह करना ही हे तो क्या सूझता पति नही मिलेगा? अधे पति को वरण करने की क्या आवश्यकता हे?

गाधारी—मेरा विवाह भोग के लिए ही नही धर्म के लिए होगा। मे पतिसेवा के मार्ग से परमात्मा के समीप पहुचना चाहती हू।

मदन—पतिव्रतधर्म का पालन करना तो उचित ही हे। आप दुराचार नही करेगी, यह भी हमे मालूम हे। पर अधे को पति वनाने से क्या लाभ हे? आपका यह सोन्दर्य और शृगार निरर्थक नही हो जायेगा?

गाधारी—सखी तुम वास्तविक वात तक नहीं पहुचती। शृगार पतिरजन के लिए होता हे लेकिन मेरी माग अधे पति क लिए आई है। अतएव मरा शृगार पति के लिए नही परमेश्वर क लिए होगा। शृगार का अर्थ शरीर का सजाना ही नही हे। वाह्य शृगार पति—रजन क लिए किया जाता ह लकिन मुझे ऐसा सिगार करने की आवश्यकता ही नही रहगी। असली की कमी हान पर ही नकली चीज का आश्रय लिया जाता ह। सेवा म कमी हान पर सिगार

का सहारा लिया जाता है लेकिन मेरा सिगार पतिसेवा ही होगा। ऐसा करके ही मै आत्मसन्तोष पाऊगी और पत्नी का कर्त्तव्य स्त्रियो को समझाऊगी। अतएव पति अधा है या सूझता इस बात की मुझे कोई चिन्ता नही। पुरोहित के आने पर मै विवाह की स्वीकृति दे दूगी। जगत को स्त्री का वास्तविक कर्त्तव्य बतलाने का सुअवसर मुझे प्राप्त होगा।

गाधारी का विचार जानकर उसकी सखिया चक्कर मे पड गई। वे आपस मे कहने लगी– राजकुमारी को क्या सूझा है? वह अधे के साथ विवाह करने को तैयार हो रही है यह बडा अनर्थ होगा।

इसी समय राजपुरोहित आ पहुचे। गाधारी ने पुरोहित का यथायोग्य सत्कार किया और कहा–आज बडे भाग्य हैं कि हमारे कुल को मार्ग बतलाने वाले कुलपुरोहित पधारे हैं। आज्ञा कीजिए कैसे पधारने की कृपा की?

गाधारी की शिष्टता और विनम्रता देख पुरोहित गहरे विचार मे पड गया। सोचने लगा–यह सुकुमार फूल क्या अन्धे देवता पर चढाने के योग्य है? कैसे इसके सामने प्रस्ताव किया जाय? फिर भी हृदय कठिन करके पुरोहित ने कहा–राजकुमारी! आज एक विशेष कार्य से आया हू। तुम्हारी सम्मति लेना आवश्यक है।

गाधारी–कहिए न सकोच क्यो कर रहे हैं? ऐसी क्या बात है?

पुरोहितजी–अन्धे धृतराष्ट्र के लिए आपकी सगाई आई है। इस सबध मे अन्तिम निर्णय का भार आप पर छोड दिया गया है। महाराज ने आपकी सम्मति लेने मुझे भेजा है। आप क्या उत्तर देती हैं?

पुरोहितजी की बात सुनकर गाधारी कुछ मुस्कराने लगी पर बोली नही। चित्रलेखा ने कहा–पुरोहितजी! राजसभा की सब बाते राजकुमारी सुन चुकी है। इन्होने अन्धे धृतराष्ट्र को पति बनाना स्वीकार कर लिया है। आप वृद्ध है इसलिए कहना नही चाहती।

पुरोहित को आश्चर्य हुआ। उसने कहा–आर्य–जाति मे विवाह जीवन भर का सौदा माना जाता है। जीवन भर का सुख–दु ख विवाह के पतले सूत्र पर ही अवलम्बित है। विवाह शारीरिक ही नही वरन मानसिक सबध भी है और मानसिक सबध की यथार्थता तथा घनिष्ठता मे ही विवाह की पवित्रता और उज्ज्वलता है। इस तथ्य पर ध्यान रखते हुए इस विषय मे राजकुमारी को मै पुन विचार करने के लिए कहता हू। तुम सब भी उन्हे सम्मति दे सकती हो।

गाधारी भली–भाति जानती थी कि अन्धे के साथ मुझे जीवन भर का सबध जोडना है। उसे अन्धे के साथ विवाह करने से इन्कार कर देने की स्वाधीनता थी। सखियो ने उसे समझाने का प्रयत्न भी किया। गाधारी युवती है ओर सासारिक आमोद–प्रमोद की भावनाए इस उम्र मे सहज ही लहराती है। लेकिन गाधारी मानो जन्म की योगिनी है। भोगोपभोग की आकाक्षा उसके मन मे उदित ही नही हुई। उसने सोचा–दुष्टो द्वारा पिता सदा सताये जाते हैं ओर इस कारण पिताजी की शक्ति क्षीण हो रही है। यदि मैं उनके लिए ओषध रूप बन सकू तो क्या हर्ज है? मुझे इससे अधिक और क्या चाहिए? यद्यपि इस सबध के कारण पिताजी को लाभ है फिर भी उन्होने इसके निर्णय का भार मेरे ऊपर रखा है–यह पिताजी की कृपा है।

गाधारी को उदारता की यह शिक्षा कहा मिली थी? किसने उसे आत्मोत्सर्ग का यह सुनहरा पाठ सिखाया था? अपने पिता और भ्राता की भलाई के लिए योवन की उन्मादभरी तरगो के बीच चट्टान की भाति स्थिर रहने की, अपने स्वर्णिम सपनो के हरे–भरे उद्यान को अपने हाथो उखाड फैंकने की अपनी कोमल कल्पनाओ का बाजार लुटा देने की और सर्वसाधारण के माने हुए सासारिक सुखो को शून्य मे परिणत कर देने की सुरक्षा कोन जाने गाधारी ने कहा पाई थी? आज का महिला–समाज इस त्याग के महत्व को समझ नही सकता। जहा व्यक्तिगत ओर वर्गगत स्वार्थो के लिए सघर्ष छिडे रहते हैं, उस दुनिया को क्या पता है कि गाधारी के त्याग का मूल्य क्या है? आजकल की लडकिया भले ही बडे–बडे पोथे पढ सकती हो पर पोथे पढ लेना ही क्या सुशिक्षा है? जो शिक्षा सुसस्कारी नही उत्पन्न करती उसे सुशिक्षा नही कह सकते। आज की शिक्षाप्रणाली मे मस्तिष्क क विकास की ओर ध्यान दिया जाता है हृदय को विकसित करने की ओर कोई लक्ष्य नही दिया जाता। यह एक ऐसी त्रुटि है जिसके कारण जगत स्वार्थ–लोलुपता का अखाडा बन गया है।

गाधारी ने अपनी सखियो से कहा था–मे भाग के लिए नही जन्मी हू। मेरे जीवन का उद्देश्य सेवा करना है। अन्धा पति पान स मर सेवाधर्म की अधिक वृद्धि होगी। अतएव इस सबध को स्वीकार कर लन स सभी तरह लाभ ही लाभ है। पिताजी का लाभ हे भाई का सकट कम होता है मुझे सेवा का अवसर मिलता ह आर आखिर वह (धृतराष्ट्र) भी राजपुत्र है। उनका भी तो ख्याल किया जाना चाहिए। कोन जाने मुझे सेवा का अवसर मिलना हो आर इसलिये व अन्धे हुए हो?

मनुष्य बीमार होता है अपनी करनी से लेकिन सेवाभावी डॉक्टर तो यही कहेगा कि मुझे अपनी विद्या पकट करने का अवसर मिला है। इसी तरह गाधारी कहती है—क्या ठीक है जो मुझे सेवा का अवसर देने के लिए ही राजकुमार अन्धे हुए हो?

पुरोहित ने कहा— राजकुमारी अभी समय है। इस समय के निर्णय का पभाव जीवनव्यापी होगा। आप सोलह सिगार सीखी है परन्तु अन्धे पति के साथ विवाह हो जाने पर आप सोलह सिगार किसे बतलाओगी? आपके सिगार एव सौन्दर्य का अन्धे पति के आगे कोई मूल्य न होगा। इसलिए कहता हू कि नि सकोच भाव से सोच—समझकर निर्णय करो।

गाधारी फिर भी मौन थी। उसे मौन देख उसकी सखियो ने कहा—यह सब बाते इन्होने सोच ली है। सिगार के विषय मे इनकी शिक्षा यह है—

बहिनो री कर लो ऐसा सिगार
जिससे उतरोगी भवजल पार ।बहिनो।।
अंग शुचि कर फिर कर मन्जन वस्त्र अनुपम धारो,
राग—द्वेष को तन मन जल से विद्या बसन सवारो।
केश सवारहु मेल परस्पर, न्याय की माग निकार
धीरज रूपी महावर धारहु, यश हो टीका लिलार।
क्षण न व्यर्थ ऐसे तिल धारो, मिस्सी पर—उपकार,
लाज रूपी कज्जल नयनन मे, ज्ञान अरगजा चार।
आभूषण ये तन मे पहनो, सम सन्तोष विचार,
मेहदी पुष्पकली सो शोभित दान सुभग आचार।
बीडी विनय की रखना मुख मे गध सुसगत धार,
पिया तेरो देखत ही रीझै, लखि सोलह सिगार।

गाधारी की सखिया पुरोहित से कहती है—

राजकुमारी ने हमे सिखलाया है कि स्त्रिया स्वभावत शृगारप्रिय होती हैं, लेकिन जो स्त्री ऊपरी सिगार ही करती है ओर भीतरी सिगार नहीं करती, उसके और वेश्या के सिगार मे क्या अन्तर है? यह बात नही कि कुलागनाए ऊपरी सिगार करती ही नही लेकिन उनके ऊपरी सिगार का सबध भीतरी सिगार के साथ होता है। कदाचित उनका ऊपरी सिगार छिन भी जाए तो भी वह अपना भाव—सिगार कभी नही छिनने देती।

राजकुमारी कहती है—मै अन्धे पति की सेवा करके भी यह बतला दूगी कि पति और परमात्मा की उपासना कैसे होती है?

गाधारी के उच्च भावनाओ से भरे विचार सुनकर पुरोहित दग रह गया। उसने गाधारी की सखियो से कहा—राजकुमारी केसे भी उच्च विचारो मे गई हो परन्तु तुम्हारी बुद्धि कहा गई है? तुम तो छोटी हो आखिर तो दासी ही ठहरी न?

महाराज चतुरसिहजी का वनाया हुआ एक भजन है। उन्होने कहा है—

वेना आपा ओछी नी हाँ।
ओछी मत रे कणी कियो, के नीच जात नारी हा
नारी हा तो काई वियो म्हैं, नारा की नारी हा।

स्त्री ओछी है ओर हम वडे हैं, या हम ओछे हैं और स्त्री बडी हे यह हिसाब भूल जाओ। स्त्रियो को हल्की समझोगे तो पुरुप हल्की के जन्मे जाएगे। जब स्त्रिया ओछी हैं, तो पुरुष उनके द्वार पर विवाह करने क्यो जाते हैं? क्या कोई कन्या बारात लेकर वर के घर लग्न करने जाती हे?

दासिया कहने लगी—पुरोहितजी आप हमे ओछी और दासी भले कहिए पर हम दासी है भी तो ऐसे उत्तम विचार वाली राजकुमारी की दासी हें। राजकुमारी सरस्वती का अवतार हे। तो हम उनकी पुजारिने हैं। हम तो इन्ही की मति मानेगी। जो सिगार इनका हे वही हमारा भी हे। जव यह अन्धे पति को स्वेच्छा से स्वीकार करती हें तो हम क्या कहे? हम तो इनकी सेविकाए हें।

महाभारत मे कहा हे कि अन्धा पति मिलने से गाधारी ने अपनी आखो पर पट्टी बाध ली थी। लेकिन यह कल्पना ठीक नही हे क्याकि एसा करने से उनके सेवाव्रत मे कमी आ जाती हे। हा विपयवासना से वचन क लिए अगर कोई आखो पर पट्टी बाधे तो उसे बुरा भी नही कहा जा सकता। लेकिन गाधारी जेसी सती के विपय मे यह कल्पना घटित नही होती। अगर आखो पर पट्टी वाधने का अर्थ यह हो कि वह जगत के सोन्दर्य स विमुख हो गई थी—सान्दर्य क आकर्पण को उसन जीत लिया था ता पट्टी वाधन की कल्पना मानी जा सकती ह।

अन्त मे पुराहित ने कहा—ता राजकुमारी का यही अभिमत ह जा उनकी सखिया कहती ह?

गाधारी—पुराहितजी सखिया अन्यथा क्या कहगी? आप पिताजी का सूचना द सकत ह।

पहले–पहल गाधारी के सामने समस्या उपस्थित हुई कि अन्धे के साथ विवाह करना उचित है या नही? मगर गाधारी शीघ्र ही एक निर्णय पर पहुच गई। अगर आप भी ससार–पक्ष त्याग कर धर्म–पक्ष का विचार करेगे तो अवश्य ही आपका हित होगा। कैसा ही कठिन प्रसग क्यो न हो धर्म का स्मरण करने से कठिनाई दूर हो जाएगी। धर्म और पाप की सक्षिप्त व्याख्या यही है कि स्वार्थत्याग धर्म है और स्वार्थ–साधने की लालसा पाप है।

प्श्न किया जा सकता है–अगर धर्म से सुख ही मिलता है तो राजा चेटक कोणिक से क्यो पराजित हुआ?

इस पश्न मे धर्म को बनियापन की तराजू पर तोलने की चेष्टा की गई है। धर्म महान है। धर्म को बनियापन की तराजू पर तोलने वाले लोग उसी भावना से धर्म का आचरण करते है जिस भावना से बनिया ब्याज सहित पाने की आशा से रकम लगाता है। लोगो से कहा जाय कि तेला करने से खूब लक्ष्मी मिलेगी तो शायद बहुत लोग तेला करने वाले मिल जाए। लेकिन सात्विक भाव से तेला करने वाले विरले ही मिलेगे। इसका एकमात्र कारण धर्म के विषय मे भी बनियापन रखना है। चेटक धर्म करते हुए नही हारा था किन्तु धर्म करने मे जीता था इसलिए उसने धर्म के लिए अपना सर्वस्व लगा दिया था। आज कहा है वैसे राजा जो कबूतर की रक्षा के लिए अपने प्राण देने को तैयार हो जाते थे? कहा जाता है कि मुसलमानो के पैगम्बर मुहम्मद साहब भी फाख्ता के लिए अपने गाल का गोश्त देने को तैयार हुए थे।

राजा चेटक ने प्रबल सग्राम किया था। उसने अपने दस दुहिताओ को एक–एक बाण मे उडा दिया था। कोणिक की सहायत्ता करने के लिए इन्द्र आ गया था और इस कारण व्यवहारत चेटक जीत न सका फिर भी वह नरक का अतिथि नही बना। उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई क्योकि उसके हृदय मे धर्मभावना थी। उसने श्रावकधर्म की मर्यादा का पालन करते हुए युद्ध किया था।

तात्पर्य यह है कि स्वार्थभावना का त्याग करना ही धर्म है। गाधारी ने स्वार्थ त्याग दिया। गाधारी जैसी सती का चरित्र भारत मे ही मिल सकता है दूसरे देश मे मिलना कठिन है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि अमेरिका जैसे सभ्य गिने जाने वाले देश मे 95 प्रतिशत विवाह–सबध टूट जाते है–तलाक हो जाता है। भारतवर्ष मे इस पतन की अवस्था मे यह बात नही है।

गाधारी मे अपनी मातृभूमि के प्रति भी आदर्श प्रेम था। अन्धे पति का वरण करने मे उसका एक उद्देश्य यह भी था कि इससे मेरी मातृभूमि का कष्ट

मिट जाएगा। अपनी मातृभूमि की भलाई के लिए उसने इतना त्याग करना अपना कर्त्तव्य समझा। उसने सोचा–अन्धे धृतराष्ट्र के साथ विवाह कर लेने से मेरा धर्म बढेगा और मेरी मातृभूमि की रक्षा भी होगी तो ऐसा करने मे क्या हर्ज है?

सासारिक दृष्टि से देखा जाय तो अन्धे के साथ विवाह करने मे कितना कष्ट है। अधा पति होने से सिगार व्यर्थ होता है और सिगार की भावना पर विजय प्राप्त करनी पडती है। इस प्रकार से जीवन का ही बलिदान करना पडता है। मगर गाधारी ने प्रसन्नतापूर्वक यह सब स्वीकार कर लिया। गाधारी ने इतना त्याग किया तो क्या आप अपनी मातृभूमि के लिए पापमय वस्त्र भी नही त्याग सकते?

अन्त मे धृतराष्ट्र के साथ गाधारी का विवाह हो गया। गाधारी धृतराष्ट्र की पत्नी बनकर हस्तिनापुर आई।

2 गाधारी और कुन्ती

पाण्डु की दो रानिया थी—कुन्ती और माद्री। धृतराष्ट्र की रानी गाधारी थी। गाधारी जेठानी और कुन्ती तथा माद्री देवरानिया थी।

बसन्त ऋतु की बहार देखते ही बनती थी। ऋतुराज का स्वागत करने के लिए वन ने अत्यन्त सुन्दर रूप धारण किया था। वृक्ष नवीन और कोमल पत्तो से वेष्टित थे। वन मे पकृति का अनुपम सौन्दर्य बिखरा पडा था। भाति—भाति की सुगन्ध फैलाते हुए रग—बिरगे फूल हस रहे थे। कोयल पचम स्वर से मादक सगीत गा रही थी। सारा वातावरण अपूर्वता धारण किये हुए था। हस्तिनापुर के युवक और युवतिया बसन्त का उत्सव मनाने के लिए उद्यानो मे गये थे।

गाधारी कुन्ती और माद्री भी अपनी सखी—सहेलियो के साथ एक सुन्दर वन मे गई। तीनो रानिया भ्रमण की थकावट मिटाने के लिए एक सघन वृक्ष की छाया मे बैठ गई और वन के शीतल, सुगन्धित, मद पवन का सेवन करने लगी।

कुन्ती अपनी जेठानी गाधारी का बहुत आदर करती है। वह गाधारी के त्याग का महत्व भलीभाति समझती है। उपयुक्त अवसर देखकर वह कहने लगी—आज इस दरबार मे एक विषय पर चर्चा होनी चाहिए। मैं उस चर्चा को आरम्भ करती हू।

कुन्ती का यह प्रस्ताव सुनकर सब चुप हो गई ओर यह जानने के लिए उत्सुक हुई कि कुन्ती देवी क्या कहना चाहती है?

कुन्ती ने प्रश्न किया—वास्तव मे कुल बडा है या रूप बडा है अथवा धर्म बडा है?

गाधारी की एक दासी ने कहा—कहने को तो सभी धर्म को बडा कहते है लेकिन अपने जीवन—व्यवहार मे जो धर्म को बडा मानकर चलता है, उसी की वास्तव मे बडाई है। आपने धर्म को बडा मानकर उसे क्रियात्मक रूप भी दिया है। आप यादव कुल मे उत्पन्न महाराज अधकवृष्णि की पुत्री महाराज समुद्रविजय की बहिन और भगवान अरिष्टनेमि की बुआ हैं। इसलिए आप ही धर्म का पालन कर सकती हैं। यद्यपि महाराज पाण्डु को पाण्डु रोग है और रोगी को कोई स्त्री अपना पति नही बनाना चाहती परन्तु आपने भोग को महत्व नही दिया धर्म को ही महत्व दिया। इसी कारण आपने स्वयवर—मण्डप मे अन्य अनेक राजाओ को छोडकर रोगी महाराज पाण्डु के गले मे ही

वरमाला डाली। आपके हृदय मे धर्म न होता और धर्म को आपने बडा न समझा होता तो आप ऐसा क्यो करती? धर्म का पालन करने के लिए कन्या को धर्मनिष्ठ वर ही खोजना चाहिए। महाराज पाण्डु धर्मात्मा हैं इस कारण आपने उन्हे स्वीकार किया है। दूसरे राजाओ मे आपने धर्म नहीं देखा। वे आपको सुगन्धहीन पलाश–पुष्प के समान प्रतीत हुए क्योकि धर्म ही बडा है। हा, धर्म के साथ ही कुल भी अच्छा हो ओर रूप भी हो तो और भी अच्छा है।

गाधारी की दासी की बात सुनकर कुन्ती ने कहा–बडे के सेवक भी बडे होते हैं, यही कारण है कि यह दासी भी बडे ऊचे विचारो की है। लेकिन धर्म के विषय मे मैं बडी नहीं हू, हमारी जेठानीजी बडी हैं। मैंने पाण्डु रोग वाले पति को चुना है मगर इन्हे देखो, जिन्होने नेत्रहीन पति को स्वेच्छा से स्वीकार किया है। यह धर्म का ही प्रताप है। वास्तव मे बडाई इन्ही की है। यह धन्य हैं और कृतपुण्य हैं। प्रत्यक्ष देख लो न, हम कैसा सिगार करके आई हैं और इनका वेष इतना सादा है। आभूषणो मे भी हाथ मे मगल–चूडी और गले मे मगल–हार है। इसके सिवाय शरीर पर कोई आभूषण नही है। स्त्री के लिए क्या यह साधारण त्याग है?

गाधारी मन ही मन कुन्ती की सराहना करने लगी। उसने सोचा–यादवकुल की पुत्री होकर भी यह ऐसा न कहेगी तो फिर कोन कहेगी? इसके विचार इतने ऊचे न होगे तो किसके होगे?

इतने मे गाधारी की सखी कहने लगी–धर्म की गति बहुत सूक्ष्म हे। इसलिए धर्म का पालन करना भी सहज नही हे। त्यागियो के धर्म का पालन करना तो दूर रहा, गृहस्थधर्म के पालन करने मे भी प्राण देने पडते ह। धर्म तलवार की धार के समान है। में आप दोनो के कथन का यह आशय समझी हू कि आप दोनो ही धर्मशीला हे। धर्मी पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा तो स्त्री मात्र की रहती हे लेकिन स्वय धर्मशीला बनने की भावना विरती स्त्री मे ही होती हे और फिर धर्म का आचरण करने वाली तो हजारा–लाखो म भी कोई शायद ही मिल सकती हे। पति कदाचित पापी भी हो लकिन पत्नी अगर अपने धर्म का पालन करती है तो उसका पाला हुआ धर्म ही उसक काम आता हे। पति के पाप से पत्नी को नरक नही मिलता। अतएव हम दूसर का आर न देखकर अपने धर्म का ही पालन करना चाहिए।

कुन्ती ने कहा– तुम जो बात कहती हो वह हमारी जठानीजी म पूरी तरह घटित होती है। मेने तो उनम (पाण्डु मे) धर्म का गुण दखकर ही [illegible]

वरण किया था मगर जेठानीजी तो जेठजी से बिल्कुल ही अपरिचित थी। इन्होने जेठजी को कभी देखा तक नही था। इन्होने सिर्फ अपने धर्म का पालन करने के लिए ही यह सबध स्वीकार किया है।

कुन्ती के कथन का कई स्त्रिया यह अर्थ समझती है कि पति चाहे भूख के मारे मरे या जीए, अपने को सामायिक–पोषा करने से मतलब। लेकिन जिसके हृदय मे ससार के पति इस पकार का वैराग्य होगा वह कुमारी रह कर ही दीक्षा ले लेगी? उसे विवाह करके गृहस्थी का उत्तरदायित्व लेने की क्या आवश्यकता है? पहले विवाह–बधन मे पडकर उत्तरदायित्व लेना और फिर उस उत्तरदायित्व से विधिवत् छुटकारा पाये बिना ही इस प्रकार की निवृत्ति बतलाने का ढोग करना धर्म नही कहा जा सकता। राजा की नौकरी करके काम पडने पर धर्म का बहाना करके घर मे बैठे रहना और काम के बनाव–बिगाड की उपेक्षा करना धर्म को धोखा देना है। वर्णनाग नतुवा श्रावक बेले के तप मे था। चेटक राजा ने उसे युद्ध मे साथ चलने के लिए बुलवाया। तब उसने बेला के बदले तेला किया और युद्धभूमि मे जाने को तैयार हो गया। जो लोग धर्म के अनन्य सेवक होगे वे दूसरे की नौकरी करके अपने सिर पर दूसरा उत्तरदायित्व ही न लेगे।

कुन्ती कहती है– धर्म परतन्त्र नही स्वतन्त्र है। यह बात जेठानीजी ने भलीभाति समझी है। यही कारण है कि इन्होने नेत्रहीन पति का वरण किया है। अतएव इन्ही मे धर्म ज्यादा है। यह कहना तो बहाना मात्र है कि अमुक धर्म नही पालता इसलिए मै भी धर्म नही पालूगा। अगर अमुक आदमी धर्म का पालन करे तो मै भी पालू। सच्चा धर्मप्रेमी ऐसी बात मुह से भी नही निकालेगा। चाहे सारा ससार धर्म का परित्याग कर दे परन्तु स्वतन्त्र धर्म वाला अपना धर्म नही छोडेगा।

कुन्ती ने गाधारी की सखियो से, गाधारी की ओर सकेत करते हुए कहा– धर्म का स्वतत्र रूप से पालन करने वाली आप ही हैं। आप जगत् के स्त्री–समाज के लिए आदरणीया है आदर्श हैं और आपके आचरण से महिला–समाज का गौरव बढा है।

कुन्ती के कथन का माद्री ने भी समर्थन किया। उसने कहा– बहिन कुन्ती ठीक ही कहती है। गाधारी देवी का त्याग सयम और धर्माचरण हम सबके लिए अनुकरणीय है। पति के प्रति कर्त्तव्य–पालन करना ही कठिन होता है पर इन्होने तो कर्त्तव्य–पालन के लिए ही पति बनाया है। कहा तो हमारा यह [illegible]–सिगार और कहा इनकी यह सादगी से भरी वेष–भूषा।

इस जमाने मे गहने वाली ही बडी मानी जाती है। पुरुष–समाज मे भी लगभग यही बात है। लोग अयोग्य होते हुए भी कीमती गहने पहनकर दूसरो की आखो मे धूल झौकना चाहते हैं और अपने को योग्य प्रकट करने का प्रयत्न करते हें। बहुतेरे ऐसे अविवेकी भी मिलेगे जो गहने देखकर ही रीझ जाते है। परन्तु वेश्या का शृगार देखकर उस पर रीझने वाले क्या पागल नहीं हैं? गाधारी को उसके पीहर से गहने न मिले हो या धृतराष्ट्र के यहा गहनो की कमी हो और इसीलिए गाधारी ने गहने न पहने हो ऐसी बात नही है। वह द्रव्य–शृगार की अपेक्षा भाव–शृगार को ही अधिक महत्व देती थी।

गाधारी की सखी कहने लगी–शृगार के विषय मे इनके विचार वास्तविकता–पूर्ण हैं। जब इनकी मगनी आई तो हमने इन्हे समझाया था कि आप चक्षुप्राज्ञ के साथ सबध स्वीकार न करे। नेत्रहीन के साथ विवाह करके क्यो अपना जीवन बिगाडोगी? आपका यह रूप यौवन और शृगार कौन देखेगा? इसके उत्तर मे इन्होने हमे शृगार का असली तत्त्व समझाया था। वह मैं आपको भी बतलाती हू। इतना कहकर उसने गाना आरम्भ किया–

बहिनो री कर लो ऐसा सिगार,
जिससे उतरोगी भवजल पार। बहिनो।।
अग शुचि कर फिर कर मन्जन, वस्त्र अनुपम धारो
राग–द्वेष को तन मन जल से, विद्या बसन सवारो।

इन्होने कहा था–'बहिनो, यह जन्म हमे बाह्य शृगार सजने के लिए नही मिला हे। कल्याण होगा तो भाव–शृगार से ही होगा। स्त्री का पहला शृगार शरीर का मेल उतारना हे। मेल उतारने के बाद स्नान करना ओर फिर वस्त्र धारण करना शृगार माना जाता हे। लेकिन इतने मे ही शृगार की इतिश्री नही हो जाती। ऐसा शृगार तो वेश्या भी करती हे।

में नही कहता कि गृहस्थ लोग शरीर पर मेल रहने दे पर जल रो शरीर का मेल उतारते समय यह मत भूल जाओ कि शरीर की तरह हृदय का मेल धोने की भी बडी आवश्यकता हे। केवल जल–स्नान से आत्मा की शुद्धि मानने वाले लोग भ्रम मे हे। मन का मेल उतारे विना न तो शुद्धि हा सकती हे और न मुक्ति मिल सकती हे। इसीलिए कहा जाता हे कि पानी रा मल उतारने मात्र से कुछ न होगा मन का मेल उतारा।

गाधारी ने अपनी सखिया से कहा था–केवल जल रा मेल उतार लन से कुछ नही होगा मन के राग–द्वेप रूपी मेल का साफ करा।

प्रश्न किया जा सकता हे कि क्या गृहरथ भी राग–द्वप का जीत सकता हे? यह तो साधुआ का काम ह। गृहस्थ ता खुला ह। इरा प्रश्न का

उत्तर यह है कि राग–द्वेष को जीते बिना शुद्ध दृष्टि (सम्यग्दर्शन) की पाप्ति नही हो सकती। अनन्तानुबधी चौकडी को जीतने पर ही सम्यग्दृष्टि प्राप्त होती है।

गाधारी ने अपनी सखियो से कहा–सखियो स्त्रियो मे राग–द्वेष के कारण ही आपस मे झगडे होते हैं। जो स्त्रिया राग–द्वेष से भरी हैं, वे अपने बेटे को तो बेटा मानती हैं पर देवरानी के बेटे को बेटा नही समझती। उनमे इतना क्षुद्रतापूर्ण पक्षपात होता है कि अपने बेटे को तो दूध के ऊपर की मलाई खिलाती है और देवरानी या जेठानी के लडके को नीचे का सारहीन दूध देती है। जो स्त्री इस पकार राग–द्वेष के मैल से भरी हैं, वह सुख–चैन पा सकती है? राग–द्वेष को हटाकर मन–वचन की शुद्धता मे स्नान करना ही सच्ची शुद्धि है।

जो स्त्री ऊपर के कपडे तो पहने है मगर जिसने आत्मा की सम्यग्दृष्टि रूपी वस्त्रो को उतार फैका है, वह ऊपरी वस्त्रो के होते हुए भी नगी–सी ही है। जिसके ऊपर विद्या रूपी वस्त्र नही है, उसकी शोभा सुन्दर वस्त्रो से भी नही हो सकती। कृत–अकृत के ज्ञान को विद्या कहते हैं और मेरे लिए यह विद्या ही सिगार है। अविद्या के साथ उत्तम वस्त्र तो और भी ज्यादा हानिकारक होते है।

किसी स्त्री का पति परदेश मे था। उसने अपनी पत्नी को पत्र भेजा। पत्नी पढी–लिखी नही थी। वह किसी से पत्र पढवाने का विचार कर ही रही थी कि बढिया वस्त्रो से सुसज्जित एक महाशय उधर होकर निकले। स्त्री पत्र लेकर उसके पास पहुची। वह पढा–लिखा नही था साथ ही मूर्ख भी था। सोचने लगा–पत्र क्या खाक पढू! मेरे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। उसे अपनी दशा पर इतना दुख हुआ कि उसकी आखो से आसू बहने लगे। स्त्री ने सोचा–पत्र पढकर ही यह रो रहा है। जान पडता है मेरा सुहाग लुट गया। यह सोचकर वह स्त्री भी रोने लगी। स्त्री का रोना सुनकर पडोस की स्त्रिया भी आ पहुची और वे सभी अपनी समवेदना प्रकट करने के लिए स्वर से स्वर मिलाने लगी। कुहराम मच गया।

पडोस के कुछ पुरुष भी आये। उन्होने पूछा–क्या बात हुई? अभी तो पत्र आया था कि मजे मे है और अचानक क्या हो गया? क्या कोई पत्र आया है? पत्र उन्हे दिखलाया गया। पत्र मे लिखा था–हम मजे मे हैं और [illegible] दिन [illegible] पर [illegible] है। जब पडोसियो ने यह समाचार बतलाया तो [illegible] बद हुआ।

अब विचारने की बात यह है कि विद्या के बिना उत्तम वस्त्रो को धारण कर लेने का क्या परिणाम आता है? एक आदमी की अविद्या के प्रताप से ही स्त्री को रोना पडा और जलील होना पडा।

गाधारी की सखी कहती है—हमारी सखी ने कहा था कि—

केश सवारहु मेल परस्पर, न्याय की माग निकार।
धीरज रूपी महावर धारहु, यश की टीका लिलार।।

स्त्रिया स्नान करके केश सवारती हैं। मै सिगार के लिए केश नही रखती। मेरे केश सुहाग के लिए हैं। मस्तक से केश सवार कर रह जाना ही ठीक नही है किन्तु परस्पर मे मेल रखना ही सच्चा केश सवारना है। देवरानी—जेठानी से या ननद—भोजाई से लडाई—झगडा करके केश सवारने का क्या महत्व है? केश सवार कर लडाई मे चिपट जाने वाली स्त्रिया चुडैल कहलाती हैं। वास्तव मे परस्पर मेल—मिलाप से रहना ही केश सवारना है।

गाधारी ने सखियो से कहा था—आपस के मेल रूपी केश सवार कर न्याय की माग निकालो। अर्थात् परस्पर मेल होने पर भी अन्याय की बात मत कहो। न्याय की बात कहो। न किसी का हक छीनो न खाओ। हो सके तो अपना हक छोड दो। इतना नही बन सकता तो कम से कम दूसरे का हक हजम मत करो। जो स्त्रिया ऐसा करती हैं समझना चाहिए कि उन्हीं की माग निकली हुई हे। ऐसी देवियो को देवता भी नमस्कार करते हैं।

स्त्रिया पेरो मे महावर लगाती हैं। गाधारी कहती हे—हृदय मे धैर्य रूपी महावर लगाओ। इसी प्रकार ललाट पर यश का तिलक लगाओ। कम से कम ऐसा कोई काम मत करो जिससे लोक मे अपयश होता हो। इस लाक ओर परलोक मे निन्दा कराने वाला कार्य न करना ही स्त्रियो का सच्चा तिलक हे।

क्षण न व्यर्थ ऐसा तिल धारो मिस्सी पर उपकार।
लाज रूपी कज्जल नयनन मे ज्ञान अरगजाचार।।

स्त्रिया अपना सिगार पूरा करने के लिए गाल पर कस्तूरी या काजल की एक बिन्दी लगाती हैं। वह तिल कहलाता हे। किन्तु वास्तव म अपना एक भी क्षण व्यर्थ न जाने देना ही सच्चा तिल लगाना हे। गन्दे विचारा म समय जाने से ही अनेक हानिया होती हैं। मैं अपना प्रत्यक क्षण परमात्मा म लगाती हू। यही मेरा तिल—सिगार हे।

गाधारी देवी का कहना हे—परापकार की मिस्सी लगाआ। केवल दात काले कर लेने से क्या लाभ हे? एक स्त्री अपनी मिस्सी की शाभा

दिखलाने के लिए हसती रहती है और दूसरी हसती नही है किन्तु परोपकार मे लगी रहती है। इन दोनो मे से परोपकार करने वाली ही अच्छी समझी जायेगी। निठल्ली बैठी दात निकाला करती है, उसे कोई भली नही कहेगा, चाहे मिस्सी कितनी ही बढिया क्यो न लगी हो? वास्तव मे परोपकार की मिस्सी लगाना ही सच्चा सिगार है।

पतिव्रता के काजल मे भी शक्ति होती है। शिशुपाल ने अपनी भौजाई से कहा था–मैं बनडा बना हू। भाभी मेरी आखो मे काजल आज दो उसकी भौजाई ने कहा–रुक्मिणी को ब्याहने का तुम्हे अधिकार नही है क्योकि वह तुम्हे चाहती नहीं है। जो चाहती नही है, उसे ब्याहने का अधिकार पुरुष को नही हे। ऐसी हालत मे मैं तुम्हे काजल नहीं आजूगी। मैंने काजल ऑज दिया और तुम वहाँ से कोरे आ गये तो मेरे काजल का अपमान होगा।

गाधारी ने अपनी सखियो से कहा था–अरगजा अर्थात् सौन्दर्य बढाने वाला सुगन्धित द्रव्य जिसे स्त्रिया लगाती हैं ज्ञान का होना चाहिए। अर्थात् किस अवसर पर क्या करना चाहिए इसका ज्ञान होना ही सच्चा अरगजा लेपन है। इस पकार का सिगार करके शम दम सन्तोष के आभूषण पहनना चाहिए और अपने घर पर आये हुए का अपमान न होने देना ही मेहदी लगाना होना चाहिए।

सुना है ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की जन्मगाठ के अवसर पर कलेक्टर आदि पतिष्ठित अतिथि उनके घर आये हुए थे। विद्यासागर की माता के हाथ मे चादी के कडे थे। माता जब उन अतिथियो के सामने आई तो उन्होने कहा–विद्यासागर की माता के हाथ मे चादी के कडे शोभा नहीं देते। माता ने उत्तर दिया–अगर मैं सोने के कडे पहनती तो अपने पुत्र को विद्यासागर नहीं बना सकती थी। हाथो की शोभा सोने के कडे से नही दान देने से बढती है। कहा भी है–

दानेन पाणिर्न तु ककणेन।

अर्थात्–हाथ की शोभा दान से है ककण पहनने से नही।

यही बात गाधारी ने भी कही थी कि हाथो की शोभा मेहदी लगाने से नही होती बल्कि घर पर आए हुए गरीबो को निराश और अपमानित न करके उन्हे दान देने से होती हे।

गाधारी की सखी कहती है– 'हमारी सखी (गाधारी) का कहना हे कि गुण सिगारो की फूलमाला धारण करनी चाहिए वनस्पति के फूलो की माला पहनना तो प्रकृति की शोभा को नष्ट करना है। इसी प्रकार मुख मे पान

का बीडा दबा लेने से स्त्री की प्रतिष्ठा नही बढती। प्रतिष्ठा बढाने के लिए स्त्री को विनय सीखना चाहिए।'

भारत की स्त्रियो मे विनय की जेसी मात्रा पाई जाती हे अन्य देशो मे नहीं है। यूरोप की स्त्रियो मे कितनी विनयशीलता है यह बात तो उस फोटो को देखने से मालूम हो जायेगी जिसमे रानी मेरी कुर्सी पर डटी हैं और बादशाह जार्ज उनके पास नौकर की भाति खडे हैं। भारत की स्त्रियो मे इतनी अशिष्टता शायद ही मिले। (यूरोप की सभ्यता का अन्धानुकरण करने वाली भारतीय नारी मे भी अब यह शिष्टता (!) आ चली है–स०)।

गाधारी कहती है–'इस सब सिगार पर सत्सगति का इत्र लगाना चाहिए। कुसगति से यह सब पूर्वोक्त सिगार भी दूषित हो जाता है। केकेयी भरत की माता होने पर भी मथरा की सगति के कारण बुरी कहलाई।

अन्त मे गाधरी ने कहा था–मुझे नेत्रहीन पति मिलेगे तो मैं बाह्य सिगार न करके, यही भाव–सिगार करूगी। हमारी सखी ऐसा ही कर रही हैं। जो स्त्रिया ऐसा करती हैं, वे इस लोक को भी सुधारती हैं और परलोक को भी।

अन्त मे गाधारी ने कहा–चलो, रहने भी दो। व्यर्थ मेरी प्रशसा के गीत मत गाओ। मुझमे कितनी त्रुटिया हैं मैं ही जानती हू। मेरी कामना यही है कि तुम सबने जिन शब्दो मे मेरी प्रशसा की है, मैं उस प्रशसा के योग्य बन सकू।

अन्त मे सब उठ खडी हुई ओर अपने–अपने महल मे चली गई।

3 पाण्डव–कौरव–जन्म

भारतवर्ष के साहित्य मे पाण्डव–चरित या महाभारत की कथा का स्थान बहुत ऊचा है। यह सुदूर अतीत काल की कथा है, फिर भी जन–साधारण मे इतनी अधिक पिय है कि इसे पढते–पढते और सुनते–सुनते पाठक और श्रोता थकते नही। अतएव यह कथा पत्येक युग मे नूतन ही रहेगी। मगर हमारा उद्देश्य कथा सुनाना नही है हम महाभारत के परिचित पात्रो का उपयोग करके यह दिखला देना चाहते हैं कि दैवी प्रकृति कैसी और आसुरी प्रकृति कैसी होती है? दोनो मे क्या अन्तर है? इसी कारण हमने महाभारत की अनेक घटनाओ को छोड दिया है और उपयोगी घटनाओ पर ही प्रकाश डाला है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि धर्म सूक्ष्म है। उसे अपनी ही बुद्धि से समझने का प्रयत्न नही करना चाहिए। लोग ईश्वरीय शक्ति को भी अपनी बुद्धि से जानना चाहते हैं। इसी प्रकार यह भी देखने लगते हैं कि मैंने यह भला काम किया परन्तु इसका परिणाम बुरा क्यो निकला? उन्हे समझना चाहिए कि धर्म का तत्त्व अत्यन्त गहन है और मनुष्य की साधारण बुद्धि बहुत स्थूल होती है। धर्म का रहस्य कितना सूक्ष्म है, यह बात कुन्ती और गाधारी की सन्तान के अन्तर को देखने से प्रतीत हो सकती है। कुन्ती गाधारी को अधिक धर्म वाली बतलाती थी परन्तु आगे चल कर वास्तविकता इसके विरुद्ध जान पडी।

कुन्ती और गाधारी–दोनो गर्भवती हुईं। गर्भवती होने पर कुन्ती की भावना धर्ममयी हो गई। खाते–पीते उठते–बैठते प्रत्येक समय धर्म मे ही उसकी भावना रहती थी। उसका विचार धर्म पर इतना दृढ हो गया कि चाहे प्राण चले जाए पर धर्म न जाय। इस सद्भावना की उत्पत्ति मे केवल कुन्ती का ही प्रताप नही कहा जा सकता वरन् गर्भ के बालक का भी प्रताप था। वह बालक धर्मप्रकृति का था अतएव उसके गर्भ मे आने पर माता की भावना भी धर्ममयी हो गई।

जैसे माता का प्रभाव बालक पर पडता है, उसी प्रकार गर्भस्थ बालक का प्रभाव माता पर भी अवश्य पडता है। गर्भ के अनुसार माता की भावना अच्छी भी होती है और बुरी भी होती है। रानी चेलना स्वय धर्मशीला थी किन्तु जब कोणिक उसके गर्भ मे आया तो उसे अपने पति श्रेणिक के कलेजे का मास खाने की साध हुई। इसमे दोष चेलना का नही था। यह तो गर्भ का ही दुष्प्रभाव था।

कुन्ती के मन मे धर्म की भावना हो रही थी किन्तु गर्भवती गाधारी के मन मे कुटुम्ब का कलेजा खाने की इच्छा हुई। कुन्ती अपने कुल के कल्याण की कामना करती, जबकि गाधारी के मन मे कुल के प्रति अकल्याण का विचार उत्पन्न होता था। रात्रि मे गाधारी को भाति–भाति के दु स्वप्न भी आया करते। जब गाधारी कभी–कभी अपनी निज की प्रकृति मे आती तब उसे अपनी दुर्भावनाओ के कारण पश्चात्ताप होता। वह सोचती इस गर्भ के कारण ही मेरा मन मलिन रहता है, ऐसा जान पडता है।

इधर कुन्ती की धर्मभावना दिनो–दिन बढती जाती थी। जिसे पहले वह शत्रु मानती थी, उसे भी उसने अपना मित्र बना लिया। कुन्ती अपनी उज्ज्वल भावनाओ के लिए हर्षित होती और यह मानती कि गर्भ के प्रताप से ही मेरे अन्त करण मे ये धर्मभावनाए उत्पन्न हुई हैं।

यथासमय कुन्ती के गर्भ से एक सुन्दर बालक का जन्म हुआ। यह वही बालक था जो बाद मे धर्मराज युधिष्ठिर के रूप मे जगत् मे प्रसिद्ध हुआ। जन्मोत्सव बडी धूमधाम के साथ मनाया गया। हस्तिनापुर ने आनन्द अनुभव किया।

कुन्ती के पुत्र उत्पन्न होने का समाचार गाधारी ने भी सुना। बुरे गर्भ के प्रताप से उसका मन मैला हो गया। उसने सोचा–पहले मै गर्भवती हुई थी लेकिन मेरे लडका नही हुआ। कुन्ती पीछे गर्भवती हुई ओर पहले उसने लडका जन लिया। मेरे गर्भ मे न मालूम कैसे दुष्ट जीव ने प्रवेश किया हे? यह कहकर गाधारी ने अपना पेट दोनो हाथो से पीट लिया ओर गर्भ गिर गया। जैसे ही गाधारी के गर्भ का बालक बाहर आया कि अकाल मे ही सियार बोलने लगे। अनेक प्रकार के अपशकुन हुए।

गाधारी ने विदुर को बुलाकर कहा–यह बालक जब से गर्भ मे आया तभी से मेरे चित्त मे अनेक दुर्भावनाए उत्पन्न हुई हैं ओर इसके जन्मते ही अनेक अपशकुन हुए हें। गाधारी ने अपनी समस्त दुर्भावनाओ का ब्योरा विदुर को बतला दिया।

विदुर ने थोडी देर विचार करके कहा–यह दुरात्मा हे। समस्त कुल की रक्षा के लिए इसका परित्याग कर देना ही उचित हे अन्यथा यह कुल का नाश कर डालेगा।

दुष्ट गर्भ के गिर जाने स गाधारी की भावना शुद्ध हा गइ थी। उसने विदुर के विचार का समर्थन करत हुए कहा–हा व्यक्ति से कुल का मूल्य अधिक ह। कुल की रक्षा के लिए एक का त्याग कर दना बुरा नही ह।

मगर धृतराष्ट्र बीच मे आ कूदे। उन्होने कहा—सिर्फ सदेह के आधार पर सन्तान का परित्याग नही किया जा सकता। कुल के नाश की बाते करना निरर्थक है। मैं अपने पुत्र का कदापि त्याग नही कर सकता।

धृतराष्ट्र की आज्ञा से लडका सुरक्षित रखा गया। यह वही बालक है जिसे दुर्योधन के नाम से ससार जानता है और जो अन्त मे न केवल कौरव-कुल के बल्कि भारत के पतन का कारण हुआ।

इस पकार युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनो का जन्म हुआ। युधिष्ठिर के जन्म से सर्वत्र आनन्द हो रहा था और पकृति मे भी अपूर्व जागृति हुई थी।

विज्ञ वैज्ञानिको का कथन है कि आत्मा का पभाव जड प्रकृति पर भी पडता है। सीता के सामने अग्नि भी शीतल हो गई थी और मीरा के सामने विष भी अमृत बन गया था। ऐसा होना सहज बात नही है परन्तु अलौकिक पभाव जड वस्तु के पभाव को बदल सकता है। अरविन्द घोष ने गीता पर एक भाष्य लिखा है। एक सज्जन ने उस भाष्य की एक बात कही थी, जिसका आशय यह था कि जो पुरुष विकारहीन हो गया है और जो पूरी तरह धर्म मे निष्ठ है उसे सताने के लिए अगर कोई तैयार होता है तो जड और चैतन्य सभी उस विकारहीन पुरुष की सहायता करते हैं और इस प्रकार उस पर आये सकट के बादल नष्ट हो जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि धर्मात्मा पुरुष की सहायता के लिए जड प्रकृति भी तत्पर रहती है अत हर समय धर्म का ध्यान रखना एव आराधना करनी चाहिए। यह समझना भूल है कि इसके पास कौन सी शक्ति है? सताने पर यह क्या कर सकता है? धर्मात्मा मे ऐसी शक्ति होती है कि उसके आगे देवेन्द्र और नरेन्द्र की शक्ति भी तुच्छ है।

युधिष्ठिर मे धर्म की शक्ति है और दूसरी तरफ दुर्योधन के रूप मे पाप और असत्य की शक्ति भी जन्मी है। आकाश एक है पर उसमे प्रकाश भी रहता है और अधकार भी रहता है बल्कि पकाश की कीमत भी अधकार की बदौलत ही है। ससार मे रहेगे तो दोनो ही प्रकाश भी और अधकार भी दिन भी और रात भी लेकिन विचारणीय यह है कि हमे किसका पक्ष लेना चाहिए? अधेरा तो शुक्ल पक्ष मे भी रहता है और कृष्ण पक्ष मे भी रहता है परन्तु अधेरा है कृष्ण पक्ष का ही। शुक्ल पक्ष ने तो अधेरे को धीरे-धीरे हटाया है और अन्त मे पूर्णिमा के दिन बिलकुल ही नष्ट कर दिया है। मगर कृष्ण पक्ष के आते ही फिर अधेरा बढने लगता है। यद्यपि कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन [illegible] और अधकार कम रहता है ओर शुक्ल पक्ष की द्वितीया

के दिन प्रकाश कम ओर अधेरा अधिक होता हे फिर भी कम प्रकाश के कारण शुक्ल पक्ष की द्वितीया कृष्ण पक्ष की तथा कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा शुक्ल पक्ष मे ही मानी जाती है। इसका कारण यही है कि शुक्ल पक्ष प्रकाश को वढाने वाला है और कृष्ण पक्ष अधकार को वढाने वाला हे।

यही बात धर्म और पाप के विषय मे भी समझी जा सकती हे। पाप का बढना कृष्ण पक्ष है और धर्म का बढना शुक्ल पक्ष हे। इस शुक्ल पक्ष मे प्रकाश चाहे थोडा हो पर उसके बढने की आशा है, अतएव पक्ष तो शुक्ल पक्ष रूप धर्म का ही लेना चाहिए।

युधिष्ठर और दुर्योधन मे शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष जैसा अन्तर है। इसलिए युधिष्ठर के जन्मने पर प्रकृति ने भी आनन्द मनाया और दुर्योधन के जन्मने पर अकाल मे ही सियार और कौवे बोलने लगे।

युधिष्ठिर के पश्चात् कुन्ती एव माद्री ने यथासमय चार पुत्रो को जन्म दिया। दुर्योधन के बाद गाधारी के पेट से निन्यानवे पुत्र उत्पन्न हुए। एक दुशल्या नाम की कन्या भी हुई जो समय पर जयद्रथ के साथ विवाही गई। पाण्डु के पाच पुत्र पाण्डव कहलाए और धृतराष्ट्र के सौ पुत्र कौरव कहलाए।

4. वैर का बीज

पाण्डव और कौरव मिलकर एक सौ पाच भाई हुए। यह सब साथ–साथ बालक्रीडा करने लगे। यो तो जल मे कमल भी बढता है और मेढक भी किन्तु बढते है अपनी–अपनी दिशा मे। इसी प्रकार खेलकूद के समय भी पाण्डवो का तेज ऐसा फैला कि सभी लोग उनकी प्रशसा करने लगे। लोग अचरज करने लगे कि एक ही कुल मे जन्म लेने पर भी और एक से वातावरण मे सास लेने पर भी इनमे इतना अन्तर क्यो है? पाण्डव बुद्धि, बल और विवेक मे दिन–पतिदिन बढने लगे लेकिन कौरव इस वृद्धि मे उनकी समानता न कर सके।

ऐसे तो सभी बालक राजकुमार बलवान् थे किन्तु भीम इन सबमे असाधारण था। वह बहुत ही बलवान् था। भीम मे कोई दुर्भावना नही थी किन्तु कौरवो का बल बढाने और उन्हे निर्भय बनाने के लिए वह कभी किसी कौरव को पछाड देता तैरना सिखाने के लिए कभी किसी को पानी मे फैंक देता और कभी कुछ और करता। कौरवो को भीम का यह व्यवहार बहुत बुरा लगता। वे सोचते–भीम बडा दुष्ट है। वह सबको बुरी तरह सताता है। धीरे–धीरे दुर्योधन के मन मे भीम के प्रति दुर्भाव बढता गया। फिर भी भीम अपनी चाल चलता रहा। जब किसी पेड पर चढने का खेल खेलते, तब भीम पेड को पकड कर ऐसे जोर से हिला देता कि कौरव पके आम की तरह नीचे टपक पडते। कभी वह उन्हे कुश्ती मे पछाड देता। इस प्रकार सभी खेलो मे भीम की ही विजय होती थी। खेल मे हार जाने पर बालको मे उत्तेजना पैदा होती है पर यहा तो नित्य हार थी। भीम हमेशा जीतता। सदैव की इस पराजय ने दुर्योधन के मन मे भीम के प्रति वैर के बीज बो दिये। धीरे–धीरे उसके सभी भाई भीम को अपना विरोधी समझने लगे।

जैसे सद्गुण बिना सिखाये सहज स्वभाव से भी किसी मे आ जाते है उसी प्रकार दुर्गुण भी बिना सिखाये आ जाते हैं। अपने सहज दुर्गुणो के कारण दुर्योधन भीम को बुरा–भला कहने लगा। दुर्योधन का यह दुर्गुण भीम के हक मे एक प्रकार से लाभदायक सिद्ध हुआ। इससे भीम को एक विशेष अवसर मिला। दुर्योधन के साथ भीम की टक्कर न हुई होती तो भीम को जो मौका मिला शायद न मिलता।

दुर्योधन अपने भाइयो से कहता–देखा भीम को वह कैसा दुष्ट है? दुर्योधन के भाई भी भीम ने हमे मारा हमे हैरान किया आदि कहने लगे।

दुर्योधन के भाइयो पर उसके कुविचारो का असर खूब पडा। अब वे भीम की सद्भावना को दुर्भावना के रूप मे ग्रहण करते उसके प्रत्येक अच्छे कार्य को बुरी निगाह से देखते राई का पर्वत बनाते और कभी–कभी झूठी ही शिकायत करने लगते। दुर्योधन ने इस अवसर का लाभ उठाने की सोची।

एक दिन दुर्योधन ने अपने भाइयो को इकट्ठा किया। वह उनसे कहने लगा–हम सबमे युधिष्ठर बडा है इस कारण वही राजा होगा। जब युधिष्ठिर राजा होगा, तब हम सबको उसका सेवक बनना पडेगा। उस समय भीम हम लोगो को कितना दु ख देगा इस बात का विचार करके हमे अभी से सावधान हो जाना चाहिए। युधिष्ठिर भला आदमी है। उसे मारना तो ठीक नही है, परन्तु इन पाचो मे बडी घनी प्रीति है। इतनी घनी कि इनमे से एक मरने पर बाकी शायद ही जीवित रह सके। इसलिए भीम को मार डालने का कोई उपाय करना चाहिए।

दुर्योधन के भाई अपने भाई की चतुराई से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने उसके विचार का समर्थन करते हुए पूछा–भीम को मारने का क्या उपाय है? दुर्योधन ने कहा–इसकी चिन्ता तुम मत करो। तुम तो मेरे साथ रहो। मैं आप ही सब समझ लूगा।

दुर्योधन के भाइयो को उसकी चतुराई पर भरोसा था। उन्होने कह दिया–अच्छी बात है, हम सब आपके साथ है ही। आप जो उचित समझे उपाय करे।

दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा–भीम ने इन सबको पीटकर ओर परेशान करके अच्छा ही किया नही तो ये सब मेरे साथ सहमत न होते। मुझे सब भाइयो की सहायता प्राप्त है तो भीम को मार डालना कुछ कठिन न होगा।

कोरव ओर उनमे भी खास तोर से दुर्योधन भीम को अपने मार्ग का काटा समझने लगा। उसके दिल मे एक बात यह भी चुभती थी कि युधिष्ठिर राजा होगे तो क्या हम इनके गुलाम बनकर रहेगे? हमे युधिष्ठिर की सत्ता क नीचे रहना होगा। इस दुर्भावना से प्रेरित होकर उसन अपन भाइया को खूब उभारा ओर उन्हे अपन विचारो का अनुयायी बना लिया। दुर्जन अच्छाई म भी बुराई ही देखता। दुर्योधन को भीम का अच्छे से अच्छा कार्य भी बुरा दिखाई देता था आर वह उसम भीम की दुर्भावना की कल्पना करता था।

परन्तु देखना यह चाहिए कि दुर्योधन म यह दुर्बुद्धि क्या आई? आप सिर्फ पाण्डव–कारवो की भलाई–बुराई सुनन नही बठे हैं। आपका उद्देश्य बुर

की बुराई सुनकर अपनी बुराई की खोज करना और उसे हटा देना होना चाहिए। अतएव दुर्योधन की कथा सुनकर अपनी बुराई त्यागो और पाप से बचो। दुर्योधन की बात सुनकर उसकी बुराई कर देने से आपका तनिक भी कल्याण नही होगा। आपका कल्याण तो तभी होगा जब आप स्वय नाजुक प्रसग उपस्थित होने पर भी दुर्योधन के मार्ग पर नही चलेगे। जिनमे दुर्जनता होती है वे सज्जनो को कष्ट देने का प्रयत्न करते है मगर सज्जन अपनी सज्जनता नही त्यागते। एक कवि ने कहा–

इसमे अचरज की बात नही, दुर्जन ऐसे ही होते है,
गैरो की बढती को सुनकर, दिन–रात हृदय मे जलते हैं
चाहते यही सब लोगो से हम ही जग मे आदर पावे,
धनवान् गुणी ज्ञानी नर को छल द्वारा नीचा दिखलावे।
परमार्थ आदि शुभ कामो से वे रहते दूर दुराचारी,
छल–कपट आदि के करने मे, दिखलाते हैं श्रद्धा भारी।।
कहते है मीठे मधुर वचन, पर हृदय पापमय पहचानो,
मद राग–द्वेष निर्दयता के इनको सच्चे पुतले मानो।
दुष्टो का परम धर्म है यह दिन–रात गैर से बैर करे,
जो करे भलाई उनके सग उनके ही सिर हथियार धरे।
अस्तु विधाता दे नही, इन लोगो का सग।
पल भर भी सुख ना मिले होय रग मे भग।।

कवि ने दुर्जनो का यह चित्र खीचा है। इस चित्र को देखकर यही विचारना चाहिए कि हमारी आत्मा मे कभी दुर्जनता न आने पावे। कदाचित् दुर्जनता आ गई हो तो यह चित्र देखकर मिटाना चाहिए।

कवि ने कहा है कि दुर्जन दूसरो की बढती नहीं देख सकते। तुलसीदासजी कहते है–

उजडे हर्ष विषाद बसेरे।

अर्थात दूसरो का उजाड देखकर दुर्जन को हर्ष होता है और दूसरो के बसने से वे दुःखी होते है। उनकी इच्छा यही होती है कि ससार मे हम ही रहे हमारा ही पसारा हो हमारी ही प्रतिष्ठा हो और हम ही माने जाए। उन्हे यह विचार नही होता कि मै स्वय बढना चाहता हू, यह तो ठीक है पर दूसरे बढ रहे है तो उनसे द्वेष क्यो करे? दुर्जन अकारण ही गुणवान एव सज्जनो से द्वेष करते है।

द्वेषी लोग किस अच्छी वस्तु से द्वेष नही करते? अच्छाई मात्र के प्रति उनके मन मे मैल पैदा हो जाता है। विद्वानो से भी उनका द्वेष होता है ओर साधुओ के लिए भी। वे कहते है–

नारि मुई घर–सपति नासी मूड मुडाय मये सन्यासी।

इस प्रकार वे जब किसी मे कोई विशेष गुण देखते हैं उसीसे और उनके उस सद्‌गुण के कारण ही द्वेष करने लगते हैं। उन्हे नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं। कभी कोई उनसे परमार्थ करने को कहता भी हे तो उनका उत्तर होता है– 'परमार्थ करना आपका काम है। यह कलियुग है– भलाई का जमाना नही है।' इस प्रकार वे भलाई की ही बुराई करने लगते हैं।

प्रश्न हो सकता है कि आजकल बुराई करने वालो की बढती देखी जाती है और सत्य का पालन करने वाले लोग पिछडे हुए हैं तो क्या सत्य मे कुछ प्रभाव नही रहा? सत्य क्या निर्बल हो गया है? वास्तव मे इस प्रकार का प्रश्न होना ही बुरा है। जिस समय सब लोग असत्य का आचरण करने लगते हैं उस समय भी सत्य का आचरण करने वाला आनन्द मे ही रहता है। जब ससार से सत्य का नाश हो रहा हो तब भी सत्य के पुजारी को आनन्द क्यो होता है? उसे दु ख क्यो नही होता? इसका उत्तर यह है कि उन्हे भलीभाति मालूम होता है कि सत्य की परीक्षा के लिए ऐसा ही अवसर उपयुक्त सिद्ध होता है। जब यादव लोग आपस मे मूसल मारामार कर लड–मर रहे थे, तब श्रीकृष्ण हस रहे थे। किसी ने पूछा– आपका परिवार मर रहा है ओर आप हस रहे हे इसका क्या कारण हे? कृष्ण ने कहा–यह हसने का ही समय हे। मैंने इन्हे समझा दिया था कि मदिरापान द्यूत ओर परस्त्री–गमन से बचो। मैंने इनके सेवन से होने वाली हानिया भी इन्हे समझा दी थी। मैंने कुछ छिपा नही रखा था। फिर भी इन कम्बख्तो ने मेरी वात सुनी–अनसुनी कर दी। इस कारण इनमे आपस मे फूट हुई ओर उसी फूट के कारण आज इनके सिर फूट रहे हैं।

साराश यह हे कि दूसरो की वुराई देखने मे हमारी भलाई नही हे। हमे ऐसा भी नही सोचना चाहिए कि दूसर भलाई नही करते ता हम भी क्या करे? हजार कोओ के बीच मे रहा हुआ हस अपना स्वभाव नही छाडता। वह कौओ का अनुकरण नही करता। इसी प्रकार समय केसा भी हा सज्जन सज्जन ही रहगे आर दुर्जन दुर्जन ही रहेगे। पाण्डव सज्जन थे फिर भी उन्हे कष्ट सहने पडे ओर कारव दुर्जन थ फिर भी व राज्य भागते रहे यह देखकर दुर्जनता की वडाई मत करो। आज आपके हृदय म पाण्डवो क प्रति कैसा भाव

हैं और क्यो है? पाण्डवो की सज्जनता के कारण ही तो? अगर दुर्जनता बडी होती तो कौरवो की पशसा क्यो न होती? इतना लम्बा समय बीत जाने पर भी क्या कोई दुर्योधन की पशसा करता है? राम और रावण मे से दोनो की तुलना मे क्या कोई रावण को श्रेष्ठ कह सकता है? इसलिए दूसरो की हसी न करके अपनी बुराइयो को निकाल फैको और यह सोचो कि दुर्जन अगर दुर्जनता नही छोडता तो मै अपनी सज्जनता कैसे छोड दू?

दुर्योधन ने अपने सब भाइयो मे दुर्जनता भर दी। युधिष्ठिर ने अपने भाइयो से कह दिया कि दुर्योधन की बुद्धि अच्छी नही है, इसलिए उससे सावधान रहो और हे भीम यद्यपि तेरी बुद्धि खराब नही है, परन्तु ऐसा खेल भी मत खेल जिससे उन लोगो को बुरा लगे। भीम ने कहा– मैं तो उनकी भलाई ही चाहता था। उन्हे ठोक–पीटकर ताकतवर बनाता हू और उत्थान की ओर ले जाता हू। इसके उत्तर मे युधिष्ठिर कहने लगे वे ताकतवर नही बनना चाहते तो जबर्दस्ती क्या जरूरत है? इसलिए तू ठोका–पीटा मत कर।

दुर्योधन और युधिष्ठिर अपने–अपने भाइयो को अपनी–अपनी प्रकृति के अनुसार उपदेश देते रहते थे। एक दिन दुर्योधन ने अपने भाइयो से कहा–शत्रुओ का बल बढता जाता है। यही हाल रहा तो फिर उनकी जड उखाडना कठिन हो जायेगा। भीम के बढते हुए बल को तत्काल न रोक दिया गया तो फिर वह न रुक सकेगा।

दुर्योधन के भाई कहने लगे–जो आपकी राय हो वही किया जाय। अगर आप उचित समझे तो खेल ही खेल मे सब उस पर टूट पडे और उसे मार डाले।

दुर्योधन–नही उसे इस तरह नही मार सकते। ऐसा करने से तो वही हम मे से कइयो का कचूमर निकाल डालेगा। वह आदमी थोडे ही है, साक्षात् राक्षस है। ऐसा कोई उपाय खोज निकालना चाहिए कि काटा भी दूर हो जाय और हम लोग बेदाग भी बचे रहे।

दुर्योधन की यह कूटनीति सबने स्वीकार की। दुर्योधन कोई ऐसा उपाय ढूढने लगा। आखिर उसकी कुशाग्र बुद्धि मे एक उपाय सूझ पडा।

एक दिन दुर्योधन युधिष्ठिर के पास गया। उसने बडी नम्रता के साथ हाथ जोडे। उसने ऊपर से नमता प्रकट की मगर वह नम्र नही था। उस पर यह उक्ति चरितार्थ होती थी।

होइ निरामिष कबहु न कागा।

दुर्योधन ने कहा– मेरा विचार आज यमुना के किनारे प्रीतिभोज करने का है। कृपया आप उसमे सम्मिलित होने की स्वीकृति दीजिए। युधिष्ठिर ने स्वीकृति दे दी।

दुर्योधन ने यमुना के तट पर एक मण्डप बनवाया और अनेक प्रकार के भोजन तैयार करवाने की व्यवस्था की। उन्ही भोज्य पदार्थों मे से एक मे मीठा विष मिलाने की सॉजिश की गई। वह विष खाते समय तो मीठा लगता पर उसका गुण मार डालने का था। पाण्डव और कौरव–सब भाई जब खेलकूद कर निपट चुके तो दुर्योधन कपट भरा प्रेम दिखला कर अपने हाथ से सबको भोजन परोसने लगा। विष–मिश्रित भोजन का रग–रूप और स्वाद निर्विष भोजन के समान ही था अतएव दोनो का अन्तर मालूम नहीं होता था। कहना न होगा कि दुर्योधन ने भीम को विषैला भोजन परोस दिया। भोला भीम नि शक होकर उसे खा गया।

जब लोग भोजन कर चुके तो दुर्योधन ने कहा–चलो, अब जरा जलक्रीडा भी कर ले। यह अवसर फिर नही मिलेगा।

ऊपर से वह आज विशेष रूप से प्रेम का प्रदर्शन कर रहा था। उसे अपनी सफलता पर अपार हर्ष हो रहा था ओर वही हर्ष उसकी वाणी की मधुरता के रूप से प्रकट हो रहा था। वह मन ही मन सोच रहा था–परमात्मा की मुझ पर अपार कृपा है। अब में अवश्य राजा वन जाऊगा। मेरे मार्ग का सवसे भयानक कटक आज समाप्त हो रहा हे।

कोरव और पाण्डव जलक्रीडा करने लगे। विप ने भीम पर अपना असर दिखलाया। वह वेहोश होकर गिर पडा। दुर्योधन भीम की ताक मे ही था। उसने वेहाश भीम को खीचकर एक ओर डाल दिया। जव सब लोग चले गये तो शाम को उसने भीम के हाथ ओर पेर किसी वेल से वाध दिये ओर उसे यमुना मे छोडकर चल दिया।

भीम को यमुना मे फेककर दुर्योधन खूव प्रसन्न हुआ। सोचने लगा–भीम के न रहने से युधिष्ठिर आदि चिन्ता करके आप ही मर जाएगे ओर कदाचित न मरे तो शक्ति–हीन तो हो ही जाएगे।

सभी राजकुमार अपने–अपने घर पहुच कर सा गए। किसी का भीम के रह जाने का ख्याल न हुआ। युधिष्ठिर न सोचा–भीम अपन ठिकान जा पहुचा होगा आर दुर्योधन न साचा–भीम ठिकान लग गया हागा। परतु–

अरक्षितस्तिष्ठति दैवरक्षित सुरक्षितो दैवहतो विनश्यति।
जीवत्यनाथोपि वने विसर्जित कृतप्रयत्नेऽपि गृहे विनश्यति।।

भाग्य जिसका रखवाला है वह दूसरे रक्षक के बिना ही सुरक्षित रहता है और बडे–बडे रक्षक होने पर भी दैव का मारा मर जाता है। भीम भाग्यवान था। जब भाग्य ही उसका रक्षक था तो उसे कौन मार सकता था? एक दुर्योधन तो क्या सौ दुर्योधन भी उसका बाल बाका नही कर सकते थे।

पुराणो के अनुसार यमुना मे फैके हुए भीम को नाग जाति के लोग उठाकर ले गये। पुराण मे यह भी लिखा मिलता है कि भीम को जहरीले नागो ने काटा। 'विषस्य विषमौषधम्' अर्थात् विष की दवाई विष है। इस कहावत के अनुसार नागो के विष से भीम के शरीर का विष मर गया। भीम को होश आ गया। होश मे आते ही भीम ने अपने शरीर के बन्धन तोड फैंके। यह देखकर नाग भी भयभीत हो गए। उन्होने अपने राजा के पास चलने को कहा। वह उनके साथ नाग–राज के पास पहुचा।

भीम को देखकर नागो के राजा ने कहा–यह पाण्डु–पुत्र है, इसे आदरपूर्वक रखो। राजा की आज्ञा से नाग भीम का आदर करने लगे और भीम आनन्द से रहने लगा।

जडी–बूटी की दवा जितनी कारगर होती है उतनी डॉक्टरी दवा नही। मेरी कमर मे बचपन मे एक फोडा हुआ था। उसके दर्द के मारे मैं धोती भी नही पहन सकता था। यह बात मैंने एक भील से कही। उसने मुझे एक जडी बताई। मैंने वह जडी पीसकर तीन बार लगाई। तीन बार के लगाते ही मेरा रोग साफ हो गया। अगर मैंने डॉक्टर का शरण लिया होता तो कौन जाने क्या परिणाम होता? उस जडी ने रोग की जगह से लगभग एक–डेढ तोला छिलका उतार कर रोग की जड ही उखाड फैंकी। जडी की दवा ऐसी कारगर होती है

नागो ने दवा करके भीम के शरीर के घाव मिटा दिये। उन्होने भीम को अमृतवल्ली का रस पिलाया जिससे बलवान् भीम का बल हजार गुणा और बढ गया। दुर्योधन भीम को नष्ट करने चला था लेकिन भीम हजार भीम सरीखा हो गया।

उधर प्रात काल होने पर पाण्डव सोकर उठे। भीम को कही न देखकर उसकी खोज करने लगे। उन्होने सोचा–भीम शायद माता के पास गया हो। यह सोचकर चारो भाई माता कुन्ती के पास गए। मगर भीम को साथ मे न देखकर कुन्ती स्वय पूछने लगी–आज चार ही कैसे आये? भीम कहा है? पाच शरीरो मे रहने वाले एक आत्मा की तरह तुम पाचो भाई साथ रहते हो फिर आज भीम कहा है?

युधिष्ठिर पशोपेश मे पड गये। गहरी चिन्ता के साथ उन्होंने कहा—मा, भीम को खोजने के लिए हम यहा आए हैं। यह प्रश्न हम आपसे ही करने वाले थे कि भीम कहा है? भीम आपके पास भी नहीं है यह तो आश्चर्य की बात है। कोई छल तो काम नहीं कर रहा हे?

भीम के लिए सब जगह कोलाहल मच गया। पाण्डवो ने कुन्ती के सामने विदुर को बुलवाया। विदुर आये। कुन्ती ने उनसे कहा—विदुरजी आप परिवार के रक्षक हैं। पता लगाइए भीम कहा है? क्या कारण है कि आज भीम का कही पता नही है?

विदुर विवेकवान्, सत्यवादी और न्यायप्रिय थे। उन्होने सान्त्वना देते हुए कहा—भीम के लिए चिन्ता मत करो। चिन्ता करने से भीम नही आ सकता। सत्यशील होकर चिन्ता छोडकर परमात्मा का ध्यान करो। हम भीम की खोज करते हैं मगर तुम लोग चिन्ता न करो। परमात्मा का भजन करने से भला ही होगा। भीम जहा भी होगा, वहा कष्ट से मुक्त होगा।

विदुर की बात सुनकर कुन्ती एकान्त मे जा बेठी और परमात्मा का ध्यान करने लगी। उसने प्रतिज्ञा कर ली—'जब तक भीम को न देख लूगी तब तक अन्न—जल ग्रहण नही करूगी।' कुन्ती पढने लगी—

मना अब धीर धरो रे।
सुत—दु ख दारुण तोय जरावे छिन—छिन याद करो रे।
नाम सुमर याही विधि तू मन, सकट सबहि हरो रे।।मना।।
सुत—सुत करते सुत नही पावे झूठ प्रलाप करो रे।
ज्ञान—विज्ञान विचारन दे मोहि सुख उपजै है खरो रे।।मना।।
चचलता तज निर्बल हो तू, आतम—बल मे धरो रे।
सुत को शाति यही विधि पहुचे निश्चय कुन्ती करो रे।।मना।।

कुन्ती परमात्मा का स्मरण करने बेठी। पुत्र की चिन्ता सब चिन्ताआ से वडी मानी जाती हे। भीम—जेसे पुत्र का एकाएक लापता हो जाना ता ओर भी गहरी चिन्ता का कारण हे। परन्तु भीम के वियोग म कुन्ती का मर जाना ठीक है या भीम के मिलन का उपाय करना उचित हे? ऐसा अवरार आ जान पर सभी को उसी उपाय का अवलवन लेना चाहिए जिसका कुन्ती न अवलवन लिया।

कुन्ती परमात्मा का चितन करन वेठी ह पर तु भीम की मूर्ति उसकी आखो के आग आ—आ जाती ह। वह सुत—सुत कहकर चिल्लान लगती ह। फिर वह सावधान हाकर कहती हे—अर मन! तू ईश्वर का भजता ह या कपट

करके बेटे के लिए रोता है? रोने से बिछुडा बेटा मिलता हो तो रो ले। जी भर कर रो ले। अगर रोने से न मिल सकता हो तो क्यो रोता है? हे मन, जैसे बारबार पुत्र मे उलझता है, वैसे परमात्मा मे मगन हो जा न। परमात्मा के स्मरण मे किसी प्रकार की कमी रही है, तभी तो पुत्र गया है। अब उसी को दूर करना हो तो भगवान् को भज। परमात्मा का स्मरण करने से पुत्र का उद्धार होगा। बेटा–बेटा बकने से बेटा नही आता।

कुन्ती फिर सोचती है–हे मन, तू चिन्ता मत कर। ज्ञान–विज्ञान उपजने दे। दु ख के समय ही ज्ञान–विज्ञान उपजता है। रोने से तेरी बडाई नही है। अत निर्बल के बल राम सिद्धान्त को अपना कर तू निर्बल हो जा।

कुन्ती आठ दिन तक अन्न–जल का त्याग करके ध्यान मे बैठी रही। उधर आठ दिन मे भीम खूब हृष्ट–पुष्ट हो गया। तब उसने नाग राजा से कहा–अब मैं अपने घर जाना चाहता हू। घर पर मेरी प्रतीक्षा मे कुटुम्बीजन व्याकुल होगे। मै आपके उपकार का कृतज्ञ हू।

नागो के राजा ने कहा–जैसी तुम्हारी इच्छा। जब चाहो जा सकते हो।

दुर्योधन भी ऊपर से चिन्तित होने का दिखावा करता था, पर भीतर ही भीतर फूला नही समाता था। वह समझने लगा था, मानो मैं राजा हो ही चुका। वह इसी प्रकार का विचार कर रहा था कि एकाएक आता हुआ भीम उसे दिखाई पडा। वह आश्चर्य मे डूब गया लेकिन उसने अपना मनोभाव बडी कुशलता से छिपा लिया। वह कपटपूर्वक रोता–रोता कहने लगा–भाई भीम, तुम कहा गायब हो गये थे? तुम्हारे लिए राज–परिवार और प्रजाजन सभी बेचैन है। इस प्रकार कहता हुआ वह भीम के साथ युधिष्ठिर के पास पहुचा। युधिष्ठिर आदि अपने बिछुडे भाई से भेट कर कितने प्रसन्न हुए, यह बतलाना कठिन है। सबने उसे कण्ठ से लगाया और साथ लेकर माता कुन्ती के पास गये।

माता कुन्ती के चरणो मे सिर रखकर भीम ने कहा–माता, आपकी कृपा से मै जीवित और सकुशल आ गया बल्कि विष भी मेरे लिए अमृत के रूप मे परिणित हो गया।

कुन्ती ने भीम को देखकर कहा–प्रभो! तेरा प्रभाव अनन्त है। सकट के समय मुझे तू ही याद आता है।

तू ही तू ही याद आवे रे दरद मे
माता–पिता अरु भाई–भतीजा काम पड्या भग जावे रे।

कुन्ती ने भीम के सिर पर प्रेम का हाथ फेरा। वह कहने लगी–वत्स मैं तुझे क्या देख रही हू मानो ईश्वर को देख रही हू। हे प्रभो! मैं यही चाहती हू कि घोर सकट के समय, सव कुछ चला जाय एक तू न जाय। वस मैं यही चाहती हू।

इसी प्रकार विदुर भी भीम के आने का समाचार पाकर वहा आ पहुचे।

युधिष्ठिर ने भीम से पूछा–भैया भीम, तू रह कहा गया था?

भीम–आपकी कृपा से सब ठीक हुआ पर दुर्जन अपनी दुष्टता से नहीं चूके। प्रीतिभोज के समय दुर्योधन ने भोजन मे विष दे दिया था। मैं बेहोश हो गया तो उसने मेरे हाथ–पैर बाध दिये और यमुना मे छोड दिया।

युधिष्ठिर–ऐ, फिर क्या हुआ?

भीम–नाग लोगों ने मुझे देख लिया और वे अपने घर ले गये। उन्होने मेरी चिकित्सा की और अमृतवल्ली का रस पिलाया। इससे मेरा बल हजार गुणा बढ गया है। अब तक मैं कौरवो का हित ही हित सोचता था, अव उन्हे एक–एक करके यमधाम पहुचाऊगा कि याद रखेगे।

भीम को क्रुद्ध देखकर युधिष्ठिर कहने लगे–भीम शात रहो। दुर्योधन और उसके भाइयो को मारने की तुम्हारी बात ठीक है और नीति भी यही कहती हे कि रोग ओर शत्रु को उठते ही मार डालना चाहिए परन्तु माताजी का कहना दूसरा है। नीति की बात माननी चाहिए या माता की? तू यह देख ले।

भीम–माताजी क्या कहती हे?

युधिष्ठिर–माता मुझ से कहती थी–'जव तू गर्भ मे आया तव से मेरी धर्मभावना खूब विकसित हुई हे। इसलिए मैं तुझे धर्म का अवतार मानती हू। तेरे धर्म से मेरी कूख दीपेगी। यह वात तू माता से पूछ सकता हे।

युधिष्ठिर की वात सुनकर कुन्ती प्रसन्न हुई। जेसे वादल हट जाने पर चन्द्रमा खिल उठता हे उसी प्रकार कुन्ती का हृदय खिल उठा। उसने कहा–वेटा युधिष्ठिर! वास्तव मे तुम ठीक कहते हो। इस समय मे आठ दिन तक धर्म का एकान्त अनुष्ठान करती रही मैंने शत्रु का भी वुरा नही सोचा। मैं सिर्फ भीम के वियोग के शोक से वचने के लिए भगवान का भजन कर रही थी। भीम का वृत्तान्त सुनकर मेरे मन पर उदासी के वादल छा गये थे परन्तु तेरी वात के पवन ने उन्हे उडा दिया।

युधिष्ठिर—भीम! दुर्योधन के इस व्यवहार के कारण नागो से तुम्हारी भेट हुई और तुम्हे अमृतवल्ली का रस पीने को मिला। ऐसी स्थिति मे दुर्योधन को हम लोग शत्रु क्यो माने? मित्र क्यो न माने? रह गई नीति की बात, सो नीति और धर्म मे अन्तर है। नीति सिखलाती है—'शठे शाठ्य समाचरेत्' अर्थात् दुष्ट के साथ दुष्टता से ही पेश आना चाहिए। किन्तु धर्म की आज्ञा यह नही है। धर्म बदला लेने के विचार का विरोधी है। जिस धर्म ने तुम्हारी रक्षा की है और तुम्हारा बल बढाया है उस धर्म का परित्याग करना कहा तक उचित है? जो बल तुम्हे दुर्योधन के निमित्त से मिला है, उस बल का उपयोग दुर्योधन के मारने मे करना कहा तक उचित होगा?

अर्जुन अभी तक चुपचाप सुन रहा था। दुर्योधन की दुष्टता का विचार करके वह खीझ रहा था। अब उससे न रहा गया। उसने कहा—भाई साहब! आपका कहना ठीक है कि दुर्योधन की दुष्टता के प्रताप से भीम को शक्ति प्राप्त हुई है मगर दुर्योधन ने तो अपराध—बुद्धि से ही सब किया। परिणाम चाहे जो आया दुर्योधन की भावना तो मलिन ही थी। ऐसी दशा मे दुर्योधन निर्दोष कैसे कहा जा सकता है? उसे यथोचित दड क्यो नहीं मिलना चाहिए?

युधिष्ठिर—दुर्योधन का मन मलिन है और उसकी बुद्धि दुष्ट व भ्रष्ट है यह सही है परन्तु उसके अस्तित्व और उसकी दुष्ट बुद्धि से हमारा विकास ही होगा। सूर्य के प्रकाश की महिमा रात्रि के अन्धकार से, अमृत की महिमा विष से मत्र की महिमा साप से औषध की महिमा रोग से और साधु की महिमा असाधुओ से है। इसलिए अभी तो मैं दुर्योधन पर समभाव रखने के लिए ही कहूगा। आगे चलकर कुछ करना पडेगा तो दूसरी बात है।

कुन्ती ने कहा—पुत्रो! तुम सभी मुझे एक सरीखे प्रिय हो, परन्तु युधिष्ठिर मे गर्भ के समय से ही धर्म की मात्रा अधिक है। अब वह तुम्हे शिक्षा देने योग्य हुआ है यह देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हू। मैं तुमसे कहती हू, अगर तुम मेरी आज्ञा मानते होओ तो कभी युधिष्ठिर की आज्ञा से बाहर मत होना। जिस धर्म ने तुम्हारी रक्षा की है वह युधिष्ठिर मे मौजूद है। इसलिए तुम युधिष्ठिर की ही शरण मे रहना।

मित्रो! क्या कुन्ती ओर युधिष्ठिर की भाति आप भी धर्म पर विश्वास रखोगे? जैसे के साथ तैसे की नीति तो नही अपनाओगे? जैसे भीम आदि चारो भाइयो ने युधिष्ठिर की शरण ली उसी प्रकार आप भी धर्म जानने वाले की शरण लो ओर युधिष्ठिर का अनुसरण करो।

भीम आदि चारो पाण्डवो ने युधिष्ठिर के कथनानुसार चलने का वचन दिया। युधिष्ठिर कहने लगे–धर्म ही असल मे त्राता है। गृहस्थ होने के कारण अपने सामने अनेक विषम अवसर आएगे परन्तु उस समय धर्म को सामने रखकर ही विचार करना होगा।

प्रश्न किया जा सकता है कि जब युधिष्ठिर कौरवो के विरुद्ध शस्त्र लेकर खडे हुए थे, तब उनकी क्षमा और धर्मभावना कहा चली गई थी? इस सबध मे यही कहा जा सकता है कि धर्म सूक्ष्म है और उसकी व्याख्या गम्भीर है। धर्म के स्वरूप को भलीभाति समझ लेने पर ही युधिष्ठिर के कार्य की ठीक आलोचना की जा सकती है। युधिष्ठिर धर्म के कैसे जानकार थे, यह बात इसीसे समझी जा सकती है कि इनके भाषण ने कृष्ण की बात भी पीछे हटा दी थी। उन्हे धर्म की सूक्ष्म गति का गहरा ज्ञान था।

युधिष्ठिर और कुन्ती आदि के विचार जानकर विदुर बहुत प्रसन्न हुए।

अन्त मे युधिष्ठिर ने कहा–मेरी बात मानो तो मैं यही कहता हू कि तुम लोग विष खिलाने की इस घटना का जिक्र किसी के सामने मत करना दुर्योधन की ओर से कभी असावधान मत रहना। विष देने की बात पर लोग सहसा विश्वास नहीं करेगे और कई लोग अपने हितशत्रु भी बन जाएगे। युधिष्ठिर की बात सबने स्वीकार की।

5 शिक्षा

विदुर वहा से चले तो सीधे भीष्म के पास पहुचे। इस घटना से उनका चित्त बहुत खिन्न था। उन्हे ऐसा जान पडता था कि कौरवकुल का, कुल–गौरव धूल मे मिलना चाहता है। दुर्योधन के जन्म–काल की सारी घटना उन्हे याद हो आई। उन्होने भीम को विष दिये जाने की कहानी कह सुनाई। साथ ही यह भी कहा कि राजकुमारो को खेल–कूद मे ही रखना ठीक नही है। अब इन्हे राजकुमारो के योग्य ऊची शिक्षा देने की व्यवस्था करनी चाहिए।

भीष्म ने भी विष के वृत्तान्त पर गहरा खेद प्रकाशित किया। उन्होने विदुर से कहा–विदुर! तुम कुलदीपक और कुल को मार्ग पर लगाने वाले हो। तुमने ठीक कहा है। मैं तुम्हे सराहता हू। लेकिन राजकुमारो की शिक्षा की ओर मैं बेखबर नही हू। अब तक मैंने विशेष ध्यान नही दिया, इसका कारण यही है कि समय से पहले बालको पर शिक्षा का कठिन बोझ डाल देने से उनका स्वाभाविक विकास रुक जाता है। जैसे पौधे को सूर्य और हवा से वचित करके मकान के भीतर बन्द कर देने से उसका विकास रुक जाता है, उसी प्रकार बच्चो को कम आयु मे खेल से वचित कर देना उनका विकास रोक देना है। मै जानता हू कि राजकुमार आपस मे लडते हैं। लेकिन इस प्रकार की लडाई के साथ होने वाले विकास को रोकना भी उचित नही है। लेकिन अब समय आ गया है। तुमने उचित अवसर पर चेतावनी दी है। विदुर, बताओ राजकुमारो को क्या सिखलाना चाहिए?

विदुर कहने लगे–दो ही विद्याए हैं–शस्त्रविद्या और शास्त्रविद्या। दोनो का जोडा है। दोनो विद्याए रथ के दो पहियो के समान हैं। जीवन–रथ को सफलता के मार्ग पर चलाने के लिए दोनो मे से किसी भी एक के बिना काम नही चल सकता। अलबत्ता बुढापे मे शस्त्रविद्या काम नही आती। उस समय तो हाथ शस्त्र का भार भी वहन करने मे असमर्थ हो जाते हैं। शास्त्रविद्या जीवन के अन्त तक काम आती है। शास्त्रविद्या आत्मा की खुराक है और शस्त्रविद्या शरीर की खुराक है। शरीर के अभाव मे आत्मा कार्यकारी नही रहती और आत्मा के अभाव मे शरीर की कीमत ही क्या है? अतएव राजकुमारो को दोनो विद्याए सिखलानी चाहिए। केवल शस्त्रविद्या सिखाना गुडापन सिखाना है।

भीष्म बोले– तुम्हारा विचार उत्तम है विदुर राजकुमारो को दोनो ही विद्याए सीखनी चाहिए। दोनो विद्याओ की ओर अपनी परम्परा को जानने

वाले द्रोणाचार्य है, पर उनका पता नही है। जब तक उनका पता नहीं चलता तब तक कृपाचार्य के द्वारा ही इनकी शिक्षाविधि होनी चाहिए।

साधारण लोगो की धारणा है कि शिक्षा सिर्फ पाठशाला मे मिलती है और घर पर नही मिलती। परन्तु यह धारणा भ्रमपूर्ण है। शिक्षा का आरम्भ माता की गोद से ही हो जाता है। बल्कि सच्ची शिक्षिका माता ही है। शिवाजी कोई राजकुमार नहीं थे। साधारण स्थिति के माता–पिता के घर वे उत्पन्न हुए थे। फिर भी उनकी माता ने उन्हे रामायण और महाभारत पढाकर वीर बना दिया और वीर भी ऐसा कि जिसके विषय मे कहा जाता है–

शिवाजी न होते तो सुन्नत होती सबकी।

नैपोलियन भी अपनी वीरता के लिए माता का ही आभारी था। मातृशिक्षा का वास्तव मे बडा महत्व है। किन्तु लोगो की दृष्टि प्राय पाठशाला की ओर ही लगी रहती है। पाठशाला मे इतने अधिक बालक इकट्ठे होते हैं कि न तो प्रत्येक की रुचि और शक्ति का पूरा–पूरा ख्याल किया जा सकता है और न कुलधर्म ही वहा सिखलाया जाता है। इस कारण पाठशाला की शिक्षा का परिणाम कभी–कभी उलटा निकलता है। अतएव आठ वर्ष तक माता–पिता को स्वय ही अपनी सतान को शिक्षा देनी चाहिए। सतान को शिक्षा देने के लिए माता–पिता को अपने जीवन–व्यवहार की सरलता और शुद्धता का ध्यान रखना चाहिए। बालक माता–पिता के कहने को उतना नही सीखता जितना उनके 'करने' को सीखता है। तुकाराम कहते हैं–

आई बाप जरी सर्पिणी के बोका।

त्याचे सगे सुखा न पावे बाल।।

अर्थात्–जिसकी माता नागिन–सी ओर वाप विलाव–सा हे उस बालक के लिए केसा परिणाम होगा? नागिन अपने अण्डे खा जाती हे और विलाव अपने बच्चे खा जाता हे। ऐसे मा–बाप से बालक सुखी केसे हो सकता हे? ओर क्या सबक सीख सकता हे?

नागिन और बिलाव को ज्ञान नही समझाया जा सकता। ज्ञान तो मनुष्य को ही समझाया जा सकता हे। फिर भी मनुष्य के रूप मे भी माता नागिन–सी ओर पिता विलाव–सा होता हे।

भीष्म ने विचार किया कि वालको को विद्या के नाम पर विष दना उचित नहीं ह। अतएव योग्य शिक्षक का चुनाव करना चाहिए। अगर शिक्षक योग्य न हुआ तो वालका की वुद्धि ओर शक्ति नष्ट हा जाती हे। अतएव सवरा पहले याग्य शिक्षक खाजना आवश्यक हे।

सब तरह सोच–विचार कर भीष्म ने कृपाचार्य से राजकुमारो को शिक्षा दिलाना उचित समझा। कृपाचार्य कुलीन ब्राह्मण थे। भीष्म ने उनका आचरण भी देख लिया था और वह समझते थे कि कृपाचार्य की शिक्षा से हमारे कुल का गौरव बढेगा।

भीष्म ने कृपाचार्य को बुलाकर उन्हे राजकुमार सौप दिये। कृपाचार्य उन्हे शिक्षा देने लगे और भीष्म भी उन पर निगरानी रखने लगे।

6 द्रोणाचार्य

द्रोण भारद्वाज के पुत्र थे। भारद्वाज का वश भारद्वाजी कहलाता है। द्रोण गगा के तट पर अग्निवेष ऋषि से विद्याध्ययन करते थे। पाचाल देश के राजकुमार द्रुपद भी इन्ही ऋषि से शिक्षा ग्रहण करते थे। दोनो मे घनी मित्रता थी। इन दोनो का मेल ऐसा जान पडता जैसे ब्रह्मतेज और राजतेज का समन्वय हो। दोनो मे ही अपना–अपना तेज बढता जा रहा था, किन्तु साथ रहने के कारण दोनो का अन्त करण एक–सा हो गया था। दोनो तीव्रबुद्धि सहपाठियो की मित्रता के कारण एक दूसरे को पढने मे भी बडी सहूलियत होती थी। दोनो विद्याओ मे पारगत हो गए। मगर द्रोण का कौशल असाधारण था।

द्रुपद और द्रोण अग्निवेष ऋषि से शिक्षा प्राप्त करके अपने–अपने घर लौटने लगे। वर्षो के सहवास, सहपठन और मैत्री के कारण दोनो का हृदय भर आया। विदा होते समय द्रुपद ने कहा–बन्धु, इस समय विदा दो। हम लोग अब जुदा हो रहे हैं, मगर यह जुदाई सदा के लिए नही होगी। तुम्हारे बिना, मुझे लगता है कि मैं पूरा नही, अधूरा हू। अतएव हम लोग अवश्य ही फिर मिलेगे। मैं तुम्हारी मित्रता को भूल नहीं सकता। मैं इतना कृतघ्न नहीं होऊगा कि तुम्हे भूल सकू। अपनी प्रीति को स्थिर रखने के लिए, राज्य मिलने पर मैं आधे सिहासन पर तुम्हे बिठलाऊगा और आधे राज्य का स्वामी बना दूगा।

द्रोण ने कहा–राजकुमार मुझ जेसे अकिचन ब्राह्मण–पुत्र के लिए तुम्हारे स्नेह का मूल्य भी बहुत हे। में तुम्हारे सद्भाव के लिए कृतज्ञ हू। पर राज्य देने की प्रतिज्ञा मत करो। इस समय स्नेह के आवेश मे प्रतिज्ञा कर लेना सरल हे, उसका निभाना कठिन हो सकता है। हम तो ब्राह्मण हें राज्य के भूखे नही हैं। राज्य मिला तो क्या ओर न मिला तो क्या? लेकिन तुम्हारा प्रतिज्ञा करना उचित नही हे।

द्रुपद वोला–मेंने आवेश मे प्रतिज्ञा नही की हे। तुम्हारा ओर मेरा सवध राहगीरो के परिचय जेसा उथला नही हे जिसके होने म भी देर नही लगती ओर विगडने मे भी। तुम्हारा स्थान तो मेरे हृदय मे हे। जो पूरे हृदय मे आसन जमा वेठा हे उसे सिहासन के आधे भाग मे विठलाना कोन–सी वडी वात हे? में अपनी प्रतिज्ञा अवश्य निभाऊगा। मे वचन दता हू।

द्राण न कहा–ता भाई तुम्हारी मर्जी।

इस पकार द्रोण को वचन देकर द्रुपद अपने घर के लिए रवाना हुआ। द्रोण भी अपने घर की ओर चल दिये। पाचाल के राजा बूढे हो गए थे। द्रुपद जब विद्या और कला मे कुशल होकर पहुचा तो राजा को बडा सन्तोष मिला। उसने अपने सिर का भार द्रुपद पर डाल दिया। द्रुपद राजा हो गया और राज्य का सचालन करने लगा।

द्रोण के पिता भारद्वाज गरीब ब्राह्मण थे। द्रोण अपने पिता के पास पहुचे तो पिता को मानो कुबेर का खजाना मिल गया। द्रोण को पाकर वह निहाल हो गया।

गौतमवशी शर्दवान के एक पुत्र था और एक पुत्री। पुत्र का नाम कृप और पुत्री का नाम कृपी था। कृप पढ–लिखकर आचार्य हुआ, जो कृपाचार्य के नाम से विख्यात हुआ। कृपी का विवाह द्रोण के साथ हुआ। द्रोण और कृपी से अश्वत्थामा नामक एक बालक हुआ जो बहुत गुणवान् और बलवान् निकला। अश्वत्थामा जब छोटा था तभी भारद्वाज चल बसे थे। द्रोण, कृपी और अश्वत्थामा– तीन आदमी परिवार मे थे लेकिन गरीबी का कष्ट उन्हे बेहद सता रहा था।

द्रोण अपनी दरिद्रता देखकर कभी–कभी ऊब उठते। वह सोचते क्या करना चाहिए? कहा जाना चाहिए? विद्या पढकर नीचो की सेवा करना तो उचित नही है। और धन आप ही आप कहीं से आ नहीं सकता। पत्नी कुलीन है इसीसे वह जैसे–तैसे पति और पुत्र का पेट भरती है परन्तु मैं पत्नी का पेट नही भर सकता यह मेरे लिए लज्जा की बात है।

इस तरह सोचते–सोचते द्रोण घबरा उठे। अन्त मे उन्होने किसी की शरण मे जाने का निश्चय किया। इतने मे ही उन्होने सुना कि परशुराम राजपाट छोडकर वन जाने वाले हैं। द्रोण विचारने लगे कि परशुराम जब वन जा रहे है तो उनका सहज ही देना होगा और मेरा सहज ही लेना होगा। ऐसे पवित्रात्मा से याचना करना भी बुरा नही है।

द्रोण परशुराम के पास पहुचे। परन्तु इनके पहुचने से पहले ही वह अपना राजपाट लुटा चुके थे। द्रोण के पहुचने पर परशुराम ने पूछा–ब्राह्मण अपने आने का पयोजन बताओ।

द्रोण–दारिद्रय से पीडित होकर ही आपके पास आया था।

परशुराम–मै सब कुछ दे चुका हू। अब मेरे पास देने योग्य कुछ नही रहा लेकिन याचना करने के लिए आये हुए को मना करना मैं नही जानता।

अब मेरे पास यह शरीर है। मैंने अपनी विद्या अभी तक किसी को नहीं दी है। तुम चाहो तो विद्या मैं दे सकता हू।

द्रोण–आपके अनुग्रह का आभारी हू। मै विद्या लेकर ही सन्तुष्ट हो जाऊगा।

द्रोण परशुराम से विद्या सीखने लगे। विद्या सीखकर जब घर लौटे तो वही पुरानी समस्या फिर सामने खडी हुई। द्रोण अब अधिक विद्वान हो गये थे, मगर उदरपूर्ति के काम विद्या नहीं आ सकती थी। पेट विद्या नहीं मागता, रोटी मागता है।

इसी बीच एक घटना और घट गई। अश्वत्थामा लडको के साथ खेल रहा था। दोपहर के समय लडके खेल बन्द करके अपने घर जाने लगे। अश्वत्थामा ने उनसे पूछा– तुम सब खेल छोडकर कहा जा रहे हो? लडको ने कहा–दूध पीने का वक्त हो गया है, घर जाएगे और दूध पीयेगे। अश्वत्थामा ने पूछा–क्या तुम लोग रोज दूध पीते हो? लडको के हा कहने पर अश्वत्थामा ने कहा–मैं भी घर जाकर मा से दूध मागूगा।

अश्वत्थामा सीधा घर पहुचा। उसने द्रोण से कहा–पिताजी सब लडके दूध पीते हैं। मुझे दूध क्यो नही पिलाते?

बालक खाने–पीने की चीज मागता हो, उसके लिए हठ करता हो ओर माता–पिता दरिद्रता के कारण खिलाने–पिलाने मे असमर्थ हो तो उस समय मा–बाप के कलेजे मे कितना कष्ट होता है, यह कल्पना भी कठिन है। उस घोर व्यथा की कल्पना वे ही कर सकते हैं जो उस स्थिति का अनुभव कर चुके हैं। उस समय की विवशता बडी गहरी होती हे मानो कलेजे पर किसी ने करोत चला दी हो। बडे–बडे साहसी भी उस स्थिति मे चचल हो जाते हैं अधीर हो उठते हैं, उन्हे अपने ऊपर घृणा का भाव उत्पन्न होता है और वे जिस समाज मे रहते हैं उस समाज के विरुद्ध विद्रोह करने पर उतारू हो जाते है।

अश्वत्थामा की माग से द्रोण का दिल द्रवित हो गया। दु ख असह्य होने पर भी वे विवश थे। वे सोचने लगे मेरी विद्या ओर बुद्धि का क्या फल ह? मैंने अपना जीवन विद्याध्ययन मे विता दिया और बच्चा जरा–से दूध के लिए तरस रहा हे। गाय कहा से लावे ओर वच्चे को दूध केसे पिलावे? यहा रोटियो का भी ठिकाना नहीं हे। ससार की दशा तो देखो जो विद्या की प्रशसा करते–करते नही थकता ओर विद्वाना की ऐसी दुर्दशा हाती हे। लागा का यह क्या नही सूझता कि विद्या विद्वानो क सहार टिकी हुई ह तो विद्या का आदर

करने के लिए विद्वानो की भी चिन्ता करे? विद्वानो का कर्त्तव्य नवीन विद्या उपार्जन करना और सीखी हुई विद्या दूसरो को देना है। नमक–मिर्च की चिन्ता उन्हे करनी पडती है तो विद्या का विकास किस प्रकार हो सकता है? धनी लोग चाहते हैं कि विद्वान् उनके सामने अपना मत्था टेके, पर द्रोण किसी भी हालत मे अपनी विद्या का अपमान नही होने देगा।

द्रोण इस पकार की विचारधारा मे बहे जा रहे थे, तभी अश्वत्थामा ने फिर तकाजा किया पिताजी आज तो मैं जरूर दूध पीऊगा। नही मानूगा, नही मानूगा।

द्रोण को जैसे एक साथ सौ बिच्छुओ ने काट खाया। द्रोण ने सोचा–किसी प्रकार बालक को समझाना होगा। इसने अभी तक माता का ही दूध जाना है। गाय–भैंस का दूध बेचारा जानता ही नही है। इसलिए कोई बहाना करके इसे समझा लेना ही उचित है। यह सोचकर द्रोण ने कहा–अच्छे बच्चे ठहर जा। अभी दूध पिलाता हू।

इतना कहकर द्रोण घर के भीतर घुसे। उन्होने एक कटोरे मे पानी लिया। पानी मे आटा घोला। घोलकर उसे हिला दिया। पानी जब सफेद हो गया तो बालक के सामने ले आये और बोले– ले बेटा, दूध पी ले।

अश्वत्थामा प्रसन्न होता हुआ पानी मे घुला आटा दूध समझ कर पी गया। वह फिर बच्चो मे जाकर खेलने लगा। वह कहने लगा–मैं भी दूध पी आया हू।

बालक प्रसन्न था और द्रोण? द्रोण का हृदय आहत हो रहा था।

मित्रो! क्या द्रोण मे इतना सामर्थ्य नही था कि इतने विद्वान् होकर भी गरीबी की ऐसी हालत मे रहे,? वे खेती कर सकते थे या गाय–भैंस का पालन कर लेते जिससे भली–भाति निर्वाह हो जाता। आप शायद कह देगे कि द्रोण आलसी और उद्यमहीन थे। वे पढे–लिखे मूर्ख थे। ऐसी विद्या किस काम की जिससे भरपेट खाने को भी न मिले। परन्तु इस बात को अपने काटे पर मत तोलो। उन विद्वानो की बातो को उन्ही सरीखे किसी महापुरुष की बातो से ही तोलो। तभी उनका वजन मालूम होगा।

महाराणा–प्रताप जैसे वीर–केशरी ने सिहासन पर बैठ करके भी कितनी मुसीबते उठाई वे जगल–जगल भटकते फिरे घास की रोटिया खानी पडी। उनकी कन्या को आधी रोटी के लिए रोना पडा। क्या महाराणा भी उद्यमहीन थे? उन्होने खेती क्यो नही कर ली जिससे जीवन तो आराम से बीत जाता?

मै कहता हू—वह स्वभाव का धनी पुरुष था। वह ऐसा कर लेता तो उसका गौरव ही मारा जाता। बडे पुरुष बडे कार्य ही करते हैं, तुच्छ कार्यो मे वे अपनी शक्ति और समय नही लगाते। ऐसा करने मे उनका गोरव भी नहीं है।

महाराणा प्रताप अगर अकबर के सामने झुक जाते तो उन्हे किस चीज की कमी रह जाती है? लेकिन वे क्यो नहीं झुके? इसका कारण यही है कि वे आत्मगौरव के धनी थे। सब कष्टो को तुच्छ और आत्मगौरव को बडा मानते थे।

द्रोण भी अपनी आजीविका के लिए जो चाहते सो कर सकते थे। मगर साधारण कार्य करने मे उन्होने अपनी शक्ति त्यागना उचित नहीं समझा। वे उस समय के अद्वितीय विद्वान थे। शस्त्रविद्या और शास्त्रविद्या मे वे असाधारण थे। उन्होने स्व–मान की रक्षा के लिए बहुत कष्ट उठाये। आखिर दरिद्रता के दु ख से वे व्याकुल हो उठे। दरिद्रता ने उनके दूसरे से न मागने के अभिमान को चूर कर दिया।

एक दिन द्रोण को ध्यान आया कि मेरा मित्र द्रुपद राजा हो गया है फिर मुझे वृथा कष्ट उठाने से क्या प्रयोजन है? उसने मुझे आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा की है। क्यो न में उसके पास चला जाऊ? यह अवश्य ही मेरे दु ख को दूर करेगा।

द्रोण ने पाचाल की ओर प्रस्थान किया। वे पाचाल की राजधानी मे जा पहुचे। राजमहल के द्वार पर जाकर उन्होने द्वारपाल से कहा—महाराज से जाकर कह दो कि आपका मित्र द्रोण आपसे भेट करने आया है।

पहरेदार ने जाकर द्रुपद से सब वृत्तात कह दिया। राजा सोचने लगा—यह द्रोण कौन हे? 'द्रोण' शब्द का अर्थ क्या हे? मे तो उसे नही पहचानता। सामने आने पर शायद पहचान लू। ओर राजा ने द्वारपाल से कहा—अन्दर आने दो।

द्वारपाल ने द्रोण को भीतर भेज दिया। द्रोण सोचते थे कि मेरा नाम सुनते ही राजा दोडा आएगा। मगर उसे सामने न आया देख द्रोण मन ही मन अपमान अनुभव करने लगे। फिर सोचा—वह राजा हो गया हे कोई हर्ज नही। मैं वही जाकर मिलता हू।

द्रोण राजा के सामने पहुचे। द्रोण का वेष दरिद्रता का प्रतीक था। द्रुपद क आग दरिद्रता का चित्र खिच गया। फिर भी द्राण क चहर पर जा विशिष्ट तेज था उससे द्रुपद को यह समझने म देर न लगी कि यह काई सामान्य पुरुष नही हे। द्राण न जात ही कहा—मित्र कुशलतापूर्वक ता हा?

द्रुपद—द्रोण! तुम्हारा यहा कैसे आना हुआ?

द्रोण—मुझ पर बडी मुसीबत आ पडी है। दु ख के बादलो से घिर गया हू। आप ही मेरा दु ख दूर कर सकते है। दूसरे के सामने जाकर तो मै अपनी कष्टकथा कहना भी उचित नही समझता।

तुलसी पर घर जायके कभी न दीजे रोय।
भरम गवावे गाठ को, बाट सके नहि कोय।।

द्रोण कहने लगे—आप मेरे परम मित्र हैं। इसीलिए मैं आपके पास आया हू। इस कष्ट मे और किसके पास जाता?

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिये चारी।।

मित्र! आपने मुझे आधा राज्य देने का वचन दिया था। अब उस वचन को पूरा कीजिए।

द्रोण की बाते सुनकर द्रुपद सोचने लगा—अच्छा हुआ, मैंने इसे मित्र शब्द से सबोधित नही किया। राजा लोगो को बहुत सोच—विचार कर ही बोलना चाहिए। मैं इसे मित्र कह देता तो यह अभी मेरे गले पड जाता।

उसने कहा—अरे ब्राह्मण! क्या तेरी मति मारी गई है? बहकी—बहकी बाते क्यो बना रहा है? मैं तो यह भी नही जानता कि तू कौन है? और तू मुझे मित्र—मित्र कह रहा है। जानता भी है, मैं कौन हूं? मैं और तुझ दरिद्र का मित्र! मुझसे आधा राज्य मागने चला है सो राज्य मिलना क्या बच्चो का खेल है? राज्य ऐसी चीज नही है जो राह चलते भिखारी को दे दिया जाय। खून बहाने पर राज्य आता है। ब्राह्मण तिस पर तू मेरे ऊपर प्रतिज्ञा का बोझ लादता है। तू बहक तो नही गया? जरा होश मे आ। किसके आगे क्या कह रहा है?

द्रुपद की निष्ठुरता भरी बाते सुनकर द्रोण भौंचक्के रह गये। उन्हे स्वप्न मे भी आशा नही थी कि वह इतना बदल जाएगा। द्रोण अपमान के मारे भीतर ही भीतर जलने लगे। लेकिन समल कर बोले—मित्र ठीक है। इसमे आपका दोष नही है। दोष है तो सम्पत्ति का। सम्पत्ति मिल जाने पर पुरुष को तीन बाते पसन्द नही आती—पुराना मित्र पुराना मकान और पुरानी पत्नी। आप मुझे पहचानते नही हैं? क्या आपने मेरे साथ अग्निवेष ऋषि से विद्याध्ययन नही किया है? क्या हम दोनो सहपाठी नही रहे हैं? मैंने आपको अध्ययन मे कुछ भी सहायता नही पहुचाई थी? उस समय हम दोनो एक—प्राण होकर रहे थे। लेकिन आज राजवैभव पाकर वह सब भूल गये?

द्रुपद मन मे सब समझ चुका था। फिर भी वह अनजान बनकर कहने लगा—तुम इतने विद्वान हो मगर ज्ञानी नही हो। तुम्हारे साथ मेरी मित्रता किस

प्रकार हो सकती हे? प्रीति, बैर और सगाई तो वराबरी वालो के साथ होती है। रथ के दोनो पहिये बराबर न हो तो रथ कैसे चल सकता हे? अव तुम्हीं सोचो कि तुम दरिद्र भिखारी हो ओर मैं राजा हू। तुम्हारे साथ मेरी मित्रता केसे होगी?

दूसरी बात यह भी है कि अगर बचपन मे वचन दे भी दिया हो तो बचपन के वचन का सयानेपन मे पालन नहीं किया जा सकता। बालको की बाते बालपन के साथ खत्म हो गईं। ऐसी स्थिति मे आधा राज्य मागते हुए तुम्हे सकोच नहीं है, लज्जा नही है? अव अपना भला चाहो तो चुपचाप यहा से चल दो। मैं तुम्हारे साथ अधिक बात नही करना चाहता।

घोर अपमान से द्रोण पीडित हो गये। वे सोचने लगे—अब क्या करना चाहिए? बराबरी की मित्रता का अर्थ तो यही है कि मैं भी राजा बनू, तब यह मेरे साथ मित्रता करेगा और बचपन मे दिये वचन का अब पालन नहीं किया जा सकता, यह कहना भी सही समझना चाहिए। इसमे कानून से कोई उज्र नही किया जा सकता। कानून की दृष्टि से मैं हार गया हू।

द्रोण का हृदय क्रोध से प्रज्वलित हो उठा। शरीर कापने लगा और भृकुटि चढ गई। द्रोण ने कहा—'तुम्हारी और मेरी मित्रता का जोड किस प्रकार जुड सकता है, यह बात मैं अभी खोलकर नही कह सकता। लेकिन याद रखना अगर मुझमे कुछ भी पुरुषार्थ है ओर विद्या का बल हे तो मैं तुझे अपने शिष्यो के द्वारा हाथ बधवाकर मगवाऊगा। तू मेरे पैरो मे पडकर अपने अपराध के लिए पश्चात्ताप करेगा ओर क्षमा की भीख मागने के लिए गिडगिडाएगा। मेंने ऐसा न किया तो समझ लेना मेरा नाम द्रोण नही।

द्रोण इतना कहकर लोटने को तेयार हुआ ही था कि द्रुपद ने अपने सिपाहियो से कहा—इसे धक्के देकर बाहर निकाल दो।

द्रोण—'मुझे बाहर निकालने की आवश्यकता ही क्या हे? में तो खुद ही जा रहा हू। इतना कहकर द्रोण तेजी के साथ चल दिया।

द्रुपद—जाने दो वह हमारा क्या बिगाड सकता हे?

द्रुपद ऊपर से दृढ होने पर भी भीतर ही भीतर भय के कारण काप उठा। वह सोचने लगा—हाय मेने यह क्या किया? द्रोण वडा विद्वान हे कोन जाने क्या विपत्ति ल आएगा? लेकिन अव कोई उपाय भी नहीं ह।

द्रोण वहा स चलकर विचारने लग—अव मुझे कहा जाना चाहिए ओर क्या करना चाहिए?

अभी तक द्रोण के सामने एक ही प्रश्न था—कुटुम्ब का पालन कैसे किया जाय? अब दूसरी समस्या यह उत्पन्न हो गई कि इस अपमान का बदला किस प्रकार लिया जाय? इस प्रकार दोहरा बोझ लिए द्रोण वहा से लौट रहा था।

द्रोण ने निश्चय किया—'मेरा साला कृपाचार्य कौरवो और पाण्डवो को पढाता है। मुझे वही जाना चाहिए। भीष्म पितामह ही मेरे दर्द को जानेगे। उनमे क्षात्र तेज है। मुझे उन्ही की शरण मे जाना चाहिए।' द्रोण हस्तिनापुर की ओर चल दिया।

अभिमान मनुष्य का भयानक शत्रु है। सम्पत्ति पाकर जो अभिमान मे चूर हो जाते है उन्हे एक न एक दिन घोर पश्चात्ताप करना ही पडता है। एक कवि ने कहा है—

सज्जन सम्पति पाय कै, बडो न कीजे चित्त।
तीनो को न विसारिये, हरि नारी अरु मित्त।।

उपकारी के उपकार को भूल जाना बडी भारी कृतघ्नता है। जरा विचार करो कि माता—पिता और गुरु का तुम्हारे ऊपर कितना ऋण है? उन्होने तुम्हारे ऊपर असीम उपकार किया है। आज वे कितने वृद्ध हो गये है। उनमे अच्छी तरह चलने—फिरने की भी शक्ति नहीं रही है। ऐसे समय मे क्या उनकी सेवा नही करनी चाहिए? क्या मनुष्य की मनुष्यता उनके प्रति कृतघ्न होने से कायम रह सकती है?

मैं तो यह कहता हू कि माता—पिता की सेवा तो करनी ही चाहिए और ऐसा करने मे मनुष्यता की क्या विशेषता है? विशेषता तो तब है जब अपने अपकारी (शत्रु) के साथ भी उपकार किया जाय। द्रोण ने क्रोध मे आकर द्रुपद का अपकार करने की प्रतिज्ञा की। यह कोई श्लाघनीय बात नही हे। क्रोध का बदला क्रोध से चुकाना उचित नही है। क्रोध का बदला क्षमा के द्वारा लेने मे ही प्रशसा है। यह आध्यात्मिक विद्या का काम है। सत्पुरुष वे कहलाते है जो अपने शत्रु का अपकार न करने की ही भावना रखते है। कहा भी है—

एते सत्पुरुषा परार्थघटका स्वार्थान् परित्यज्य ये।
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृता स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसा परहित स्वार्थाय विघ्नति ये।
ये तु घ्नन्ति निरर्थक परहित ते के न जानीमहे?।।

अर्थात जो पुरुष अपना सर्वस्व लगाकर भी दूसरे का उपकार करते है वे सत्पुरुष है। जो अपना स्वार्थ साधता हुआ भी दूसरो का अपकार नही

करता और मोका मिलने पर परोपकार भी करता हे वह मध्यम पुरुष हे। जो अपने स्वार्थ की साधना करना ही जानता हे और दूसरो के कार्य को बिगाड कर भी अपना स्वार्थ सिद्ध करता है वह मनुष्य–रूप राक्षस हे। परन्तु जो निरर्थक ही दूसरो के कार्य को बिगाडता हे, उसे क्या कहा जाय? किससे उसकी उपमा दी जाय?

कवि को भी यह चिन्ता हुई। उसे उनके लिए कोई उपयुक्त शब्द नही मिला। इसलिए उसने कह दिया–

ते के न जानीमहे।

हमे सूझ नही पडता कि ऐसे लोगो को क्या उपमा देनी चाहिए।

कहने का आशय यह है कि अपना स्वार्थ त्याग करके भी दूसरो का उपकार करना चाहिए। अगर परोपकार न बन सके तो कम से कम अपने स्वार्थ के लिए दूसरे के कार्य को तो हानि मत पहुचाओ। जो पुरुष हृदय मे धर्म रखकर दूसरो का उपकार करेगा वह परम कल्याण का भागी होगा।

प्राचीन भारतीय राजनीति–शास्त्र मे त्रयी वार्त्ता दण्ड नीति ओर आन्वीक्षिकी, ये चार प्रकार की विद्याए कही गई हैं। इनके विषय मे वर्णन का तो अवकाश नही है, फिर भी सक्षेप मे दण्डनीति के विषय मे कुछ विचार प्रकट करना हे।

कोरव ओर पाण्डव दण्डनीति का अभ्यास कर रहे हैं। ससार की रक्षा करने के लिए दण्डनीति की भी आवश्यकता हुआ करती हे फिर भी उसके भीतर दया ओर करुणा का होना आवश्यक है। दया ओर करुणा के विना दण्डनीति राक्षसी नीति बन जाती हे। महावत हाथी को वश मे करने के लिए अकुश का प्रयोग करता हे किन्तु समय पर हाथी को खिलाता–पिलाता भी हे। महावत समय पर हाथी को खाना–पीना न दे ओर अकुश ही लगाता रह तो हाथी मर जायगा या महावत के विरुद्ध विद्रोह कर बेठेगा। हाथी के साथ ऐसा कठोर व्यवहार करने वाला महावत महावत नही कहला सकता। वह कसाई व चाण्डाल कहा जायगा। इसी प्रकार राजा प्रजा को वश म रखने के लिए दण्डनीति का प्रयोग करता हे परन्तु यदि वह दण्डनीति का प्रयाग करता रहे ओर प्रजा के हित का तनिक भी विचार न कर ता उरा राजा केरो कहा जा सकता ह?

जव अपराधी का कारागार म वन्द कर दिया जाता ह ता उराक खान–पीन आदि की जिम्मदारी राज्याधिकारिया पर आ जाती हे। अगर व

कैदी के खान–पान का उचित पबन्ध न करे तो स्वय अपराधी ठहरते हैं। यह विषय यही समाप्त किया जाता है।

पाण्डवो और कौरवो ने कृपाचार्य की विद्या थोडे ही दिनो मे सीख ली। अतएव भीष्म पितामह को चिन्ता हुई कि अब राजकुमारो के लिए किसी उच्च कोटि के विद्वान् की व्यवस्था करनी चाहिए। बडे तालाब बडी नदियो के बिना नही भरते। उन्हे भरने के लिए बडी नदी चाहिए। इसी प्रकार इन महान् पतिभाप्रज्ञा वाले पाण्डवो और कौरवो के लिए किसी महान् विद्वान की आवश्यकता है जिससे वे शस्त्र आदि की विद्याओ मे पूरी तरह प्रवीण हो जाए।

द्रोण की कीर्ति जग जानी गागेयजी यो मन मे ठानी।
मुझे यदि मिले द्रोण ज्ञानी, पुत्रो को उनसे सिखलाऊ।
धनुर्धर पूरा बनवाऊ मेरी जान धरम चित्त धर रे।

उस समय भी द्रोण की कीर्ति सर्वत्र फैल चुकी थी। भीष्म पितामह के कानो मे भी उनकी कीर्ति पहुची। वे द्रोण की खोज मे रहने लगे। राजा लोग दक्ष हुआ करते हैं। वे जागरूक कहलाते हैं। चाहे वे सोते हो या जागते हो कर्त्तव्य का ध्यान उन्हे सदैव बना रहता है।

दारू पीकर और दूसरी नशीली चीजो का सेवन करके पडे रहना तथा बेभान होकर अपने कर्त्तव्य को भूल जाना राजाओ का कर्त्तव्य नही है। जो राजा अपने कर्त्तव्य को भूल जाते हैं, उन पर घोर सकटो और आपत्तियो के पहाड टूट पडते हैं। मेवाड के महाराणा स्वरूपसिह ने जब शराब का त्याग कर दिया तो उनके विषय मे किसी कवि ने कहा था–

एश वेश जाण्यो नही धार्यो धर्म अनूप।
पाप जान मदपान को, छाडे राण स्वरूप।

इधर भीष्म पितामह द्रोण की खोज मे थे और उधर द्रुपद से खटक जाने के कारण द्रोण कृपाचार्य के पास आ पहुचे। उन्हे भी पितामह भीष्म की खोज थी।

उधर से द्रोण गुरु आये, कुए से गेद बाहर लाये।
चातुरी से अचरज पाये, कुवर सब भीष्म पै आये।
हकीकत सुन कर हरसाये मेरी जान धरम चित्त धर रे।

यो तो कृपाचार्य भी बडे विद्वान थे पर उनकी समस्त विद्या राजकुमार पी चुके थे। कृपाचार्य स्वय चाहते थे कि कोई विशेष ज्ञानी आकर इन राजकुमारो को शिक्षा दे तो अच्छा हो। कृपाचार्य उदार विद्वान थे और इसलिए वे विद्वानो की कद्र जानते थे। कहा भी है–

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्।

अर्थात्–विद्वानो के परिश्रम को विद्वान ही समझ सकता है। जो स्वय विद्वान नही है, जिसे विद्या की वास्तविक महिमा मालूम नही हे वह वेचारा विद्वानो की क्या कद्र करेगा?

कृपाचार्य ने सामने आते हुए एक पुरुष को देखा। श्याम शरीर और सुन्दर तथा तेजोमय उसकी मुखाकृति थी। उसकी वेष–भूषा और यज्ञोपवीत से जाना जा सकता था कि वह कोई ब्राह्मण है। उसके वस्त्र सादे थे। हाथ मे धनुष था। उसकी तेजस्विता ही प्रकट कर देती थी कि वह कोई महान आत्मा है।

द्रोण समीप से समीपतर आ पहुचे। निकट आते ही कृपाचार्य की दृष्टि उन पर पडी। वे अपने बहनोई का स्वागत करने के लिए आगे बढे। प्रेम के साथ मिले, यथोचित आदर–सत्कार करके उन्हे उच्च आसन पर बिठाया।

कोई क्षुद्र हृदय का विद्वान् होता तो ईर्ष्या के कारण जल उठता। वह सोचने लगता–मेरा अधिकार छीनने वाला यह क्यो आ धमका है? मेरे चेले किसी दूसरे को गुरु बनाए यह तो बहुत अनुचित बात होगी। कहीं मेरे शिष्य ही मुझसे आगे न बढ जाए?

कृपाचार्य का हृदय ऐसा सकीर्ण नहीं था। उन्होने कहा–महाराज! इस समय आपका पधारना बहुत अनुकूल रहा। मेरा काम पूरा हो चुका है। मैंने क्षेत्र तेयार कर दिया है, अब आप बीज बोइए। नीव मैंने डाल दी है आप इमारत खडी कीजिए। अब आपका कार्य आरम्भ होना चाहिए।

कृपाचार्य की बात सुनकर द्रोण गद्‌गद् हो गये। वे सोचने लगे–में सोच रहा था कि अव कहा जाना चाहिए? लेकिन प्रकृति की शक्ति गजव की होती हे।

द्रोण ने कृपाचार्य से कहा–आप भी कोई साधारण व्यक्ति नही हैं। मेरा अतिथि–सत्कार करना आपका धर्म हे। आपके यहा रहूगा लेकिन मे इतना अवश्य चाहता हू कि आप मेरी कही भी चर्चा न कीजिए। आप भीष्मजी के पास जाकर मेरा परिचय दे ओर तव वे मुझे बुलावे इसम म अपमान समझता हू। वे स्वय ही मुझे वुलावे या अपनी विभूति से मे प्रकट हाऊ यही अच्छा ह।

कृपाचार्य द्रोण की वात का महत्व समझ गए। उन्हान उनक आगमन की चर्चा न करन की स्वीकृति द दी।

फटे–पुराने वस्त्र है और परिवार की चिता सिर पर सवार है। फिर भी द्रोण मे कितना आत्म–गौरव है? स्वभाव के धनी ऐसे ही होते है। द्रोण ने निश्चय कर लिया कि वे भीष्म के पास बिना बुलाये नही जाएगे।

एक दिन कौरव और पाण्डव गेद खेल रहे थे। गेद का खेल बहुत पुराना है। पाचीन कवियो ने कन्दुक–क्रीडा का बहुत सुन्दर रीति से वर्णन किया है परन्तु यह सब पाय सस्कृत भाषा मे है। आजकल बेचारी सस्कृत भाषा को कौन पूछता है? अब यह मृतभाषा कहलाती है और अग्रेजी भाषा पढने मे ही लोग गौरव अनुभव करते हैं। वे समझते हैं कि हमारे देश की पाचीन भाषाओ मे कोई सार ही नही है। लोगो को यह मालूम ही नही कि हमारी वस्तु ही हमे रूपान्तर करके वापिस दी जा रही है।

खेलते–खेलते गेद एक कुए मे जा गिरी। सभी राजकुमार सोचने लगे कौन इस अन्धकूप मे उतरे? लेकिन गेद के बिना खेल का सारा मजा ही किरकिरा हो गया।

सोचना चाहिए कि राजकुमारो को गेदो की क्या कमी थी? चाहते तो एक नही सौ गेद उसी समय हाजिर हो जाती। परन्तु वे उसी गेद को निकालने की बात सोचने लगे। इसमे कोई गुप्त रहस्य की बात ही होनी चाहिए।

जिसने गेद कुए मे डाली थी उससे दूसरा कहने लगा–तुम्ही गेद निकालो। तुम्हीं ने डाली है।

तीसरे ने कहा–हा ठीक तो है। जिसने डाली है, वही निकाले। डालने वाला ही निकालने के लिए जिम्मेदार है।

चौथे ने कहा–तुम्हे ध्यान रखकर गेद मे दोटा (टोरा) लगाना चाहिए। गेद को पकडकर बैठे रहने से भी खेल का मजा बिगड जाता है और अनुचित स्थान पर फैक देने से भी। उचित स्थान पर ही उसे डालना ठीक रहता हे। यह गेद के लिए ही नही राजलक्ष्मी के लिए भी ऐसी ही बात है। उसे पकड बैठे रहने से ससार के खेल का मजा बिगड जाता है और अस्थान मे डालने से भी। देखो न राम और भरत ने राजलक्ष्मी को गेद बनाकर कैसा बढिया खेल खेला था? राम उसे भरत के पास भेजते थे और भरत राम के पास। राम और भरत का यह खेल आज भी ससार मे सराहनीय माना जाता है।

जिसने गेद कुए मे डाली थी वह कहने लगा–ठीक है में अपनी भूल स्वीकार करता हू। परन्तु तुम सब भी तो मेरे भाई हो। तुम्हे भी मेरी सहायता

करनी चाहिए जिससे तुम्हारी ओर मेरी–सभी की शोभा रह जाए ओर गेंद भी बाहर आ जाए।

भाइयो मे इस प्रकार समझोते की बातचीत चल ही रही थी कि इतने मे सामने से द्रोण आ पहुचे। उनका श्याम शरीर वीरतायुक्त मुखाकृति ओर लाल–लाल आखो के तेज को देखकर राजकुमार सोचने लगे–ये कोई बडे तेजस्वी पुरुष हें। चलो इनसे भी सलाह ले ले। यह सोचकर राजकुमार द्रोण के पास आये।

राजकुमारो को अपनी ओर आते देख द्रोण ठिठक गये। उन्होने पूछा–राजकुमारो! क्या बात है?

राज॰–हमारी गेद कुए मे गिर पडी हे। सोच रहे हैं उसे किस तरह निकाले?

द्रोण–राजकुमारो! बडे आश्चर्य की बात हे। आज तो गेद पडी है कल राजलक्ष्मी अगर सकट मे पड जाय तो उसे केसे निकालोगे? तुम सामान्य कुल के नहीं, राजकुल मे जन्मे हो। तुम्हारे खेल मे भी बडा रहस्य होना चाहिए।

राज॰–महाराज उपालम्भ देने मे तो हमने भी कसर नही रखी हे। उसे निकालने का कोई उपाय हो तो बतलाओ।

द्रोण–ठीक हे। हमारा काम केवल उपालम्भ देना नही हे। हम विगडी बात को सुधारने वाले हें। हम पाताल से भी पानी निकाल कर अपनी प्यास वुझा सकते हें। इस गेद को निकाल लेना क्या वडी बात हे? यह तो वडी ही आसानी से निकाली जा सकती है।

इतना कहकर द्रोण ने वोया या वरवाडा नामक एक घास मगवाया। उसका वाण वनाया। उसका अग्र भाग नुकीला कर लिया गया।

तव द्रोण ने कहा–में भूतविद्या नहीं जानता ओर न इन्द्रजाल जानता हू। शस्त्रविद्या से ही तुम्हारी गेंद वाहर निकाल देता हू।

द्रोण ने एक वाण धीरे से आसानी से चलाया। वह वाण गेंद म लगा आर उसमे चुभ गया। उसके वाद उन्होने दूसरा वाण चलाया ओर वह पहल वाण मे छिद गया। इसी तरह उन्होने कई वाण एक दूसर म छेद दिये। वाणा की ऊपर तक लम्वी कतार वन गई। अन्त मे सवस ऊपर वाले वाण का पकड कर उठाया ता गद भी उठ आई ओर वाहर आ गई।

यह करामात दखकर राजकुमारा का वडा आश्चय हुआ। व कहन लग–गद ता आर भी मिल सकती थी पर आप सरीख गुरु आर नही मिल सकत।

द्रोण की चतुराई पर सभी राजकुमार मुग्ध हो गए और पूछने लगे–महाराज! आपका नाम क्या है? आप कहा रहते है?

द्रोण ने कहा–तुम्हे नाम से क्या प्रयोजन है? यह घटना ज्यो की त्यो सुना दोगे तो पितामह भीष्म तुम्हे मेरा नाम बतला देगे। मै कृपाचार्य के यहा ठहरा हू।

राजकुमार बडी उत्कठा के साथ पितामह के पास पहुचे। पितामह ने उन्हे देखकर कहा–राजकुमारो! आज तुम्हारे मुख पर इतनी चचलता क्यो है? क्या कोई नवीन विद्या सीखी है।

राजकुमारो ने कहा–नही नवीन विद्या तो नही सीखी है, अद्भुत विद्या का निधान आया है।

भीष्म–वह कौन है?

राज॰–यही पूछने तो आपके पास आये है कि वह कौन है?

भीष्म–आश्चर्य है, तुम्हे विद्या का निधान मिला है। मुझे उसके दर्शन भी नहीं हुए और पूछते हो मुझसे?

राज॰–उन्होने कहा है कि पितामह मेरा नाम बतला देगे।

यह कहकर राजकुमारो ने गेद वाली सारी घटना उन्हे सुनाई और उसे निकाल देने के चातुर्य की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की।

सारी घटना का वर्णन सुनकर पितामह भीष्म समझ गये। उन्होने कहा–वत्स! वह द्रोण है। ऐसी अपूर्व विद्या का जानकार द्रोण के सिवाय और कोई नही हो सकता। में उसकी तलाश मे था। खुशी है कि वह मिल गया।

भीष्म ने द्रोण को आदर के साथ राजदरबार मे बुलाने का निश्चय किया। जब द्रोण के पास बुलावा पहुचा तो कृपाचार्य कहने लगे–सूर्य चाहता था कि मे अधकार मे छिपा रहू लेकिन यह कैसे हो सकता था? आखिर वह शीघ्र ही चमक उठा और उसकी अभ्यर्थना होने लगी।

द्रोण ने कहा–सब आपका अनुग्रह है। समय पर आपने मेरी सहायता की है। मै आपकी कृपा को भूलने की कृतघ्नता नही करूगा।

एक फला–फूला आम्र–वृक्ष अगर कहता है कि माली का मेरे ऊपर क्या अहसान है? मै बीज से पैदा हुआ और धूप से बढा हू तो उसका कहना सही नही होगा। गर्मी के दिनो मे माली ने जल न सीचा होता और उसकी रक्षा न की होती तो क्या वह बडा हो सकता था? क्या वह फल–फूल देने की स्थिति मे आ सकता था?

हे कृप, अब मैं प्रकट हुआ हू, सो यह तुम्हारी ही कृपा है। तुमने मुझे अपने यहा आश्रय दिया है। तुम्हारा यह उपकार मैं साधारण नही मानता।

कितनी कृतज्ञता है? आजकल कृतघ्नता का बाजार गर्म है। लोग गुण–चोर हो रहे हैं। उपकारी का उपकार करना तो दरकिनार लोग अपकार करने से भी नही चूकते। मित्रो! आप आज बडे हो गये हैं। आपके हाथ–पैर काम करने लगे हैं। जब शिशु थे और अशुचि मे लिपटे रहते थे उस समय आपकी रक्षा किसने की थी? किसने तुम्हारा पालन–पोषण किया है? कुछ ध्यान है? अगर यह बात भूल गये हो तो तुम्हारे सरीखा कृतघ्न ससार मे ओर कौन होगा?

कृपाचार्य ने कहा–आप चिउटी पर पसेरी का बोझ लाद रहे हैं ऐसा न कीजिए और अब विलम्ब करने का समय नही है। राज–दरबार मे पधारिए। फिर बाते होती रहेगी।

द्रोण पालकी पर सवार होकर राजदरबार मे आये तो भीष्मजी ने खडे होकर उनका सत्कार किया। वह ऐसे प्रेम से मिले मानो बहुत समय के बिछुडे सहोदर से मिले हों। योग्य आसन देकर बिठलाया और कुशल–समाचार पूछने के पश्चात कहा–विप्रवर! आपका यहा कैसे आना हुआ इतने दिनो तक आप कहा थे? अकस्मात् कैसे पधारे? आपके गुणो से तो मैं पहले ही परिचित हो चुका हू, शरीर से परिचय आज हुआ है।

भीष्म की सज्जनता देखकर द्रोण अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। उन्होने कहा–सूर्य से क्या छिपा रहता है? आप सरीखे महान तेजस्वी सूर्य से मे भी किस प्रकार छिपा रह सकता था। नदी के लिए समुद्र के सिवाय ओर कोई गति नही हे। विद्वान के लिए आप जेसे विद्यासागर ही आश्रयभूत हैं। में इतने दिन कहा रहा यह न पूछिए। इतने दिनो की स्थिति आपके सामने प्रकट करने से नीति का उल्लघन होता हे। अपना अपमान प्रकाशित करना योग्य नही हे। नीति कहती हे–

वञ्चन चापमानञ्च मतिमान्न प्रकाशयेत्।

राजन मने वडा अपमान सहन किया हे और वहुत कष्ट उठाये हे। उन्हे कहने मे जीभ रुक जाती हे।

भीष्म–विद्वद्वर अपन मन की वात आप न कहग तो मर चित म वडी दुविधा रहेगी। अगर वहुत अनुचित न समझ आर कहन म दु ख न हो ता म सव वात अवश्य सुनना चाहता हू।

द्रोण–महाराज! अपनी बात आत्मा के सामने प्रकट करने मे कोई हानि नही है। मै आपको अपनी आत्मा मानता हू । आप धर्मात्मा है। धर्मात्माओ के सामने अपनी बात प्रकट न की जायेगी तो फिर कहा प्रकट की जाएगी? इसलिए आपके सामने कोई बात मै नही छिपाऊगा।

इसके बाद द्रोण ने अपने मित्र द्रुपद की सारी कहानी कह सुनाई। अन्त मे कहा–द्रुपद ने मेरा घोर अपमान किया है। मै उस अपमान को सहन नही कर सकता। कोई वीर तीर मारता तो मै सह लेता मगर वचनो के तीर मेरे लिए असह्य हो गए हैं। वे मेरे कलेजे मे अब भी ज्यो के त्यो चुभे हैं।

वास्तव मे द्रोण का कहना सर्वथा सत्य है। तीर के घाव तो थोडे दिनो की चिकित्सा से भर जाते हैं मगर वचन–बाणो का घाव नही भरता। वचन–बाण बडे दारुण होते हैं। शास्त्र मे कहा है–

वाया दुरुत्ताणि दुरुद्धराणि वैराणु बन्धीणि महब्भयाणि।

लोहे के तीर चुभ जाए तो निकाले जा सकते हैं। उनका घाव भी मिट जाता है। लेकिन वचन रूपी तीर एकदम असह्य होते हैं। वे जब चुभ जाते हे तो उनका निकलना बहुत कठिन होता है। वे वैर की परम्परा बढाते हैं और ससार मे परिभ्रमण कराने वाले हैं। इसलिए भलीभाति सोचे–विचारे बिना मुह से कोई शब्द नही निकालना चाहिए। बिना विचारे बोले हुए शब्द बडे–बडे अनर्थ उत्पन्न करते है।

भीष्म ने कहा–बुद्धिमान् आप द्रुपद के वचनो से इतने अधीर क्यो हो गए? आप तो विवेकवान् विद्वान व्यक्ति हैं। आपको क्षमा रखनी चाहिए थी। अपमान के प्रतिशोध के लिए कोई प्रण तो नही किया है?

द्रोण–महाराज कुछ भी हो प्रण तो कर चुका हू। मैंने प्रण किया है कि–'मै अपने शिष्यो द्वारा पकडाकर तुझे मगवाऊगा ओर तू मेरे चरणो मे गिरकर कहेगा कि आप मेरे मित्र हैं और आधा राज्य आपका है' तब मैं उसे छोडूगा। अब ऐसा किये बिना मेरे हृदय को शाति नही।

भीष्म–महाराज यह आपने अच्छा नही किया। ऐसा करने से आत्मा को शाति नही मिलती। इससे तो वैर की परम्परा ही बढती है।

वास्तव मे भीष्मजी का कथन सोलह आना सत्य है। विद्रोह से या लडाई–झगडे से आज तक किसी को शाति नही मिली और न कभी मिल ही सकती ह। कई–एक लडाई–प्रेमी गीता की साक्षी देते है–

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्ग, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय! युद्धाय कृतनिश्चय ।।2/37

इस विषय पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालने की मै वहुत आवश्यकता समझता हू कि शाति हिसा से मिलती है या अहिसा से? मगर अभी तो इतना ही कहता हू कि हिसा से तीन काल मे भी शाति नही मिल सकती है। जगत अहिसा की बदौलत ही टिका है।

मै वैष्णव भाइयो से पूछता हू—आप गीता को धर्मशास्त्र मानते हैं या समाजशास्त्र मानते हैं? अगर गीता धर्मशास्त्र है तो उसमे से लडाई–झगडे निकालकर उसे समाजशास्त्र की श्रेणी मे क्यो खीचते हैं?

भीष्म ने फिर कहा—सूर्य का उदय होता है तो अस्त भी होता है। आज राजा द्रुपद का तेज बढा हुआ है और कभी न कभी घट भी जाएगा। अतएव आपका प्रण पूर्ण होना कोई बडी बात नही है। लेकिन इससे आपको वास्तविक शाति नही मिल सकती। अच्छा यह है कि आप अपना प्रण छोड दे।

द्रोण—आप सच कहते हैं। महाराज पर हृदय नही मानता। ब्रह्म–प्रण अब पलट नहीं सकता। द्रुपद को एक बार नीचा दिखलाना ही होगा।

भीष्म—जैसी आपकी इच्छा। अब काम की बात करे। मैं आपको राजकुमारो का विद्या–आचार्य नियुक्त करना चाहता हू। इस कार्य के लिए आपकी खोज मे था। आप स्वीकार करते है?

द्रोण—अत्यन्त प्रसन्नता के साथ। इन राजकुमारो से अधिक उपयुक्त पात्र ओर कौन मिलेगा जिन्हे देने से मेरी विद्या सार्थक हो।

भीष्म—तो आज से आप आचार्य हुए। ये बालक आपके हैं। इन्हे उच्च्य शिक्षा सिखलाइए।

शुभ मुहूर्त मे पाण्डव ओर कोरव आचार्य द्रोण को सोप दिये गये।

7 पाण्डव–कौरवो की उच्च शिक्षा

शिष्य कुवरो को बनवाये विद्यागुरु धन्य भाग पाये।
पढे सब विनयभाव लाये, प्रतिज्ञा पूरी करने का।
अर्जुन से बोल मिले नीका, मेरी जान धरम चित्त धर रे।

पाण्डव और कौरव आचार्य द्रोण से विद्या ग्रहण करने लगे। ऊपर जो पद्य उद्धृत किया गया है उसमे कहा है– धरम चित धर रे।' प्रश्न होता है कि क्या विद्या और धर्म मे कोई सबध है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि विद्या और धर्म का सबध बहुत घनिष्ठ है। जब से दोनो को अलग–अलग समझा जाने लगा है तभी से समाज का पतन आरम्भ हुआ है। आज के बहुत से विद्वान और वैज्ञानिक धर्म से परहेज करते जान पडते हैं। यही कारण है कि उनसे विद्याध्ययन करने वाले विद्यार्थी भी धर्म से अनभिज्ञ और धर्म के पति अरुचि रखने वाले हैं। उनमे से बहुतेरे तो नास्तिक भी हो जाते हैं। प्राचीनकाल मे विद्या का प्रयोजन समझा जाता था–विमुक्ति। कहा भी है–

सा विद्या या विमुक्तये।

अर्थात–जिससे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक बधनो का विनाश हो वही सच्ची विद्या है। जिस विद्या के कारण अपने हाथ, पैर कान, आख आदि अग स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य न कर सके वह विद्या गुलामी की विद्या है। उसे अविद्या कहना ही अधिक उपयुक्त है। कौरव और पाण्डवो को ऐसी विद्या नही पढाई जाती थी।

कौरव और पाण्डव बडे विनीत शिष्य थे। विनम्रतापूर्वक गुरु से अध्ययन करते थे और इस कारण गुरु भी प्रसन्नता के साथ उनके सामने अपना खजाना खोल दिया करते थे। कौरव और पाण्डव अपने विद्यागुरु को माता–पिता से भी अधिक समझते थे। आप कह सकते हैं यह कैसे? सुनिये। किसान कपास पैदा करता है। कपास की यदि रूई सूत और अन्त मे कपडा न बनाया जाय तो कपास पैदा करने से क्या लाभ है? यद्यपि सारी दुनिया किसान की आभारी है फिर भी कपास से कपडा बनाये बिना आप अपनी लाज नही रख सकते। इसी प्रकार माता–पिता बालक को कपास की तरह जन्म देते है। विद्यागुरु उनमे सस्कार करके वस्त्र के रूप मे ले आते है।

यद्यपि कौरव और पाण्डव धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्र है उन्होने इन्हे जन्म दिया ह परन्तु द्रोण ने इन्हे विद्या मे पवीण किया हे ओर उनकी रग–रग मे धर्म भर दिया ह। इसलिए द्रोण इनका सच्चा पिता है।

एक समय की वात हे। द्रोण अपने आसन पर विराजमान थे। उनके एक सौ पाच शिष्य सामने उपस्थित थे। द्रोण ने कहा–मेरी एक प्रतिज्ञा है। जो शिष्य अपने प्राणो की परवाह न करता हो ओर मेरे लिए सर्वस्व देने को तैयार हो वह प्रतिज्ञा पूरी करने का वचन दे।

गुरुजी की वात सुनकर सव राजकुमार सोच–विचार मे पड गये। वे सोचने लगे–गुरुजी का क्रोध वडा उग्र है। वह जिस बात को पकड लेते हैं उसे छोडते नही हैं। कौन जाने इनकी क्या प्रतिज्ञा है? पूरी करने का वचन दे दिया और पूरी न कर सके तो विश्वासघात होगा। ऐसा सोचकर सभी राजकुमार चुपचाप खडे थे कि अर्जुन आगे आ गया। उसने कहा–गुरुवर! आपने विद्या का दान देकर हमारा सस्कार किया है, मानो हमे पुनर्जन्म दिया है। मैंने आपको गुरु मानकर अपना मस्तक आपके चरणो मे झुकाया है। अत आपके कार्य के लिए मैं अपने प्राणो की परवाह नही करता। मैं जानता हू कि प्रथम तो आप ऐसा कार्य बतलाएगे ही नही जो मेरे लिए कठिन हो अगर बतलाएगे भी ओर उसे पूर्ण करने मे मेरी मृत्यु हो जायगी तो आप प्रसन्न न होगे? कदाचित् प्रसन्न हुए तो में निहाल हो जाऊगा। अपने विद्यागुरु की प्रसन्नता के लिए मे सब कुछ त्यागने को तेयार हू।

अर्जुन की यह वाणी सुनकर द्रोण गद्गद् हो गए। उनकी प्रसन्नता का पार न रहा। उन्होने अर्जुन को गले से लगाकर कहा–वत्स अश्वत्थामा मेरा पुत्र नही तू मेरा सच्चा पुत्र है।

दूसरे राजकुमार सोचने लगे–अर्जुन ने वाजी मार ली। अच्छा होता अगर हमने पहले वचन दे दिया होता।

जिसके सामने आपने मस्तक झुका दिया उसके लिए त्याग करना कोई वडी वात नही होनी चाहिए। उनका काम पडने पर सव प्रकार का उत्सर्ग करने के लिए तयार रहना चाहिए। जो सच्चा शिष्य होगा वह अपन गुरु के लिए सभी कुछ त्यागने को तेयार रहेगा।

अर्जुन के वचनो से द्रोणाचार्य को सन्तोप हो गया। वे जानते थे कि अर्जुन समर्थ शिष्य हे ओर इसके द्वारा मरा प्रण अवश्य पूर्ण हो जाएगा। वह धीर वीर ओर गभीर हे। यही सव विद्याओ का धारण करन का याग्य पात्र हे। अच्छा हुआ कि आरा ने वचन नही दिया।

अव द्राणाचार्य अपन शिष्या का शिक्षा दत ह–

मर्म पढने का पहचानो रक्षा मे क्षात्रधर्म जानो।
परस्पर प्रेमभाव ठानो सभी जन यश तुम्हारा गावे
गुरुजन सुन कर सुख पावे मेरी जान धरम चित धर रे।

द्रोणाचार्य अपने सब शिष्यो को शिक्षा देने लगे–मै अपनी [illegible] [illegible] पूर्ति के लिए तुम्हे कष्ट नही देना चाहता। पर मै पूछता हू–कि वि[illegible] [illegible] का प्रयोजन क्या है? किस उद्देश्य को सामने रखकर तुम विद्या [illegible] [illegible] मे परिश्रम कर रहे हो?

बालक जब प्राथमिक शिक्षा पूरी करके माध्यमिक शिक्षा के [illegible] हो तभी उससे पूछना चाहिए कि तुम किस उद्देश्य से विद्या ग्रहण कर रहे हो? धर्म पालने के लिए या पेट भरने के लिए? पेट भरने के लिए विद्या पढने वाला बुद्धिमान नही कहा जा सकता। पेट तो पशु–पक्षी भी भर लेते हैं। मनुष्य को अपना ध्येय ऊचा रखना चाहिए ओर निश्चित रखना चाहिए। जो मनुष्य अपने जीवन का ध्येय निश्चित कर लेता है वही जीवन मे सफलता पाता हे। जिसका लक्ष्य ही निश्चित नही है जो चलता रहता हे पर यह नही जानता कि उसे कहा पहुचना है वह चलकर क्या करेगा? ऐसे मनुष्य की दशा दया–योग्य है।

विद्या पढने का उद्देश्य धर्म के साथ सबध स्थापित करना है। इस उद्देश्य को सामने रखकर पढी हुई विद्या जीवन को उन्नत बनाती हे।

मित्रो! मैं आपसे पूछता हू–आपको धर्म से रूखी रोटी मिले ओर अधर्म से ताजा और बढिया भोजन मिले तो आप किसे पसन्द करेगे? एक आदमी का शरीर तपस्या के कारण सूख गया और दूसरे का सूजन के कारण फूल गया है। इन दोनो मे से आपको कौन–सा शरीर पसन्द आएगा? आप यही कहेगे कि सूजन से फूला शरीर किस काम का? तपस्या से सूखा शरीर ही प्रशस्त है। इसी प्रकार अधर्म से राज्य मिलता हो तो वह भी किस काम का? आखिर तो वह आत्मा के पतन का ही कारण होगा। इसके विपरीत अगर धर्म से रूखी–सूखी रोटी ही मिले तो वह अच्छी है। इससे आत्मा का विकास ही होगा–ध्वस नही।

एक ही कुए का जल आम जाम और नीम को पिलाया जाता है। पिलाया जाने वाला जल और पिलाने वाला माली एक होने पर भी आम अपने स्वभाव के अनुसार उस को परिणत कर लेता है और नीम अपने स्वभाव के अनुसार। इसी प्रकार विद्या और विद्यागुरु एक होने पर भी भिन्न–भिन्न शिष्य अपने स्वभाव के अनुसार विद्या को भिन्न–भिन्न रूपो मे परिणत कर लेते हैं। द्रोणाचार्य ने कारवो ओर पाण्डवो को समान भाव से शिक्षा दी लेकिन कौरवो ने नीम की तरह उसे अपने स्वभाव के अनुसार परिणत किया। पाण्डवो ने उसी विद्या मे से कुछ ओर ही रस खीचा।

आचार्य द्रोण ने सब छात्रो को एकत्र करके विद्या पढने का उद्देश्य समझाया। उन्होने कहा– हे शिष्यो! अब तुम अज्ञान नही हो। तुम एक विद्या समाप्त करके दूसरी विद्या प्राप्त करने के लिए तेयार हुए हो। अब तुम्हे विद्या पढने का मर्म जान लेना चाहिए। तुम सब क्षत्रिय कहलाओगे।' जैन सिद्धान्त मे कहा है–

कम्मुणा बम्हणो होई, कम्मुणा होई खत्तियो।
कम्मुणा बइसो होई सुद्दो हवई कम्मुणा।।25/33

अपने–अपने कर्त्तव्य–कार्य से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ओर शूद्र होते है। समाज के सभी आवश्यक कार्यो की समुचित रूप से पूर्ति करने के लिए वर्णव्यवस्था बडे काम की चीज थी। लेकिन आज लोगो ने अपने–अपने कर्त्तव्य–व्यवहार का परित्याग कर दिया है और इसलिए वर्णसकरता फैल गई है। आज ब्राह्मण–क्षत्रिय का, क्षत्रिय–वैश्य का और वैश्य–क्षत्रिय आदि का कार्य करने लगे हैं। इसी कारण समाज मे गडबड–घोटाला मचा है। इस कथन का आशय यह नही समझना चाहिए कि क्षत्रिय सदा द्वन्द्व ही मचाता रहे और ब्राह्मण कभी निडर ही न हो बल्कि सबको अपने–अपने धर्म का पालन सर्वप्रथम करना चाहिए। गीता मे भी कहा है–

श्रेयान् स्वधर्मो विगुण परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह ।।3/35

हर हालत मे अपने धर्म का पालन करना ही श्रेयस्कर है। कदाचित परधर्म अधिक लाभदायक मालूम होता हो तो भी उसका आचरण करने की अपेक्षा अपने धर्म का आचरण करना ही उत्तम हे। अपने धर्म का पालन करते हुए मृत्यु का आलिगन करना पडे तो वह कल्याणकारी हे मगर परधर्म भयकर हे।

वर्णाश्रम धर्म का पालन करने के विषय मे यह बात कही गई है। कदाचित किसी कारीगर को पाच रुपया रोज मिलता हो ओर अध्यापक को एक रुपया मिलना कठिन हो तो क्या उसे पढाने का काम छोड देना चाहिए? नही। लेकिन आज वडा घोटाला चल रहा हे। इसी कारण सर्वत्र वर्णसकरता दिखाई देती हे। कहना पडता हे कि आज भारतवर्ष की वर्णव्यवस्था लुप्त हो गई ह। ओर वर्ण–सबधी झूठा अभिमान ही शेष रह गया हे।

द्राणाचार्य ने अपन शिष्या स कहा–म आप सभी का विद्याए सिखलाऊगा। फिर भी आप क्षत्रिय ह आपको अपन कर्त्तव्य का ही पालन करना हागा।

क्षतात् त्रायते—इति क्षत्रिय

अगर कोई सबल किसी निर्बल को सताता हो तो अपने प्राण जोखिम मे डाल करके भी उसे बचाना आपका धर्म है। क्षत्रिय का धर्म यह नही है कि वह निर्बल को तलवार के घाट उतार दे।

शिष्यो! आप क्षत्रिय वीर हो और फिर विख्यात कुरुवश के राजकुमार हो। अतएव आपको अपने कर्त्तव्य का पालन करने मे, प्रजा के रक्षण और देश के उद्धार मे तनिक भी पमाद नही करना चाहिए। ऐसा अवसर आ सकता है कि कभी रूखा भोजन भी न मिले। कभी सोने के लिए बिछौना भी प्राप्त न हो और गुडो को धर्म से विमुख तथा कर्तव्य से भ्रष्ट लोगो को—सब प्रकार की सुख—सामग्री पाप्त हो। वे गुलछर्रे उडाते और चैन की बसी बजाते हुए नजर आवे तो ऐसे समय मे भी धर्म से च्युत मत होना। ऐसे विषम समय मे भी आप धर्म पर स्थिर रहेगे तो आपका छात्रतेज अतिशय दीप्तिमान और अजेय हो जायेगा सारे ससार मे यश फैल जायेगा और हम गुरुजनो की भी प्रतिष्ठा बढेगी।

द्रोणाचार्य की शिक्षा सबने स्वीकार की। सबने वचन दिया—'गुरुदेव! हम लोग ऐसा ही करेगे।

8 · ईर्ष्या की आग

आचार्य द्रोण ने जब कौरवो और पाण्डवो को विद्याध्ययन कराना आरम्भ किया तो उनके गुरुकुलो मे एक और शिष्य प्रविष्ट हो गया था। उसका नाम कर्ण था। वास्तव मे वह कुन्ती का पुत्र था–कुन्ती के उदर से उसका जन्म हुआ था, लेकिन जन्मते ही उसका परित्याग कर दिया गया था। वह भाग्यवान् बालक किसी तरह अधिरथ नामक सूत के हाथ लग गया। उसने अपनी पत्नी राधा को सुपुर्द कर दिया। अधिरथ और राधा को छोड यह रहस्य और किसी को ज्ञात नहीं था। वही इसके पिता ओर माता कहलाते थे।

कर्ण सभी राजकुमारो मे प्रिय था। उसने अपने विशिष्ट गुणो के प्रभाव से ही सबका प्रेम सम्पादित किया। वह बडा ही बुद्धिमान और पराक्रमी था। नम्रता, वीरता और क्षमता आदि गुणो मे उसकी बराबरी सिर्फ अर्जुन ही कर सकता था, दूसरा कोई भी नही। युधिष्ठिर और भीम आदि सभी पाण्डव उसके प्रति प्रेम रखते थे। मगर दुर्योधन कुटिल था ही, उसने सोचा–कर्ण बडा वीर और पराक्रमी है। इसके साथ मेरी घनिष्ठ मित्रता हो जाये और यह मेरे वश मे आ जाय तो मैं बडी सफलता और सरलता के साथ पाण्डवो की खबर ले सकूगा। इस प्रकार विचार कर दुर्योधन मन ही मन प्रसन्न हुआ और कर्ण के साथ गहरी दोस्ती करने की चेष्टा करने लगा।

दुर्योधन इनको लख कर हृदय मे अतिशय हरसाया।
सोचा–अब पाण्डुकुमारो से बदला लेने का दिन आया।
यह कर्ण वीर सामान्य नहीं यह बात दृष्टि मे आती है।
होगा आगे यह बलशाली इसकी आकृति बतलाती है।
इसलिए अभी से यत्न करू, इसको निज ओर मिलाने का।
जो मद के कूट है उन्हे, बस भस्मीभूत बनाने का।
यदि यह योद्धा मम वश, मेरा साथी हो जायेगा।
तब दुर्योधन भी किसी रोज निश्चय ही भूप कहलाएगा।

दुर्योधन सोचता हे–यह मेरे हक मे अच्छा अवसर हे। कर्ण वीर हे ओर इसकी क्रोधाग्नि बडी तीव्र हे। अगर मैं इसे अपने अधीन बना सकूगा तो पाण्डव अवश्य ही इसकी क्रोधाग्नि म जलकर भस्म हो जाएगे। जान पडता ह प्रकृति मेरे ही पक्ष मे ह। प्रकृति मुझे ही राजा बनाना चाहती हे नहीं ता यह सुन्दर विचार मेरे दिमाग म केसे आता?

दुर्योधन कर्ण का अपनी ओर मिलाने का भरसक प्रयत्न करन लगा। कर्ण के प्रति वह गहरा प्रेम प्रदशित करन लगा। वह कर्ण का पाण्डवा क

विरुद्ध भी भडकाने लगा। कभी कहता—मित्र! पाण्डव बडे अभिमानी है। तुम्हे रथ (सूत) का लडका समझ कर हल्की दृष्टि से देखते है। तुम्हारे असाधारण गुणो की उपेक्षा करते हैं। मैं तो तुम्हारे गुणो पर मुग्ध हू। तुम्हारा सम्मान करता हू। वास्तव मे गुण ही देखने चाहिए। लेकिन कोई चिन्ता की बात नहीं। मैं तुम्हारे लिए प्राण भी दे सकता हू।

कर्ण सोचने लगा—दुर्योधन बडा ही सहानुभूतिशील राजकुमार है। पाण्डवो का मेरे प्रति प्रकट मे कोई दुर्व्यवहार नही है, तथापि दुर्योधन के समान वे लोग आत्मीयता भी प्रकट नही करते। दुर्योधन का प्रेम सराहनीय है।

कर्ण ने प्रकट मे कहा—राजकुमार! मैं आपका कृतज्ञ हू। अगर आप मेरे लिए प्राण दे सकते हैं तो मैं भी आपके लिए इससे कम त्याग नहीं करूगा।

कर्ण जल्दी ही दुर्योधन के कपट—जाल मे फस गया। मनुष्य—स्वभाव ही ऐसा है कि अगर कोई बडा आदमी किसी छोटे समझे जाने वाले के प्रति सहानुभूति और प्रेम दिखलाता है तो वह शीघ्र ही उसके वश मे आ जाता है। दुर्योधन राजकुमार था। कर्ण उसके साथ प्रेम करने लगा। धीरे—धीरे दोनो मे प्रगाढ मित्रता हो गई। अब दो शरीर एक प्राण हो गये।

मित्रता करना बुरा नही है। परन्तु वही मित्रता सच्ची और हितकर है जो धर्म से व्याप्त हो। ऊपर से मित्रता का आडम्बर करना और भीतर से अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए कपट की छुरिया चलाना उचित नही है। ऐसी मित्रता एक प्रकार की धोखेबाजी है। खुले हुए कुए से बचना आसान है किन्तु ढके कुए से बचना कठिन है। ढके कुए मे कई—एक गिर जाते हैं और डूब मरते हैं।

कई लोग कहते हैं—'करने वाले के साथ नहीं करे उसका गुरु झूठा। मगर कल्पना कीजिए किसी ने आपको जहर दे दिया ओर उसके बदले मे आपने भी उसे जहर दे दिया। ऐसी स्थिति मे बुराई करने वालो मे अगर पहला नम्बर 'उसका है तो दूसरा नम्बर आपका है या नही? अतएव वैर करने वाले के साथ वैर करने को उचित बतलाने वाली नीति अपूर्ण नीति है। धर्म इसका समर्थन नही करता। धर्म का विधान है कि अपने साथ शत्रुता करने वाले को भी शत्रु मत समझो। यही नही उसे भी अपना मित्र ही मानो और अवसर आने पर उसका भी उपकार करो।

पाण्डव इसी धर्मपथ पर चलते थे। सब के प्रति उनके हृदय मे प्रेम था।

पाण्डव नहि वैरभाव करते अर्जुन विद्या मे चित धरते।
अश्वत्थामाजी दाह करते पात्र–परीक्षा द्रोण ने कीनी।
अर्जुन को लीना योग्य चीनी, मेरी जान धर्म चित धर रे।

पाण्डव के मन मे किसी के प्रति वैरभावना नही थी। यह बात नहीं है कि वे दुर्योधन की चालो को समझते नही थे। जब से भीम को विष दिया गया और यमुना मे बहाया गया, तभी से पाण्डव बहुत सतर्क रहते थे। दुर्योधन के प्रत्येक व्यवहार को वे बारीकी से देखते रहते थे। फिर भी वे कुछ बोलते नही थे और न अपना मन मैला होने देते थे। पाण्डव दृढता से मानते थे कि हम धर्म की रक्षा करेगे तो धर्म हमारी रक्षा करेगा और जब धर्म रक्षक होगा तो कोई कुछ नही बिगाड सकता। इस प्रकार सरल और निष्कपट भाव से सभी पाण्डव विद्याध्ययन मे लगे रहते थे।

अर्जुन सबसे ज्यादा विनीत और गुरुभक्त था। उसका तेज लगातार बढता ही चला जाता था। धनुष–बाण की विद्या मे वह असाधारण था। वहुत बढिया निशाना तकता और लक्ष्य को वेधे बिना न रहता। इसी प्रकार अन्य विद्याओ मे भी वह सबसे आगे बढ गया।

बुद्धिमान् और विनीत शिष्य की ओर शिक्षक स्वत अधिक आकर्षित हो जाता हे। अर्जुन के गुणो को देखकर आचार्य द्रोण का उस पर विशेष प्रेम हो गया। परन्तु अपने पिता का अर्जुन पर विशेष प्रेम देखकर उनके पुत्र अश्वत्थामा के मन मे ईर्ष्याभाव उत्पन्न हुआ। वह विचार करने लगा–पिताजी पक्षपात करते हे। उनका प्रेम अर्जुन पर ज्यादा और मुझ पर कम हे। कुशल द्रोणाचार्य समझ गए कि अश्वत्थामा के मन मे ईर्ष्या पैदा हुई हे।

एक दिन अश्वत्थामा को उदास बेठा देख द्रोण ने पूछा–पुत्र आज उदास क्यो हो?

अश्वत्थामा–क्या आपको मेरी उदासी का कारण ज्ञात नही हे? आप वहुत पक्षपात मे पड गए हे। अर्जुन को तो अच्छी–अच्छी विद्याए सिखलाते हें और वह इतना चतुर हो गया हे। मे आपका उत्तराधिकारी पुत्र हू, फिर भी वेसी विद्याए मुझे नही सिखलाते। यही कारण हे कि म अर्जुन से पीछे रहता हू। क्या आपका अपने वेटे का भी विचार नही आता?

द्रोणाचार्य–पुत्र अर्जुन याग्य–पात्र ह। मरे लाख प्रयत्न करन पर भी विद्या तो योग्य–पात्र का ही आ सकती हे आर ईर्ष्या ही तुझ अधिक नीत

गिराती है। ईर्ष्या को छोडकर अपनी त्रुटि देख और उसे दूर करके हृदय को स्वच्छ बना। ऐसा करने से तू भी किसी दिन अर्जुन सरीखा योग्य पात्र बन जाएगा।

अश्वत्थामा रोष के साथ बोला—अर्जुन योग्य पात्र है और मैं अपात्र हू। लेकिन यह निर्णय आपने कैसे कर लिया?

द्रोणाचार्य—अच्छा किसी दिन परीक्षा कर बतलाऊगा।

कुछ दिन बीत जाने के बाद आचार्य द्रोण ने एक बार अर्जुन और अश्वत्थामा को बुलाया। अर्जुन को सकडे मुह का और अश्वत्थामा को चौडे मुह का एक—एक घडा दिया और कहा—इसमे जल भर ले आओ। जो पहले भर लाएगा, वही तुम दोनो मे मेरा सच्चा पुत्र—शिष्य होगा।

यह सुनकर अश्वत्थामा प्रसन्न हुआ। उसने सोचा—मेरे उलाहने का पिताजी पर पभाव पड गया है। इसी कारण उन्होने मुझे चौडे मुह का और अर्जुन को सकरे मुह का घडा दिया है। आज अर्जुन को नीचा दिखलाने का अच्छा अवसर है।

अर्जुन का हृदय तुच्छ नही था—स्वच्छ था। उसे ईर्ष्या हो सकती थी कि आचार्य ने अपने पुत्र को चौडे मुह का घडा देकर पक्षपात किया है। परन्तु उसने ऐसा नही सोचा। उसे विश्वास था कि गुरुजी सोच—समझकर ही कार्य करते हैं।

अर्जुन ने यह भी सोचा—जल लाने का काम साधारण नौकर भी कर सकता था लेकिन गुरुजी ने आज यह काम मेरे सुपुर्द किया है तो इसमे कोई रहस्य होना चाहिए। रहस्य यही जान पडता है कि आज मेरे वरुणबाण की परीक्षा है।

दोनो जल भरने के लिए दौडे। अश्वत्थामा सोचता जाता था कि अर्जुन को आज अवश्य हराऊगा। मैं तीन चक्कर काट लूगा तब कही उसका घडा भर पाएगा। उसे कल्पना ही नही आई कि पिताजी आज वरुण—बाण की परीक्षा ले रहे हैं।

अश्वत्थामा सरोवर की ओर भागा। अर्जुन ने घडे के भीतर एक ऐसा वरुण—बाण लगाया कि घडा तत्काल भर गया। विद्या से काम जितनी जल्दी होता है हाथ से उतनी जल्दी नही होता। अश्वत्थामा जल भर ही रहा था कि अर्जुन भरा हुआ घडा लेकर गुरुजी के पास आ गया। पीछे—पीछे अश्वत्थामा भी आ गया। उसने घडा लाकर रख दिया। वह मन ही मन खुश हो रहा था कि म घडा भर लाया हू और अर्जुन ने ढोग किया हे। अभी इसकी

पोल खुल जायेगी । वह कहने लगा–पिताजी! अर्जुन घडे मे वाण मारकर वापिस लौट आया हे और मैं घडा जल से भर लाया हू। इनके घडे को देख तो लीजिए, भरा है या खाली है।

द्रोणाचार्य उठे। उन्होने घडे को देखा तो घडा जल से भरा हुआ था। तब वह अश्वत्थामा से बोले–पुत्र! तू भी उठकर आ घडे को देख ले कि भरा है या खाली है।

अश्वत्थामा का चेहरा फीका पड गया। वह कहने लगा–इन्होने वरुण–बाण से घडा भरा है और मैंने सरोवर के जल से भरा है।

द्रोण ने कहा–पुत्र मैंने कब कहा था कि वरुण–बाण से मत भरना। यह तो बुद्धि की परीक्षा थी। तू भी ऐसा ही करता तो कौन रोकता?

अश्वत्थामा को बहुत दु ख और पश्चात्ताप हुआ । फिर भी उसके हृदय से ईर्ष्याभाव दूर नहीं हुआ। वह उल्टा पाण्डवो को अपना शत्रु समझने लगा। दुर्योधन की कूटनीति भीतर ही भीतर काम कर रही थी। अश्वत्थामा को अपनी ओर मिलाने का भी उसे मौका मिल गया। वह अश्वत्थामा के प्रति विशेष अनुराग दिखलाने लगा।

अर्जुन का हृदय सरल था। उसके दिल मे किसी के प्रति डाह या द्वेष नही था। वह दिनोदिन विद्या मे निपुण होता गया।

द्रोणाचार्य ने अपने सभी शिष्यो से एक दिन कहा–हे शिष्यो! मेरे शिक्षा देने का ओर तुम्हारे शिक्षा लेने का उद्देश्य जगत् का कल्याण करना होना चाहिए। इस शस्त्रविद्या का प्रयोजन यह नही हे कि निर्दोष को मारने के लिए या गरीव को सताने के लिए इसका प्रयोग किया जाय। शस्त्रो की उपयोगिता दीन–दु खियो की रक्षा करने मे ही हैं। जिसके दिल मे दया नही होती जिसका हृदय निष्ठुर होता हे वह निर्बल को सताने मे भी सकोच नही करता। वह मारे ओर वोलने न दे' की कहावत चरितार्थ करता हे। किन्तु हे पुत्रो! मैं तुम से कहता हू कि तुम लोग ऐसा मत करना अगर तुमने मेरी वात मानी तो सब मिलकर इस ससार को शाति का आगार वना दोगे। अगर तुम मेरे सच्चे शिष्य हो तो मेरी शिक्षा को कभी मत भूलना ओर देखो विद्या विनय से आती हे। जितना अधिक विनयभाव तुम मे होगा उतनी ही अधिक विद्या तुम ग्रहण कर सकोगे।

इस प्रकार द्रोणाचार्य अर्जुन अश्वत्थामा आदि अपन शिष्यो को शिक्षा दे रह हैं आर शिष्य विनयपूर्वक शिक्षा ल रह ह।

एक दिन सभी शिष्यो की परीक्षा का अवसर आया। दोणाचार्य अपने सब शिष्यो को साथ लेकर यमुना के तट पर गये। शिष्यो के मनोविनोद का यह आयोजन था। सभी शिष्य इच्छानुसार क्रीडा कर रहे थे और दोण स्नान करने के लिए पानी मे उतरे। स्नान करते समय उन्हे एक ग्राह ने पकड लिया। दोणाचार्य यो तो शक्तिशाली थे और अपने आपको छुडा सकते थे लेकिन उन्होने शिष्यो की परीक्षा का यह अच्छा अवसर समझा। वे चिल्लाए– दौडो, जल्दी दौडो। मुझे ग्राह ने पकड लिया है'

सभी शिष्य दौडकर किनारे के पास आये और सोचने लगे–गुरुजी को किस प्रकार छुडावे? कही ऐसा न हो कि पानी मे घुसने पर हमे भी यह ग्राह पकड ले? इतने मे ही अर्जुन आगे बढा। उसने अपने धनुष पर पाच बाण चढाए और तत्काल ऐसी कुशलता से बाण चलाये कि गुरुजी के शरीर को तनिक भी आघात नही पहुचा, बाण ग्राह को लगा, और ग्राह उन्हे छोड कर भाग गया।

दोणाचार्य पानी से बाहर आये। उन्होने कहा–पुत्रो! मैंने तुम सबको एक सरीखा बोध दिया था और इस समय सभी को आवाज दी थी लेकिन तुम सब मे से किसी और ने मुझे नही छुडाया अकेले अर्जुन ने ही मुझे क्यो छुडाया?

इतना कहकर उन्होने अर्जुन से कहा–पुत्र! तू मेरा सच्चा शिष्य है, यदि तू न होता तो यह पृथ्वी द्रोणरहित हो जाती। तूने मेरे प्राण बचाये हैं।

अर्जुन ने कहा–गुरुजी! इसमे मेरा क्या है? यह विद्या तो आपकी ही दी हुई हैं। आपकी विद्या से आपका अनमोल जीवन बच गया तो इसमे प्रशसा की बात ही क्या है?

द्रोण–पुत्र यही तो तेरी विशेषता है। विद्या मैंने सिखलाई थी परन्तु तूने इतने हल्के हाथ से बाण चलाये कि जिनसे मेरा पैर तो बच जाय और ग्राह छोडकर भाग जाय यह तेरी चतुराई और बुद्धिमत्ता है। विद्या तो मैंने इन सभी को दी है पर और किसी ने रक्षा नही की सिर्फ तूने ही की। इसी से कहता हू कि इस समय तू ही मेरा प्राण–रक्षक बना है।

मित्रो! जरा इस बात पर ध्यान दो। अर्जुन कहते हैं–आपकी रक्षा का श्रेय मुझे नही है क्योकि आपकी दी हुई विद्या से ही आपकी रक्षा हुई है। दोणाचार्य कहते हे– नही तुमने मेरी रक्षा की हे। मेरी दी हुई विद्या से मेरी रक्षा हुई होती तो दूसरे शिष्य रक्षा क्यो नही करते? विद्या तो सभी को समान रूप से दी गई हे। अब प्रश्न होता है कि वास्तव मे रक्षा किसने की है? अर्जुन

अपना अहकार त्याग कर विद्या के निमित्त–कारण गुरु को महत्त्व दे रहे हैं और द्रोणाचार्य विद्या के उपादान–कारण अर्जुन को महत्त्व दे रहे हैं। इसी मे दोनो का प्रेम व्यवस्थित है। इसके विपरीत अहकार के वश होकर अगर अर्जुन कहने लगता– महाराज, मेरा उपकार मानिए कि मैने आपके प्राण बचा लिए हैं। और द्रोण कहते कि–'इसमे तेरा क्या एहसान है? मैंने तुझे विद्या न पढाई होती तो तू क्या कर सकता था?' तब उनका प्रेम एक क्षण भी नही टिक सकता था।

द्रोण और अर्जुन मे इस प्रकार प्रेमपूर्ण सवाद हुआ। द्रोण ने सब शिष्यो से कहा–जब मैं अर्जुन का उपकार मानता हू तो तुम सबको भी इसका उपकार मानना चाहिए। अर्जुन आज मुझे न बचाता तो मैं तुम्हारा गुरु कैसे रह सकता था?

९ कर्ण का कपट

महाभारत की एक कथा यहा स्मरण हो आती है। यद्यपि जेन ग्रन्थो मे इस कथा का उल्लेख नही है, फिर भी मुझे उसमे कुछ रहस्य दिखाई देता है। उस रहस्य को पकट करने के लिए महाभारत की घटना मैं आपको सुनाता हू।

एक दिन दोणाचार्य ने अर्जुन से कहा–पुत्र मेरे पास एक ब्रह्म–अस्त्र है। वह अस्त्र किसी को मारने के लिए नही वरन रक्षा करने के लिए है। उसका पयोग अमोघ है। अर्थात उसका प्रयोग कभी विफल नही होता। मैं तुझे ही इस ब्रह्मास्त्र के योग्य पात्र समझता हू। इसलिए पुत्र ले मै तुझे यह अस्त्र देता हू।

यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि दुर्योधन आदि कौरव यो तो अर्जुन के प्रति घोर ईर्ष्या रखते थे किन्तु प्रकट रूप मे नही आते थे। ब्रह्मास्त्र की बात कर्ण को खटक गई। वह सोचने लगा कि किसी भी तरह यह विद्या तो सीखनी चाहिए। यह विद्या मैंने न सीख पाई तो मैं अर्जुन से नीचे रह जाऊगा और अर्जुन के सामने मेरी हार हो जाएगी।

एक दिन अवसर पाकर वह द्रोणाचार्य के पास पहुचा। वह उनके पैर पकड कर कहने लगा–महाराज आप बडे समदृष्टि हैं, लेकिन मैं देख रहा हू कि आप मे भी अब पक्षपात आ गया है अन्यथा आपने जो ब्रह्मास्त्र–विद्या अर्जुन को ही दी है वह मुझे भी मिलनी चाहिए।

द्रोण–प्राणो की रक्षा करने वाले–अभयदान देने वाले को ही यह विद्या मिलती है। दूसरो का घात करने वालो को यह नही मिलती।

कर्ण–गुरुजी एक बार मुझ से भूल हो गई तो क्या हुआ? अब अगर दूसरी बार कभी ऐसा अवसर आया तो मैं भी आपको बचा लूगा।

दोणाचार्य समझ गये थे कि यह दुष्टमति दुर्योधन के साथ मिला हुआ है। इसे ब्रह्मास्त्र देने से कोई लाभ नही वरन् अनर्थ ही होगा। ये सब मिलकर जगत का नाश ही करेगे। लेकिन उन्होने यह बात मुख से कही नहीं। उन्होने कुछ आवेश मे आकर कर्ण को उत्तर दिया–तू यहा से चला जा। ब्राह्मण और क्षत्रिय ही इस विद्या के योग्य पात्र हैं। वे ही इसे प्राप्त कर सकते है। तू सूतपुत्र है। इसलिए हठ मत कर। तू इसका पात्र नही है।

दोणाचार्य का यह उत्तर सुनकर कर्ण बहुत हताश और मन ही मन क्रुद्ध हो गया। वह चुपचाप वहा से खिसक आया। घर आकर भी उसे चैन

न पडा। वह मछली की तरह आवेश के कारण तडपने लगा। उसने विचार किया—हाय मैं क्या करू? द्रोणाचार्य ने आज मेरा अपमान कर दिया है। इस अपमान का वदला अर्जुन को मार कर ही चुकाया जा सकता है। इस विद्या के विना वह मारा नही जा सकता ओर गुरुजी मुझे विद्या नहीं सिखलाते हें। अव में करू तो क्या उपाय करू?

कर्ण फिर सोचने लगा—आखिर यह विद्या परशुराम के पास से द्रोणाचार्य के पास आई है। में भी उन्ही के पास पहुचू तो क्या हर्ज हे? में उनकी सेवा—भक्ति करके यह विद्या प्राप्त कर लूगा।

मित्रो! जहा तक मेरा ख्याल हे ब्रह्मास्त्र का अर्थ आत्म—शक्ति हे क्योकि यह आत्मा ही ब्रह्म है—इन्द्र है। उसका प्रधान अर्थ—धर्म रक्षा करना है। अथवा ब्रह्मास्त्र का अर्थ ब्रह्मचर्य भी हो सकता हे। ब्रह्मचारी को देवादिक भी नमस्कार करते हैं। कहा है—

देवदाणवगधव्वा जक्ख रक्खस्स किन्नरा।
बभयारिं नमसति, दुक्कर त करेति ते।।

अर्थात्—ब्रह्मचर्य रूप कठिन व्रत का पालन करने वाले महापुरुष को देव दानव गधर्व, यक्ष राक्षस ओर किन्नर आदि भी नमस्कार करते हैं।

कर्ण ने विचार किया—परशुराम से विद्या सीखने मे एक वडी अडचन हे। वे ब्राह्मण के सिवाय दूसरे को विद्या नही सिखाते। लेकिन ब्राह्मण क ऊपर प्रकृति ने कोई छाप नही लगाई हे। में ब्राह्मण का रूप धारण करके उनके पास जाऊगा।

इस प्रकार विचार कर कर्ण अपने मित्र दुर्योधन के पास पहुचा। दुर्योधन को आदि से अन्त तक सारी घटना उसने कह सुनाई। दुर्योधन न कहा—मित्र यह वात में पहले ही समझ गया था किन्तु प्रकट मे कह भी ता नही सकता। इतने दिनो तक अर्जुन के प्रति आचार्य का पक्षपात छिपा हुआ था। आज वह खुल गया है।

फिर भी किसी प्रकार यह विद्या तो सीखनी ही चाहिए अन्यथा अपन पक्ष की हार—निश्चित हे। सव शस्त्र समाप्त हो जान पर भी आखिर अर्जुन के पास यह शस्त्र शेप रह जायगा ओर वह अजय हा जायगा।

कर्ण न कहा—मॅन एक उपाय साचा ह। परशुराम इस विद्या क आचार्य हॅ। उन्ही स द्राणाचार्य क पास यह विद्या आई ह। इसलिए उनकी सवा करक यह विद्या उनसे सीख लनी चाहिए।

दुर्योधन–मित्र! तुमने बहुत ठीक सोचा है। म यही कहने वाला था कि तुमने पहले ही कह दिया। मेरी सम्मति है कि अब विलम्ब करने का काम नही। जैसे भी हो इसे पाप्त करके ही चेन लेना चाहिए।

परशुराम किसी जगल मे तप कर रहे थे। कर्ण ब्राह्मण का वेष धारण करके उनके पास जा पहुचा। विधिपूर्वक नमस्कार करके वह उनके सामने बेठ गया। फिर उसने कहा–महाराज! मैं एक भृगुवशी ब्राह्मण हू। आपकी चरण–शरण मे आया हू।

परशुराम–किस पयोजन से मेरे पास आये हो?

कर्ण–में आचार्य दोण का शिष्य हू। उनसे विद्या सीखता था। परन्तु एक दिन उन्होने मेरा बडा अपमान किया।

परशुराम–ऐ ? दोण भृगुवशी ब्राह्मणो का भी अपमान करता है! जिससे विद्या पाई है उन्ही को लात मारता है? बताओ तो! उसने किस प्रकार तेरा अपमान किया।

कर्ण–महाराज मैं सब वृत्तान्त निवेदन करता हू। द्रोणाचार्य शस्त्र–विद्या सिखलाते हैं उनके पास बडे–बडे राजाओ, महाराजाओ के भी लडके विद्या सीखते हैं। एक दिन उन्होने अर्जुन को ब्रह्मास्त्र विद्या सिखलाई। जब मैंने उस विद्या की याचना की तो यह कहकर मेरा अपमान कर दिया कि तुझे यह विद्या सीखने का अधिकार नही है। कारण यह है कि अर्जुन बहुत चालाक है। वह चापलूसी करने मे अव्वल है। तिस पर एक बडे राजा का कुमार है। आचार्य उसके फेर मे आ गये और यहा तक कि अपने पुत्र अश्वत्थामा को भी भूल गये। उन्होने सबके सामने भृगुवश का बडा अपमान किया हे। आप जैसे महापुरुष के रहते भृगुवश का बडा अपमान हो जाना, कोई साधारण बात नही हे। इसलिए में आपकी सेवा मे आया हू। अब इस अपमान को दूर करना आपके हाथ की बात है।

कर्ण की बनावटी बाते सुनकर और उन्हे सच मानकर परशुराम बहुत क्रोधित हुए। वे कहने लगे–कौन ऐसा पुरुष इस पृथ्वी पर है जो मेरे जीते जी भृगुवश का अपमान करने का साहस करे? अच्छा वत्स, आज से तू मेरा शिष्य है। मै तुझे विद्या सिखलाऊगा।

परशुराम की बात सुनकर कर्ण फूला न समाया। उसने सोचा–ठीक है। मेरा जादू असर कर गया।

कर्ण परशुराम की खूब सेवाभक्ति करने लगा। सेवाभक्ति देखकर परशुराम उस पर प्रसन्न हो गए। उन्होने अनेक विद्याए सिखलाई और अन्त मे ब्रह्मास्त्र–विद्या भी सिखला दी। ब्रह्मास्त्र–विद्या सीखने पर कर्ण का घमड

बढ गया। सोचने लगा—अब क्या परवाह हे? अब में सहज ही अर्जुन को परास्त कर सकता हू। लेकिन गुरुजी की आज्ञा लिये बिना जाना ठीक नही है। जब गुरुजी आज्ञा देगे तभी मुझे जाना चाहिए।

एक दिन वृद्ध परशुराम अपने शिष्य कर्ण के हाथ मे हाथ देकर प्राकृतिक दृश्यो को देखने के लिए भ्रमण करने निकले। वे चलते जाते थे और यह भी बतलाते जाते थे कि इस पदार्थ का यह गुण है इसकी यह उपयोगिता है। उन्होने किस पदार्थ का किस प्रकार से वर्णन किया और उसमे क्या आध्यात्मिकता रही थी इसका वर्णन यहा नही किया जा सकता। यह विषय बहुत लम्बा है।

जगल मे घूमते—घूमते परशुराम थक गये। उन्होने कर्ण से कहा—वत्स! थोडी देर यहा सो जावे। कर्ण ने कहा—गुरुदेव की जैसी इच्छा।

परशुराम कर्ण की गोद मे माथा रखकर सो गये। वह नि शक थे और निश्चिन्त थे। किसी प्रकार की चिन्ता उनके पास नही फटकती थी। इस कारण और थकावट के कारण भी उन्हे गहरी नीद आ गई। परशुराम जब सोये हुए थे तो एक जगली कीडा आया। उसने कर्ण की जाघ मे ऐसा डक मारा कि लोहू की धारा बह निकली। कर्ण एक बार तिलमिला उठा। पर यह सोचकर कि अगर मैं शरीर की रक्षा करने जाता हू तो गुरुजी की नीद टूट जाएगी और ऐसा करना शिष्य का कर्त्तव्य नही है वह निश्चिंत बैठा रहा। इतने मे लोहू की धारा परशुराम के शरीर से छुई। लोहू के गरम स्पर्श से उनकी निद्रा भग हो गई। वह उठे ओर लोहू बहते देख पूछने लगे—यह रक्त कहा से आया? मै इसके स्पर्श से अपवित्र हो गया हू। मुझे प्रायश्चित्त करना होगा। इतने ही मे उन्होने देखा कि लोहू तो कर्ण की जाघ से निकल रहा है। उन्होने कारण पूछा। कर्ण ने कहा—एक कीडे ने डक मार दिया हे। आपकी निद्रा भग न हो जाय यह विचार कर मे यो ही बेठा रहा।

कर्ण का उत्तर सुनकर परशुराम ने उसके मुख की आर गोर स देखा। उन्हे अनुमान से मालूम हुआ कि कर्ण ब्राह्मण तो नही हे। तव उन्हाने पूछा—सच—सच कह दे तू कोन हे? मे अनुमान से समझ गया हू कि तू ब्राह्मण नही है। तू क्षत्रिय जान पडता ह। एसा असाधारण धेर्य क्षत्रिय क सिवाय ओर किसी म नही हो सकता। अव तू अपने वचन स कह दे कि वास्तव म तू कोन ह?

कर्ण क्या आशा लगाये वठा था ओर क्या हा गया? वह सावता था कि जागन पर गुरुजी मरी प्रशसा करग पर यहा ता लन क दन पड गय।

वह बुरी तरह घबरा गया। उसने सोचा—महाराज कहीं [illegible]
शाप दे दिया तो कही का नही रहूगा। इसलिए सच्ची बात [illegible]
हक मे ठीक होगा। यह सोचकर कर्ण ने कहा—महाराज [illegible]
कीजिए। मेरे हृदय मे द्रोण का किया अपमान खटक गया था। [illegible]
ब्राह्मण नही हू। ब्राह्मण न होने के कारण कदाचित आप भी [illegible]
कर दे, यही सोचकर मैंने अपने को ब्राहाण पकट किया था। [illegible]
मेरे पिता का नाम अधिरथ और माता का नाम राधा है।

परशुराम—तूने मेरे साथ कपट किया है। तू मेरे सामने [illegible]
अपमान का रोना रोता तो मुझे दया आ सकती थी। परन्तु कपट [illegible]
पर मुझे दया नही आती। फिर भी तूने मेरे पूछने पर सच-सच [illegible]
इसलिए अब तेरे विरुद्ध कुछ भी करना विश्वासघात होगा। इसलिए [illegible]
हू कि मुझ से प्राप्त की हुई सब विद्याए तेरे काम आएगी। लेकिन [illegible]
फल तुझे अवश्य भोगना पडेगा और वह फल यह हे कि ब्रह्मास्त्र तेरे [illegible]
नही आएगा। समय पर तू ब्रह्मास्त्र विद्या भूल जाएगा। बस, यही तेरे [illegible]
का फल है।

यह कथा जैन ग्रन्थो मे नही है। लेकिन इसमे मुझे कुछ सार-[illegible]
दिखाई दिया अतएव आपको सुना दी है। इस कथा का सार यह है कि
कपटपूर्वक की हुई सब क्रियाओ पर पानी फिर जाता हे।

वास्तव मे झूठ बडा पाप है। कहा भी है—

नहि असत्य सम पातक दूजा।
गिरि सम होइ कि कोटिक गुजा।।

असत्य के समान कोई दूसरा पातक नही है। दूसरे पाप गुजा अर्थात चिरमी के समान हैं और असत्य का पाप पहाड के समान है। शास्त्रो मे कहा है कि ब्रह्मचर्य व्रत को भग करने वाला साधु प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध होकर आचार्य पदवी पा सकता है परन्तु सत्यव्रत को भग करने वाला अर्थात् झूठ बोलने वाला साधु आचार्य उपाध्याय आदि सात पदवियो मे से कोई भी पदवी पाने का अधिकारी नहीं है। कारण यह है कि यदि कोई वस्त्र मलिन हो जाता है तो वह पानी से धो लिया जाता हे लेकिन जब पानी ही मैला हो जाय तो उसे किससे धोया जाय?

सत्य-व्रत पानी के समान है और दूसरे व्रत कपडे सरीखे हैं। दूसरे व्रतो की मलिनता सत्य के द्वारा साफ की जा सकती है किन्तु सत्य की मलिनता को किससे साफ किया जाय? अर्थात जो व्यक्ति सत्य ही नही बोलता उसे क्या दण्ड और प्रायश्चित्त दिया जाय?

तात्पर्य यह हे कि जहा झूठ अपनी जड जमा लेता है, वहा दूसरे पापो की गणना ही नही रहती। झूठ सब पापो का मूल हे। अतएव अपने कल्याण की कामना करने वाले पुरुष को झूठ का त्याग करना आवश्यक है। झूठ–कपट से कभी किसी की भलाई नही होती।

कर्ण जिस आशा से परशुराम के पास गया था वह आशा धूल मे मिल गई। आहत हृदय लेकर वह वहा से लौटा। उसके मन मे बडी व्यथा यह थी कि मैंने बडे परिश्रम से विद्या उपार्जन की थी, लेकिन गुरु के शाप से वह वृथा हो गई।

दुर्योधन यह आशा लगाये बैठा था कि कर्ण ब्रह्मास्त्र–विद्या सीखकर आ रहा हे सो अपने पौ–बारह हे। जब कर्ण लौटकर दुर्योधन के पास आया तो उसने बडे हर्ष के साथ उसका स्वागत किया और बडी उत्कठा के साथ पूछा–कहो मित्र, सफलता मिली?

कर्ण ने ठडी सास लेकर कहा–सब किए–कराए पर पानी फिर गया। मैंने सब विद्याए सीख ली थीं किन्तु वह निष्फल हो गई।

दुर्योधन ने चिन्ता के साथ कहा–सो कैसे?

कर्ण ने आद्योपान्त सब वृत्तान्त दुर्योधन को सुना दिया। दुर्योधन के दु ख का पार न रहा। उसने सोचा–कर्ण को अर्जुन के समान समझकर मैंने विद्या सीखने के लिए भेजा था। सोचा था कि यह अर्जुन का नाश करेगा ओर अर्जुन का नाश हो जाने पर दूसरे पाण्डव भी जीवित न रह सकेगे। इस प्रकार सहज ही में राजा बन जाऊगा। लेकिन जान पडना हे भाग्य मे कुछ ओर ही लिखा हे। मेरी आशा पूरी होती नहीं दिखाई देती।

मन मे ऐसा सोचकर भी कर्ण से उसने कहा–मित्र चिन्ता मत करो। शाप से विद्या निष्फल नहीं होती। धेर्य रखो। शाप के भय से विद्या का अपमान मत करो।

दुर्योधन की यह सान्त्वना पाकर कर्ण को कितना सन्तोष हुआ होगा यह कहना कठिन हे। लेकिन कर्ण के हृदय मे छाया हुआ विपाद कम नही हुआ।

कर्ण ओर दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास गये। द्रोणाचार्य ने कहा–कर्ण तुम मेरे शिष्य होकर भी मुझे पूछे विना इतने दिनो तक कहा रह?

कर्ण न कुछ अकड कर कहा–आपन सूतपुत्र कहकर मरा अपमान कर दिया था आर मुझ ब्रह्मास्त्र–विद्या नही सिखलाई थी। मुझ यह विद्या अवश्य सीखनी थी। इसलिए म आपक गुरु क पास गया था ओर वहा वह विद्या सीखकर अभी लाटा हू।

कर्ण ने कुछ उदासभाव से कहा–हा बात तो ऐसी है।

द्रोणाचार्य ने विचार किया–राजकुमारो को शिक्षा दी है तो इनकी परीक्षा भी कर लेनी चाहिए। यह सोचकर वे एक दिन जगल मे गये। जगल मे उन्हे मोर का एक पख मिला। द्रोणाचार्य ने उस पख को जल–कुण्ड पर स्थित एक ताड के पेड स बाध दिया। इसके बाद उन्होने अश्वत्थामा को भेज कर सब शिष्यो को बुलाया। सबके आ जाने पर उन्होने कहा–मैंने तुम लोगो को अब तक जो शिक्षा दी है आज उसकी परीक्षा देनी पडेगी। यद्यपि शिक्षा देने मे मैंने किसी प्रकार का भेदभाव नही किया लेकिन शिक्षा का सम्बन्ध हृदय से है। अतएव अभी मालूम हो जाएगा कि किसने कितनी शिक्षा ग्रहण की है।

द्रोणाचार्य ने सबको धनुष चढाने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर सबने धनुष चढा लिये। तब आचार्य बोले–इस कुण्ड के जल मे जो ताड वृक्ष दिखाई देता है उस पर एक मोर पख बधा है। जो विद्यार्थी जल मे देखकर मोरपख के चन्द्र का वेध देगा वही धनुर्विद्या मे निष्णात माना जाएगा। उसी को राधावेधी की उपाधि दी जाएगी।

सभी विद्यार्थियो के दिल मे उपाधि लेने की उमग उठी। सबसे पहले दुर्योधन लपका। जब वह निशाना साध चुका तो आचार्य ने उससे पूछा–इस कुड के जल म तुझे क्या दिखाई देता है?

दुर्योधन–मुझे वृक्ष पत्ते मोर–पख आदि सभी कुछ दीख रहा है।

द्रोण–तो तुम निशाना नही लगा सकते।

अन्य राजकुमारा से भी यही प्रश्न पूछा गया। उत्तर भी सबने यही दिया। आखिर अर्जुन की बारी आई। उससे भी आचार्य न यही प्रश्न किया। अर्जुन ने उत्तर दिया–इस समय मुझ मोर–पख का चन्द्र ओर अपने बाण की नोक ही दिखाई देती है। इन दोना का छोडकर ओर कुछ भी नही दीखता।

द्रोणाचार्य ने सबस बाण चलान के लिए कहा। सभी न बाण चलाए। किन्तु अर्जुन के सिवाय ओर सभी क बाण निष्फल गय। अर्जुन न पख का चन्द्र छेद दिया।

द्रोणाचार्य न अर्जुन का छाती स लगा कर कहा–वत्स तू बाण न लगा पाता तो अब तक का मरा परिश्रम वृथा हा जाता। तूने मरी लाज भी रख ली आर विद्या भी रख ली।

द्रोणाचार्य न अन्य शिष्या स कहा–मैंन तुम सबका समान रूप स धनुर्विद्या सिखलाई ह पर तुम लाग ध्यान नही दत। अर्जुन मरी शिक्षा पर पूरा ध्यान दता ह इसी कारण उस सफलता मिली ह।

दोणाचार्य की बात सुनकर दुर्योधन और कर्ण के हृदय मे आग–सी लग गई। उन्हे अर्जुन की पशसा सहन नही हुई। वे आपस मे कहने लगे–स्पष्ट है कि गुरुजी पक्षपात करते है। उन्होने अर्जुन को मन का साधना बतलाया है और हम लोगो को नही बतलाया। हमे मन की साधना बतलाई होती तो क्या हम लोग निशाना नही लगा सकते थे?

दुर्योधन भले ही ईर्ष्या के वश होकर द्रोणाचार्य पर पक्षपात करने का आरोप लगावे परन्तु वह वास्तव मे शिक्षा देने मे पक्षपात नही करते थे। प्रश्न किया जा सकता है कि दोण दुर्योधन आदि के स्वभाव से परिचित होकर भी और उन्हे आसुरी पकृति का पतिनिधि समझकर भी क्यो शिक्षा देते थे? क्या वे अपनी शिक्षा का भविष्य मे दुरुपयोग होना नही समझ पाये थे?

इस पश्न के उत्तर मे यह प्रश्न किया जा सकता हे कि भगवान् महावीर ने गोशाला को लब्धि क्यो सिखलाई? गोशाला ने भगवान् पर उन्ही की सिखलाई हुई लब्धि का प्रहार किया था और भगवान् चार ज्ञान के धनी थे। फिर भी क्यो उन्होने उसे लब्धि सिखलाई?

विरोध मे जब विशेष बल वाला होता है, तभी बल की ठीक परीक्षा होती है। सभवत इसी कारण से भगवान् ने गोशाला को लब्धि सिखलाई होगी।

इसी पकार द्रोण यद्यपि कौरवो की प्रकृति को जान गए थे किन्तु वे यह भी जानते थे कि दैवी और आसुरी प्रकृति का प्रतिनिधित्व वही भलीभाति कर सकेगे जो समान रूप से शिक्षा पाये हो। एक को शिक्षा देना ओर दूसरे को अशिक्षित रखना उचित नहीं है। वीर क्षत्रिय किसी को निर्बल बनाकर उस पर आघात नही करते और न अस्त्रहीन पर अस्त्र चलाते हैं। अगर उन्हे कभी निरस्त्र से लडना पडता है तो वे उसे भी अस्त्र दे देते हैं। कायर शायद विचार करे कि शत्रु के हाथ मे हथियार क्यो दिया जाय? किन्तु शूरवीर पुरुष ऐसा विचार नही करते।

द्रोणाचार्य के शिष्यो मे दुर्योधन और भीम गदा चलाने मे युधिष्ठिर रथ चलाने मे अर्जुन धनुर्विद्या मे और नकुल तथा सहदेव असियुद्ध मे विशेष निष्णात हुए। अन्यान्य राजकुमार भी सुशिक्षित हो गये।

एक दिन दोणाचार्य ने विचार किया–कौरवो और पाण्डवो को मैं शिक्षा दे चुका हू। अब व्यर्थ काल व्यतीत करना उचित नही है। मैंने जो शिक्षा दी है उसका प्रदर्शन करके राजकुमारो को जनता पर प्रभाव डालना चाहिए।

कर्ण ने कुछ उदासभाव से कहा—हा बात तो ऐसी है।

द्रोणाचार्य ने विचार किया—राजकुमारो को शिक्षा दी है तो इनकी परीक्षा भी कर लेनी चाहिए। यह सोचकर वे एक दिन जगल मे गये। जगल मे उन्हे मोर का एक पख मिला। द्रोणाचार्य ने उस पख को जल—कुण्ड पर स्थित एक ताड के पेड से बाध दिया। इसके बाद उन्होने अश्वत्थामा को भेज कर सब शिष्यो को बुलाया। सबके आ जाने पर उन्होने कहा—मैंने तुम लोगो को अब तक जो शिक्षा दी है, आज उसकी परीक्षा देनी पडेगी। यद्यपि शिक्षा देने मे मैंने किसी प्रकार का भेदभाव नही किया लेकिन शिक्षा का सम्बन्ध हृदय से है। अतएव अभी मालूम हो जाएगा कि किसने कितनी शिक्षा ग्रहण की है।

द्रोणाचार्य ने सबको धनुष चढाने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर सबने धनुष चढा लिये। तब आचार्य बोले—इस कुण्ड के जल मे जो ताड वृक्ष दिखाई देता है उस पर एक मोर पख बधा है। जो विद्यार्थी जल मे देखकर मोरपख के चन्द्र का बेध देगा वही धनुर्विद्या मे निष्णात माना जाएगा। उसी को 'राधावेधी' की उपाधि दी जाएगी।

सभी विद्यार्थियो के दिल मे उपाधि लेने की उमग उठी। सबसे पहले दुर्योधन लपका। जब वह निशाना साध चुका तो आचार्य ने उससे पूछा—इस कुड के जल मे तुझे क्या दिखाई देता हे?

दुर्योधन—मुझे वृक्ष, पत्ते मोर—पख आदि सभी कुछ दीख रहा हे।

द्रोण—तो तुम निशाना नहीं लगा सकते।

अन्य राजकुमारो से भी यही प्रश्न पूछा गया। उत्तर भी सबने यही दिया। आखिर अर्जुन की बारी आई। उससे भी आचार्य ने यही प्रश्न किया। अर्जुन ने उत्तर दिया—इस समय मुझे मोर—पख का चन्द्र ओर अपने बाण की नोक ही दिखाई देती है। इन दोनो को छोडकर ओर कुछ भी नही दीखता।

द्रोणाचार्य ने सबसे बाण चलाने के लिए कहा। सभी ने बाण चलाये। किन्तु अर्जुन के सिवाय ओर सभी के बाण निष्फल गये। अर्जुन ने पख का चन्द्र छेद दिया।

द्रोणाचार्य ने अर्जुन को छाती से लगा कर कहा—वत्स तू बाण न लगा पाता तो अब तक का मेरा परिश्रम वृथा हो जाता। तूने मेरी लाज भी रख ली ओर विद्या भी रख ली।

द्रोणाचार्य ने अन्य शिष्यो से कहा—मॅंने तुम सबको समान रूप स धनुर्विद्या सिखलाई है पर तुम लोग ध्यान नही देते। अर्जुन मेरी शिक्षा पर खूब ध्यान देता ह इसी कारण उसे सफलता मिली हे।

दोणाचार्य की बात सुनकर दुर्योधन और कर्ण के हृदय मे आग–सी लग गई। उन्हे अर्जुन की पशसा सहन नही हुई। वे आपस मे कहने लगे–स्पष्ट है कि गुरुजी पक्षपात करते है। उन्होने अर्जुन को मन का साधना बतलाया है और हम लोगो को नही बतलाया। हमे मन की साधना बतलाई होती तो क्या हम लोग निशाना नही लगा सकते थे?

दुर्योधन भले ही ईर्ष्या के वश होकर दोणाचार्य पर पक्षपात करने का आरोप लगावे परन्तु वह वास्तव मे शिक्षा देने मे पक्षपात नही करते थे। प्रश्न किया जा सकता है कि दोण दुर्योधन आदि के स्वभाव से परिचित होकर भी और उन्हे आसुरी प्रकृति का प्रतिनिधि समझकर भी क्यो शिक्षा देते थे? क्या वे अपनी शिक्षा का भविष्य मे दुरुपयोग होना नही समझ पाये थे?

इस प्रश्न के उत्तर मे यह प्रश्न किया जा सकता हे कि भगवान् महावीर ने गोशाला को लब्धि क्यो सिखलाई? गोशाला ने भगवान् पर उन्ही की सिखलाई हुई लब्धि का प्रहार किया था और भगवान् चार ज्ञान के धनी थे। फिर भी क्यो उन्होने उसे लब्धि सिखलाई?

विरोध मे जब विशेष बल वाला होता है, तभी बल की ठीक परीक्षा होती है। सभवत इसी कारण से भगवान ने गोशाला को लब्धि सिखलाई होगी।

इसी पकार द्रोण यद्यपि कौरवो की प्रकृति को जान गए थे किन्तु वे यह भी जानते थे कि दैवी और आसुरी प्रकृति का प्रतिनिधित्व वही भलीभाति कर सकेगे जो समान रूप से शिक्षा पाये हो। एक को शिक्षा देना और दूसरे को अशिक्षित रखना उचित नहीं है। वीर क्षत्रिय किसी को निर्बल बनाकर उस पर आघात नही करते और न अस्त्रहीन पर अस्त्र चलाते हैं। अगर उन्हे कभी निरस्त्र से लडना पडता है तो वे उसे भी अस्त्र दे देते हैं। कायर शायद विचार करे कि शत्रु के हाथ मे हथियार क्यो दिया जाय? किन्तु शूरवीर पुरुष ऐसा विचार नही करते।

द्रोणाचार्य के शिष्यो मे दुर्योधन और भीम गदा चलाने मे युधिष्ठिर रथ चलाने मे अर्जुन धनुर्विद्या मे और नकुल तथा सहदेव असियुद्ध मे विशेष निष्णात हुए। अन्यान्य राजकुमार भी सुशिक्षित हो गये।

एक दिन दोणाचार्य ने विचार किया–कौरवो और पाण्डवो को मैं शिक्षा दे चुका हू। अब व्यर्थ काल व्यतीत करना उचित नही है। मैंने जो शिक्षा दी है उसका पदर्शन करके राजकुमारो को जनता पर प्रभाव डालना चाहिए।

इसके अतिरिक्त मेरी दी हुई शिक्षा की जब तक चार भले आदमी परीक्षा न कर ले तब तक मेरी शिक्षा की वास्तविकता का पता नही लग सकता। अतएव अब सर्वसाधारण के समक्ष राजकुमारो की परीक्षा हो जाना उचित है। इससे मुझ पर कोई दोष भी नहीं रह जाएगा।

10 : अन्तिम परीक्षा तैयारी

राजकुमारो की अन्तिम परीक्षा लेने का विचार करके आचार्य दोण पितामह भीष्म के पास पहुचे।

दोण को आया देखकर पितामह भीष्म ने कहा—आज आपका अकस्मात कैसे आगमन हुआ? आपका आना निष्कारण नहीं हो सकता।

दोण—जी हा मै निष्कारण नही आया हू। राजकाज करने वालो के पास निष्पयोजन जाकर उन पर अधिक बोझ डालना उचित भी नही है।

भीष्म—ठीक है तो कहिए किस निमित्त आना हुआ है?

दोण—राजकुमारो ने शिक्षा प्राप्त कर ली है, परन्तु हीरे की परीक्षा सान पर चढने पर ही होती है। राजकुमार अगर परीक्षा मे उत्तीर्ण हो तो ही उनकी शिक्षा का पता चल सकता है। अतएव राज परिवार और प्रजाजनो के सामने राजकुमारो की परीक्षा हो जानी चाहिए। सर्वसाधारण के सामने परीक्षा होने से बहुत से दुष्ट—लोग तो राजकुमारो की शिक्षा देखकर ही दब जाएगे। शक्ति—पदर्शन से भी बहुत—सा काम हो जाता है।

भीष्म—आपका विचार यथार्थ है। परीक्षा लेने का विचार तो मेरे मन मे भी आया था पर यह सोचकर रह गया कि जब तक आचार्य स्वय नही कहते तब तक शिक्षा मे हस्तक्षेप करना उचित नही है। आप स्वय दक्ष और कुशल है। अवसर देखकर ही आपने बात कही है। शीघ्र ही सबके समक्ष राजकुमारो की परीक्षा पारभ कर दी जाय।

दोणाचार्य ने परीक्षा—स्थल का निश्चय किया और भूमि परिष्कृत करके वहा एक मण्डप बनवाया। उस मण्डम मे कुछ मचान बधवाए और ऐसी योजना की कि एक ओर राजपुरुष उन पर बैठकर देख सके और दूसरी ओर राज—महिलाए भी भलीभाति देख सके। इसी प्रकार प्रजाजनो के बैठने के लिए भी सुन्दर व्यवस्था की गई और इस बात का ध्यान रखा गया कि परीक्षा देने वालो को किसी पकार की असुविधा न हो।

परीक्षा के लिए बनी हुई रगभूमि का वर्णन महाभारत और पाण्डव पुराण मे बहुत विस्तारपूर्वक और काव्यमय किया गया है। उस वर्णन को पढने से अनायास ही मालूम हो जाता हे कि पुराने जमाने मे शस्त्रविद्या के साथ ही साथ शिल्पकला भी कितनी उन्नत थी।

आज शस्त्रविद्या का स्थान बमो ने ले लिया हे। लोग निश्चिन्त बैठे है और अचानक शत्रुपक्ष का वायुयान आकर उन पर मौत की वर्षा कर देता

है । इस प्रकार बमवर्षा करके मनुष्यो की हत्या कर डालना कोई वीरता का काम नही है। प्राचीन काल मे ऐसा अधर्म–युद्ध नही होता था जिसमे किसी को अपना बचाव करने का अवसर न मिले। बचाव करने की कम–बढ शक्ति सभी मे होती है, परन्तु उसका उपयोग अवकाश मिलने पर ही किया जा सकता है। सिह आदि हिसक पशु जिन दूसरे पशुओ का शिकार करते हैं, उन पशुओ के पास भी बचाव का कुछ साधन होता ही है तो फिर मनुष्य की बात ही क्या है? लेकिन छल–कपट से लुक–छिपकर किसी पर आक्रमण कर देना कोई बहादुरी नही बल्कि कायरता है। पहले के योद्धा नीति से काम लेते थे।

द्रोणाचार्य ने रगभूमि बनाने मे भी अपनी कला–कुशलता का परिचय दिया। उन्होने सुन्दरता के साथ योजना की।

मण्डप बन गया। परीक्षा का समय सन्निकट आ गया। जनता की भीड उमड पडी। द्रोणाचार्य जैसे प्रख्यात आचार्य से शिक्षा पाये हुए राजकुमारो का कला–कौशल भला कौन न देखना चाहता? नर, नारी, बालक वृद्ध सभी परीक्षास्थल मे आ गये। राजपरिवार के लोग भी उपस्थित हो गए। जब सब लोग शाति के साथ अपने–अपने नियत स्थान पर बैठ गए तो द्रोणाचार्य अपनी शिष्य–मण्डली को अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित करके परीक्षा–स्थल मे ले आये। अपनी शिष्यमण्डली के बीच आज उनके चेहरे पर एक अपूर्व ही दीप्ति थी। जिस पर ऊपर से नीचे तक धारण किये हुए श्वेत वस्त्र और ललाट पर लगा हुआ श्वेत चदन उनके ध्वज–यश का विस्तार कर रहा था। द्रोणाचार्य को देखकर लोगो का हृदय आदर से पूर्ण हो गया।

राजकुमारो के चेहरे भी अद्‌भुत तेज से प्रकाशमान हो रहे थे। उनका तेज आश्चर्यजनक था। सभी के हृष्ट–पुष्ट शरीर तेजस्वी ललाट और चमकती हुई आखे एक विचित्र शोभा उत्पन्न कर रहे थे।

उस समय के छात्र आजकल के छात्रो के समान निस्तेज ओर दुर्बल नही होते थे। आज के छात्र बी ए होते–होते अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश कर बैठते हैं। मुह पिचक जाता हे ओर आखे भीतर की तरफ धस जाती हैं। इन राजकुमारो मे जो तेज था वह विशेषत व्रह्मचर्य का तेज था। पहले के छात्रो को ज्ञान के साथ चरित्र भी सिखाया जाता था ओर व्रह्मचर्य की शिक्षा विशष तार से दी जाती थी। परन्तु आज के कालेजो मे सदाचार के लिए कोई स्थान ही नही जान पडता। यही नही वल्कि कही–कही तो दुराचार भी सिखलाया जाता हे। गाधीजी ने लिखा हे– मे जव विलायत मे पढता था तव

शिक्षा पाने वाले को शिक्षालय की ओर से दो बोतल शराब मिलती थी, जो मेरे शराब पाने के लालच से बने हुए मित्र ही ले लेते थे। उन मित्रो ने मुझसे मित्रता ही इसलिए जोड रखी थी कि ये शराब नही पीयेगे और इनकी शराब हमे मिल जायेगी। पहले के जमाने मे इस प्रकार की शिक्षा नही दी जाती थी।

एक साथ सब तेजस्वी राजकुमारो को देखकर राजपरिवार के पुरुष और महिलाए गौरव से फूल उठे। उनके नेत्र मानो निहाल हो गए।

11 राजकुमारो की परीक्षा

द्रोणाचार्य ने राजकुमारो को सावधान होने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही सब एकदम सावधान हो गए। तदनन्तर आचार्य ने शस्त्र उठाने की आज्ञा दी। द्रोणाचार्य के आदेशानुसार राजकुमारो ने उसी प्रकार के सब कार्य किये जैसे आजकल के फौजी सिपाही कवायद करते हैं। कवायद करने की प्रथा आजकल की नहीं वरन् प्राचीन काल से चली आ रही है।

तत्पश्चात द्रोणाचार्य ने दर्शको को लक्ष्य करके कहा—'अब राजकुमार बाण—विद्या का प्रदर्शन करेगे, आप लोग देखिए।' सबकी उत्सुकता बढ गई। सन्नाटा छा गया।

राजकुमार आकाश की ओर—ऊपर बाण चलाने लगे। बाण इतनी फुर्ती के साथ चलाते जा रहे थे कि पता नहीं चलता था कि किसने कब चलाया? वे एक दूसरे के बाणो को काटते भी जाते थे। सब लोग राजकुमारो की धनुर्विद्या को देखकर चकित रह गये।

द्रोण कहने लगे—आपने अन्य राजकुमारो का बाण चलाना तो देख लिया मगर अर्जुन को मैंने अलग खडा रखा है। इसका कारण यह है कि उसमे धनुर्विद्या का असाधारण कौशल है। अर्जुन के कौशल को आप सबके साथ नही देख सकते थे। इसलिए मैंने उसे अभी अलग रखा है। अल्पशक्ति के साथ महाशक्ति का परिचय नही कराया जा सकता। अतएव अर्जुन की कुशलता को अलग देखना ही उचित होगा।

द्रोणाचार्य की बाते सुनकर भीष्म आदि सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। धृतराष्ट्र कहने लगे—में आखो से तो अन्धा हू, राजकुमारो का कोशल देख नही सकता लेकिन कानो से बडी प्रिय बाते सुन रहा हू। गाधारी और कुन्ती आदि रानिया भी रगभूमि के दृश्य देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई।

वाण—विद्या की परीक्षा करने के पश्चात् रथ—विद्या की वारी आई। राजकुमार अपने—अपने रथो मे वेठकर इधर उधर—घूमने लगे। स्वय दूसरे पर आघात करते हुए आत्मरक्षा भी करने लगे। कोन राजकुमार कब किधर से निकला आर किधर गया किसका वाण किसके द्वारा ओर कब काटा गया किसने कव वाण चलाया इत्यादि वाते कुछ समझ मे ही नही आती थी। सव दर्शक आश्चर्यचकित रह गय ओर रथ—विद्या सिखाने वाले आचार्य द्राण की मुक्तकठ स प्रशसा करन लग।

इस प्रकार रथ–विद्या की परीक्षा के बाद सबने घुडदौड दिखलाई। दौडते हुए घोडे पर से हाथी पर कूद जाना हाथी पर से कूद कर रथ मे बैठ जाना रथ से उछल कर घोडे पर सवार हो जाना या हाथी पर कूद जाना इत्यादि विचित्र– विचित्र कलाए देखकर जनता फिर राजकुमारो की प्रशसा करने लगी।

घुडदौड के पश्चात् द्रोणाचार्य ने आज्ञा दी–एक ओर युधिष्ठिर हो जाय और दूसरी ओर शेष सब राजकुमार हो जाए। सब मिल कर युधिष्ठिर को घेरे और युधिष्ठिर सबके घेरे मे से अपना रथ निकाल ले जाए।

आज्ञानुसार सब राजकुमारो ने युधिष्ठिर का रथ घेर लिया। युधिष्ठिर अपने रथ को घेरे मे से बाहर निकालने के लिए कुम्भार के चाक से भी अधिक तेजी के साथ घुमाने लगे और सब बाणो से अपना बचाव करते हुए सकुशल बाहर निकल आये।

द्रोणाचार्य ने कहा–तुमने हमारी प्रतिष्ठा बचा ली।

युधिष्ठिर ने विनीत स्वर मे उत्तर दिया–बस, आपका ही प्रताप है।

इसके पश्चात् असि–परीक्षा आरम्भ हुई। द्रोणाचार्य ने नकुल और सहदेव से कहा– 'तुम दोनो अपनी असि के बल पर सब के घेरे मे से निकल आओ। सब राजकुमार दोनो को घेर कर तलवार चलाने लगे, लेकिन नकुल और सहदेव अपनी तलवार से सब के प्रहारो को बचाते हुए घेरे से बाहर निकल आये।

12 . गदा–युद्ध

इसके बाद गदा–युद्ध की परीक्षा का समय आया। द्रोणाचार्य ने भीम और दुर्योधन से कहा–तुम दोनो गदा–युद्ध द्वारा अपनी शिक्षा का परिचय दो।

भीम क्रोधी तो था ओर इस कारण वह किसी की ललकार नहीं सह सकता था, परन्तु था वह देवी प्रकृति का ही। इसके विरुद्ध दुर्योधन आसुरी प्रकृति का था। उसका हृदय द्वेष से भरा हुआ था। वह मन ही मन सोचने लगा–गुरुजी ने आज अच्छा अवसर दिया है। आज अपनी गदा के प्रहार से मैं भीम को यमधाम ही पहुचा दूगा। इस अवसर पर भीम का अन्त कर डालने से मैं कलक से भी वच जाऊगा, गदा चलाते समय उसकी चोट लग जाए और भीम बचा नहीं सके तो इसमे मेरा क्या अपराध गिना जा सकता हे?

छल–कपट करना, काम कुछ और करना तथा बहाना कुछ ओर वनाना आसुरी प्रकृति के लक्षण है।

भीम और दुर्योधन अपनी–अपनी गदा सभाल कर खडे हुए। दोनो मे तुमुल युद्ध होने लगा। यद्यपि दुर्योधन भीम को मार डालने के इरादे से ही गदा चला रहा था किन्तु भीम बडी सफाई के साथ उसके प्रहार को बचा लेता था। भीम के मन मे किसी प्रकार की दुर्भावना नहीं थी इसलिए वह दुर्योधन को मार डालने के उद्देश्य से गदा नही चलाता था। भीम और दुर्योधन की गदाए पहाड की तरह लड जाती थीं ओर दर्शक भयभीत हो रहे थे। यह कठोर और भयानक सग्राम देख–देखकर बहुतो का कलेजा सूखा जा रहा था। थोडी देर मे दुर्योधन की दुर्भावना दर्शको पर प्रकट हो गई। दर्शको की भीड में से ध्वनि सुनाई दी–दुर्योधन बेकायदा गदा चला रहे हैं। कुछ लोग दर्शको मे दुर्योधन के पक्ष के थे। वे कहने लगे–नही दुर्योधन की गदा ठीक चल रही है और वे लोग दुर्योधन की प्रशसा भी करने लगे।

दुर्योधन की दुर्भावना देखकर ओर उसके पक्ष के लोगो द्वारा उसकी प्रशसा सुनकर भीम भी क्रुद्ध हो उठा। दोनो मे परीक्षा के वदले भयकर युद्ध होने लगा। ऐसा जान पडता था मानो दो मदोन्मत हाथी अपनी सूडा से आपस मे घमासान युद्ध कर रहे हा। लोगा को भय हुआ कि आज पृथ्वी से या ता दुर्योधन उठ जाएगा या भीम समाप्त हो जाएगा।

लाग चिल्लान लग–अनर्थ घार अनर्थ हा रहा हे। युद्ध वन्द हाना चाहिए।

द्रोणाचार्य सोचने लगे—अनर्थ हो गया तो बडा अपयश होगा। उन्होने अपने पुत्र अश्वत्थामा से कहा—पुत्र, तुम इन दोनो को छुडा दो।

अश्वत्थामा दोनो के बीच मे खडा हो गया। अश्वत्थामा स्वय वीर था और उसके पति दुर्योधन या भीम की दुर्भावना नही थी। अश्वत्थामा ने दोनो के गदा सहित हाथ रोक लिये। दोनो की गदाए दोनो के हाथो मे रह गई और गदा—युद्ध का अन्त हो गया।

13 अर्जुन की परीक्षा

जब सब राजकुमार परीक्षा दे चुके तब इन्द्र के समान तेजस्वी सूर्य के समान प्रकाशमान, सिह के समान वीर और बैल के समान वीर्यवान अर्जुन से द्रोणाचार्य ने कहा—आओ वत्स, अब तुम्हारी बारी है। तुम अपनी कला दिखलाओ।

आचार्य का आदेश पाकर सुनहरा कवच पहने हुए अर्जुन परीक्षास्थल मे आये। अर्जुन की शान निराली थी। उसे देखकर सब लोग कहने लगे—यह धनुर्धारी ही कुन्ती का पुत्र अर्जुन है? अब तक तो अर्जुन की प्रशसा ही सुनी है अब देखे, यह कैसे वीर हैं?

कोलाहल सुनकर उधर धृतराष्ट्र ने विदुर से पूछा— यह कोलाहल क्यो हो रहा है?

विदुर ने कहा—अब अर्जुन परीक्षा देने आया है।

धृतराष्ट्र ने कहा—अर्जुन का कौशल देखने के लिए लोग इतने लालायित हैं? बडी प्रसन्नता की बात है।

अर्जुन ने सबको प्रणाम करके कहा—मैं जो कला प्रदर्शित कर रहा हू, वह मेरी नहीं गुरुजी की है। मैं पेटी हू, गुरु उसके स्वामी हैं। पेटी मे जो वस्तु रखी है वह पेटी की नहीं हो सकती उसके स्वामी की ही होगी।

अर्जुन की विनम्रता देखकर आचार्य और दूसरे लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। किसी ने कहा—नम्रता और विनयशीलता की कला मे अर्जुन सर्वप्रथम है ओर कलाए तो बाद मे देखेगे यह कला तो देख ही चुके। जो अपने विद्या—गुरु के प्रति इतनी भक्ति रखता है वह अवश्य ही विशिष्ट विद्यावान् होगा।

द्रोण ने कहा—यह वहुत विनयवान् हे।

इतना कहकर उन्होने अर्जुन के सिर पर हाथ फेर कर कहा—अर्जुन तुमने वाणी से तो सव को जीत ही लिया है लेकिन अब कला दिखलाओ।

अर्जुन ने वीरता ओर धीरता के साथ अपना धनुप चढाया। धनुप चढाकर उसने अग्निवाण छोडा। अग्निवाण छूटते ही ज्वाला प्रकट हुई। दर्शक डरन लगे कि कही अर्जुन का यह वाण हमे भस्म न कर दे। इतने ही म उसन वरुणवाण छाडा ओर अग्नि शान्त हो गई।

दर्शक सोचने लगे—अर्जुन मे कोई दैवी—शक्ति जान पडती है, नही तो एक बाण मारते ही आग और दूसरे बाण से पानी ही कैसे प्रकट हो गया?

अर्जुन के बाण से इतना पानी हो गया कि लोगो को बह जाने की आशका होने लगी। उसी समय अर्जुन ने पवनबाण चला दिया। उसने सारा पानी एकदम सोख लिया।

लोग यह देखकर आश्चर्य कर ही रहे थे कि एक बाण और चला। वह तिमिरबाण था। इस बाण के चलते ही सब ओर अधकार ही अधकार छा गया। तब तिमिरबाण का निराकरण करके अर्जुन ने एक और विचित्र बाण छोडा। उस बाण के छूटते ही सब जगह पर्वत ही पर्वत उडते नजर आने लगे। थोडी देर पर्वत उडने के बाद एक और बाण चलाकर पर्वतो को विलीन कर दिया। बाण चलाते समय अर्जुन कभी प्रकट रहता और कभी अप्रकट हो जाता था। इस प्रकार अर्जुन ने धनुर्विद्या की भलीभाति परीक्षा दी, मानो कोई जीवात्मा खेल दिखा रहा हो।

धनुर्विद्या की परीक्षा समाप्त हो जाने पर अर्जुन ने गुरु के चरणो मे फिर प्रणाम किया। इसके पश्चात् वह सूक्ष्म अस्त्रो के सचालन का कौशल दिखलाने लगा। फिर कभी हाथी पर कभी घोडे पर, कभी रथ पर, कही एक रूप मे कही अनेक रूपो मे सवार दिखाई देने लगा।

अर्जुन का यह सब अनुपम कौशल देखकर दर्शक मुग्ध हो गए। लोग आपस मे कहने लगे—आचार्य का यह कथन ठीक ही था कि महान् प्रकृति वाले की साधारण प्रकृति वाले के साथ परीक्षा नही होनी चाहिए। लोग वाह—वाह की ध्वनि के साथ अर्जुन का अभिनन्दन करने लगे। कोई अर्जुन को धन्य कहता कोई पाण्डव—कुल को धन्य कहता और कोई द्रोणाचार्य को धन्य कहता था।

इस प्रकार चारो ओर अर्जुन की प्रशसा सुनकर कौरव बुरी तरह जल—भुन गये। वे आपस मे कहने लगे—आचार्य कितने पक्षपाती हैं कि उन्होने अर्जुन को अग्निबाण वरुणबाण, वायुबाण चलाना आदि सभी कुछ सिखा दिया और हमे इनमे से कुछ भी नही सिखलाया। यह परीक्षा क्या हुई हमारे हृदय मे आग लगाने वाली बात हो गई।

14 कर्ण की चुनौती

कौरव उदास बैठे हुए थे और अर्जुन अपने स्थान पर पहुच चुका था। इतने मे ही बाहर से आया हुआ घोर शब्द सुनाई दिया। वह शब्द कान मे पडकर भय उत्पन्न करता था। लोग सोचने लगे—यह शब्द किसका है और कहा से आ रहा है? लोग आश्चर्य मे डूबे थे कि उसी समय सभा—मण्डप मे एक वीर आता दिखाई दिया। वह वीर कवच—कुण्डल पहने हुए था। उसकी आकृति से वीरता टपक रही थी, मानो स्वय वीरता ही शरीर धारण करके आई हो। उसे देखते ही लोग कहने लगे—यह वीर कौन है? किसका पुत्र है? इसके माता—पिता धन्य हैं।

उसे आते देखकर द्रोणाचार्य ने कहा—यह मेरा शिष्य कर्ण है। अपनी कला दिखलाना चाहता होगा।

द्रोणाचार्य की बात सुनकर, रोषपूर्वक उन्हे प्रणाम करता हुआ कर्ण उनसे कहने लगा—आपने तो मेरा अपमान कर दिया था। मुझे विद्या सिखलाने से इन्कार कर दिया था। आपके लिए तो सिर्फ अर्जुन ही प्रशसनीय था। मैं आपके गुरु से विद्या सीख कर आया हू। इस नाते आप मेरे गुरु—भाई हैं।

कर्ण को आया देख और उसकी बात सुनकर दुर्योधन प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा—मैं अर्जुन की प्रशसा सुनकर दु खी हो रहा था। अच्छा हुआ कर्ण आ पहुचा। मेरा भाग्य प्रबल है, इसीलिए यह यहा आ गया है।

दुर्योधन ने कहा—इस वीर कर्ण की भी परीक्षा होनी चाहिए। इसका बल भी देखना चाहिए।

द्रोणाचार्य ने कहा—कर्ण भी परीक्षा देगा। उठो कर्ण परीक्षा दो।

कर्ण खडा हुआ। वह लोगो से कहने लगा—तुम लोग अर्जुन की ही प्रशसा कर रहे हो लेकिन अब देखना अर्जुन मेरे सामने क्या है?

भीड मे से आवाज आई—अर्जुन ने तुम्हारी तरह गाल नहीं बजाये थे उन्होने करके दिखलाया हे। तुम भी गाल मत बजाओ। जो कुछ करना हे करके दिखलाओ।

यह आवाज सुनकर कर्ण चुप हो गया। वह अपनी कला दिखलाने लगा। उसन अर्जुन का भी मात कर देने वाली कला का प्रदर्शन किया यह दखकर लाग धन्य—धन्य कह कर उसकी प्रशसा करने लगे।

जहा हृदय मलिन नही है, वही धर्म रहता है। ऊपर से कोई कैसा ही दिखावा करे हृदय मे अगर मैलापन है तो वह छिप नही सकता। कौरवो की मलिनता आखिर सभी पर प्रकट हो गई।

कर्ण ने कला–प्रदर्शन करके कहा–अर्जुन का और मेरा मल्लयुद्ध हो जाय तो पता लगेगा कि कौन वीर है?

धर्म के लिए आलस्य आ जाना उतना बुरा नही है जितना पाप के लिए उत्साह होना। कर्ण का पराक्रम दिखलाना तो किसी दृष्टि से बुरा नही था किन्तु कर्ण के मन मे अर्जुन को अपमानित करने की दुर्भावना किसी प्रकार भी सराहनीय नहीं कही जा सकती।

कर्ण ने कला–प्रदर्शन किया और लोगो ने उसकी प्रशसा की, इससे कर्ण का अभिमान और बढ गया। वह ताल ठोक कर कहने लगा–आप अर्जुन की कला देखकर ही चौंधिया गये किन्तु तारा तभी तक चमकता है, जब तक सूर्य का उदय नहीं होता। जो मुझे कला मे जीतना चाहता हो, मेरे सामने आ जाए।

कर्ण की बाते सुनकर दुर्योधन प्रसन्न हुआ। वह खडा होकर कहने लगा–'सज्जनो आप लोग केवल अर्जुन की ही प्रशसा करते थे, परन्तु ससार मे एक से एक बढकर वीर मौजूद हैं। उनके सामने अर्जुन तुच्छ है। यह मेरा मित्र कर्ण भी बडा वीर है।

दुर्योधन द्वारा अपनी प्रशसा सुनकर कर्ण का जोश और बढ गया। वह कहने लगा–अगर अब भी किसी का ख्याल है कि अर्जुन बहुत बडा वीर है तो मै सामने खडा हू। अर्जुन शस्त्र रखकर आ जाए और मुझसे मल्ल–युद्ध करे।

कर्ण की ललकार सुनकर अर्जुन ने शस्त्र रख दिये और कर्ण के सामने आ गया। आश्चर्य और भय का साम्राज्य छा गया।

कुन्ती मन मे कहने लगी–यह तो वही लडका है, जिसे मैंने पेटी मे बन्द करके नदी मे बहा दिया था। यह अर्जुन का सगा भाई है, लेकिन अज्ञान के कारण आपस मे दोनो लड रहे हैं। अब क्या उपाय किया जा सकता है? मुझे तो दोनो पर ही प्रेम है।

जैसे अहिसा सबका कल्याण चाहती है उसी प्रकार कुती भी इन दोनो की रक्षा व कल्याण चाहती है। दोनो को युद्ध की तैयारी करते देख वह व्याकुल हो गई। कर्ण और अर्जुन तब मल्लयुद्ध करने के लिए एक दूसरे को घूरते हुए आमन–सामने खडे थे।

कृपाचार्य भी वहा उपस्थित थे। उन्होने देखा–परीक्षाभूमि युद्धभूमि के रूप मे बदलती जा रही है। यह सोचकर वे शीघ्रतापूर्वक अपने स्थान से उठे और कर्ण और अर्जुन के बीच मे खडे हो गए जैसे दो हाथियो के बीच मे तीसरा हाथी खडा हो गया हो। उन्होने दोनो को रोककर कहा–अर्जुन पाण्डवपुत्र और कुन्ती का आत्मज है, यह बात प्रसिद्ध है। इसी प्रकार हे वीर तुम भी अपनी जाति और कुल को प्रसिद्ध करो। राजकुमार के साथ राजकुमार का ही मल्लयुद्ध हो सकता है अन्य के साथ नही। अगर तुम भी राजकुल मे उत्पन्न ठहरे तो अर्जुन तुमसे अवश्य मल्लयुद्ध करेगा नहीं तो तुम किसी अपनी जाति वाले से लडो।

कर्ण के उत्साह पर पाला पड गया। उसका सारा जोश–खरोश ठडा हो गया। वह सोचने लगा–'मैं सूतपुत्र हू। मैं क्या कहू?

कर्ण को हतोत्साह हुआ देखकर दुर्योधन उसकी सहायता के लिए खडा हो गया। उसने कहा–आप लोग पक्षपात मे पडकर बडी गडबड मचा रहे हें। नीति मे तीन को राजा होने योग्य बतलाया है–राजकुल में उत्पन्न होने वाले को बलवान् को और सेनापति को। आप कर्ण को अर्जुन से लडाइए तो सही अगर कर्ण अर्जुन को दे मारे तो उसे बलवान् समझना नही तो नहीं। यहा कुल का विचार नही बल का विचार होना चाहिए। इस पर भी यदि आपका यही आग्रह हो कि राजकुल मे उत्पन्न होने वाले के साथ ही अर्जुन का युद्ध हो सकता हे तो में कर्ण को भी अभी राजा बनाये देता हू।

इस प्रकार कहकर दुर्योधन ने वही कर्ण का राज्याभिषेक कर दिया ओर उसे अग देश का राजा बना दिया। उसके बाद दुर्योधन ने कृपाचार्य से कहा–लो अब तो आपकी शर्त पूरी हुई। अर्जुन मे अगर बल है तो उसे कर्ण से लडाओ।

दुर्योधन की धृष्टता देखकर कुन्ती अत्यधिक व्याकुल हो रही थी। वह सोचने लगी–कृपाचार्य की कृपा से जो बुरा अवसर टल गया था वह दुर्योधन की दुष्ट बुद्धि और ईर्ष्या के कारण फिर उपस्थित हो रहा हे। फिर भी सदा सत्य की ही जय होती हे।

उधर अधिरथ सूत क पास समाचार पहुचा कि तुम्हारा बेटा राजा बन गया है तो वह अपन भाग्य की सराहना करता हुआ परीक्षास्थल पर आया। उसन कर्ण से कहा–'बटा तू धन्य हे।

पिता का सामन दख कर्ण सिहासन स उठ खडा हुआ। उसन पिता क पर छूकर कहा–यह सब आपका ही प्रताप ह।

कर्ण की विनयशीलता देखकर लोग कहने लगे–कर्ण विनयवान अवश्य है फिर भी है तो सूतपुत्र ही। इसे राज्य देते समय विचार करना चाहिए था।

भीष्म और धृतराष्ट्र सोचते थे–दुर्योधन ने ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य के विषय मे भी हम से सम्मति नही ली और बिना पूछे ही कर्ण को राजा बना डाला।

इस प्रकार दुर्योधन का कार्य किसी को रुचिकर नही हुआ, वरन् अरुचिकर भी हुआ। लेकिन उसके दुष्ट स्वभाव का विचार करके कोई कुछ न बोला।

अलबत्ता भीम से नही रहा गया। वह बोला–रे कुलागार, यह कर्ण तो सूतपुत्र है। इसके हाथ मे चाबुक दे। इसके हाथ मे घोडे की लगाम ही शोभा दे सकती है, राज्य नही सोहता।

दुर्योधन ने कहा–चुप रहो, देखते नही, कर्ण सूतपुत्र के समान नही किन्तु राजपुत्र के समान शोभा पा रहा है।

अधिरथ यह सुनकर हडबडा उठा। उसने सोचा–कहीं हाथ मे आया राज्य चला गया तो अनर्थ हो जायेगा। अच्छा यही है कि सच्चा वृत्तान्त प्रकट कर दिया जाय।

यह सोचकर अधिरथ ने दुर्योधन से कहा–आप ठीक कहते हैं, आप ज्ञानी है। वास्तव मे मैं कर्ण का पालक पिता मात्र हू। यह मेरा पुत्र नही है। जमुना नदी मे एक पेटी बहती चली जा रही थी। मैंने पेटी निकाली और उसमे से कर्ण निकला। हमारे कोई सन्तान नहीं थी इस कारण मैंने और मेरी पत्नी राधा ने इसका पालन–पोषण किया।

अधिरथ की बात से कुन्ती को विश्वास हो गया कि कर्ण मेरा ही पुत्र है। वह कहने लगी–

अज्ञता जग मे दु खदायी इसने सुधबुध सब भुलाई।
एक उदर के पुत्र ये मेरे कर्णार्जुन दोउ भाई।
अज्ञता–वश हो लड के मरेगे कैसे कहू समझाई ।अज्ञता०।
ज्ञान–सचार होय जो इनमे, मिटे दु ख छिन माई।
करे सहायता एक दूजे की भू–मण्डल–सुखदाई ।अज्ञता०।
कृष्ण बिना कहू बात मै किससे मन ही मन पछताई।
मूर्छाई तब। विदुर उठाई धीरज अति ही बधाई ।अज्ञता०।

कुन्ती को अनुभव हुआ कि ससार मे अज्ञान के समान दूसरा दु ख नही है। वह सोचने लगी कि यह दोनो एक ही माता के पेट से उत्पन्न हुए है और फिर भी आपस मे लड–मरना चाहते हैं। इस समय इन्हे कोन समझाये? इस समय कृष्ण भी तो नही हैं मैं सच्ची बात किससे कहू?

इस प्रकार सोचती–सोचती कुन्ती मूर्च्छित हो गई। कुन्ती को मूर्च्छित देखकर विज्ञ विदुर ने समझ लिया कि इसमे कुछ रहस्य होना चाहिए। उन्होने कुन्ती पर पखा किया। उसे सावचेत किया और धैर्य बधाया। जब कुन्ती स्वस्थ हो गई तो विदुर ने उससे मूर्च्छा का कारण पूछा। पहले तो उसने मौन ही रहना उचित समझा, परन्तु विदुर के विशेष आग्रह करने पर कहा–मैं मा हू और सभी की मा हू। मा पृथ्वी के समान होती है। मुझे दु ख हो रहा है कि ये आचार्य इन सब बालको को यहा कला दिखलाने लाये हैं या युद्ध कराने? युद्ध होने पर चाहे कर्ण मरे चाहे अर्जुन, मुझे तो दोनो मे से एक के लिए शोक करना ही होगा। इस सभा मे यह अन्याय और इस खेल मे यह दगल होना अच्छा नही। देखो न, वे दोनो मल्लयुद्ध करने को तैयार खडे हें और वह दुर्योधन कैसी आग लगा रहा है।

गाधारी ने भी कुन्ती का समर्थन किया। उसने कहा–सचमुच दुर्योधन कुलागार है, जो इस प्रकार आग लगा रहा है।

कोलाहल सुनकर अधे धृतराष्ट्र ने कारण पूछा। विदुर ने कहा–कोलाहल का कारण यह हे कि दुर्योधन ने एक आग सुलगा दी है। उसने कर्ण को अग देश का राज्य देकर राजा बना दिया हे। कर्ण ने प्रतिज्ञा की है कि तुमने मुझ ककर को हीरा बनाया हे इसलिए जब तक मेरे शरीर मे प्राण हें तब तक तुम्हारा मित्र रहूगा और चाहे चन्द्र आग बरसाने लगे हिमालय रजकण हो जाये तब भी में तुम्हारी मित्रता का परित्याग नही करूगा। दुर्योधन से राज्य पाकर कर्ण बलवान् बनकर अर्जुन से युद्ध करने पर तुला हुआ हे।

धृतराष्ट्र कहने लगे–कुन्ती सती हे ओर उसका पुत्र अर्जुन भी श्रेष्ठ है। दुष्ट दुर्योधन सूतपुत्र के साथ उसका युद्ध करवाना चाहता हे? अच्छा दुर्योधन को मेरे पास बुलाओ।

इधर कर्ण और अर्जुन युद्ध करने के लिए खडे थे। उस समय द्राणाचार्य ने खडे हाकर कहा–आप सब लोग कोलाहल कर रहे हें मगर सूर्य का भी दखत हो? हम प्रत्यक कार्य सूर्य की साक्षी से ही करते हें। सूर्य की साक्षी क विना न परीक्षा हा सकती हे न युद्ध हो सकता हे। यह देखो सूर्य डूब रहा है।

कवि कहता है कुन्ती का दुख मानो सूर्य से नही देखा गया, इसी कारण यह लाल होकर ओट मे छिप गया।

द्रोणाचार्य की बात सुनकर सब लोग सूर्य की ओर देखने लगे। सूर्य सचमुच डूब रहा था। तब दोणाचार्य ने फिर कहा—अब सब लोग अपने—अपने घर जावे। सूर्य अस्त हो गया है इस कारण अब कोई कार्य नही हो सकेगा—मल्लयुद्ध भी नही होगा।

दोणाचार्य का कथन सुनकर सब लोग उठकर चलने लगे। दुर्योधन मन ही मन बुरी तरह खीझ रहा था। वह कभी द्रोणाचार्य को, कभी कृपाचार्य को कोसता और कभी सूर्य को कोसने लगता कि दुष्ट सूर्य को ऐन मौके पर ही डूबने की सूझी।

इधर कर्ण भी द्रोणाचार्य आदि पर बुरी तरह कुढ रहा था। यहा तक कि उसने जाते समय उन्हे प्रणाम भी नही किया। कौरव भी इनसे टेढे—टेढे ही रहे। परन्तु पाण्डवो ने पहले ही की तरह उनका आदर—सत्कार किया। कर्ण सोचने लगा—आचार्य ने आज बनी—बनाई बाजी बिगाड दी। सूर्य अस्त हो गया था तो क्या हुआ था? मशालो के उजाले मे ही युद्ध हो सकता था। परन्तु आचार्य ने आज अर्जुन को बचा लिया। द्रोणाचार्य मेरे गुरु हैं, वर्ना ऐसा बदला लेता कि वे भी याद रखते।

शास्त्र मे नमस्कार को पुण्य कहा है। नमस्कार मे बडी शक्ति है। छल—कपट से नमस्कार करना दूसरी बात है, अन्यथा एक दूसरे के प्रति नम्रता दिखलाना गौरव बढाने वाली बात है। नमस्कार करने वाला दूसरे को भी नम्र बना लेता है। नमस्कार करने वाला कितना ही छोटा हो, और जिसे नमस्कार किया जा रहा है वह कितना ही बडा क्यो न हो, नमस्कार करके उसे झुका लिया जाता है। नमस्कार—पद्धति छोटे—बडे की सम्मान क्रिया की पोषिका और मनुष्यता की रक्षिका है। पारस्परिक सद्भाव और मित्रता बढाना ही नमस्कार का रहस्य है। वीर पुरुष या तो किसी के आगे झुकता नहीं और यदि झुक जाता है तो फिर छल—कपट करके उसका गला नही काटता।

परीक्षा हो जाने के पश्चात् भीष्म जी ने द्रोणाचार्य को राजसभा मे बुलाया उनका उचित आदर—सत्कार किया और यथायोग्य भेट देकर आभार माना।

15 · गुरु–दक्षिणा

परीक्षा समाप्त हो जाने के पश्चात आचार्य द्रोण ने सन्तोष की सास ली। अपने शिष्यो की योग्यता देखकर वह अपने को कृतार्थ समझने लगे। वास्तव मे गुरु की विद्या सुयोग्य शिष्य के पास पहुच कर सफल होती हे। द्रोण सोचने लगे–मेरे गुरुजी का मुझ पर जो ऋण था वह वहुत अशो मे चुक गया।

लेकिन द्रोण के हृदय मे अव भी एक शल्य चुभ रहा था। उन्होने राजा द्रुपद को वाधने का जो प्रण किया था उसे वे भूले नही थे। इतने दिनो तक वह उसे हृदय मे रखे हुए थे। अव अपने शिष्यो को प्रण–पूर्ति के योग्य देखकर उन्हे विचार आया कि राजा द्रुपद से बदला ले लेना चाहिए। अर्जुन ने मेरी प्रतिज्ञा को पूरा करने और गुरु–दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा की हे। लगे हाथो यह कार्य ओर सम्पन्न हो जाय तो अच्छा है।

आचार्य ने कोरवो और पाण्डवो को बुलवाया। बुलावा पाकर सभी उनके पास पहुचे सिर्फ कर्ण नही गया। सबके उपस्थित होने पर द्रोण ने कहा–तुम लोगो ने मेरे पास शिक्षा पाई है इसलिए में तुमसे गुरु–दक्षिणा मागता हू। तुम जानते हो कि द्रुपद ने मेरा अपमान किया हे ओर उससे वदला लेने का मैंने प्रण किया हे। द्रुपद ने कहा था–राजा का मित्र राजा ही हो सकता हे भिखारी नही। अतएव तुम सब उस पर चढाई करके उसे वाध लाओ। यह मेरी गुरु–दक्षिणा होगी।

द्रोणाचार्य की वात सुनकर थोडी–सी देर के लिए सब चुप हो गए। तव शात और गम्भीर स्वर मे युधिष्ठिर वोले–गुरुजी आपकी आज्ञा का पालन करना हम अपना कर्त्तव्य मानते हें। विद्या सीख चुकने के वाद भी आप हमारे लिए उसी प्रकार आदरणीय ओर माननीय हें जेसे सीखते समय थे। अतएव में जो निवेदन करता हू उसका आशय आप अन्यथा न समझे। में यह निवेदन करता हू–आपने हमे यह शिक्षा दी थी कि क्रोध को जीतने पर ही आनन्द मिलता ह। फिर आप इस शिक्षा क विरुद्ध गुरु–दक्षिणा केसे माग रहे हें? उस समय आप गरीवी क दु ख स दु खी थे । अव हम लोग आपक सेवक हें। आपका दरिद्रता का तनिक भी दु ख नही हो सकता। क्राध सह लने क कारण एक दिन आपन मरी प्रशसा की थी लकिन आज आप स्वय क्राध के वशीभूत हा रह ह। क्या यह उचित ह? क्या यह अच्छा न हागा कि द्रुपद क पास क्षमा का सदश भन दिया जाय?

दोण–तुम नही समझे। मैंने तुम्हे पीटकर तुम्हारे क्षमाभाव की परीक्षा की थी। उस समय तुम्हे तो नही मुझे क्रोध आया था। धर्मराज तुम हो, मैं नही। अतएव चाहे सूर्य रसातल मे चला जाय पर मै अपना प्रण नही छोडने का।

युधिष्ठिर–लेकिन क्या उचित है गुरुजी?

दोण–उचित और अनुचित का पश्न नही हैं। प्रश्न यह है कि मैं अपने पण को पूर्ण करना चाहता हू। उसे पूर्ण किये बिना चैन न लूगा। इस प्रण की पूर्ति के लिए मैं इतने दिनो तक तुम लोगो पर आशा लगाये रहा हू। तुम्हे गुरु–दक्षिणा देनी है तो दो न देनी हो तो इन्कार कर दो। मेरी कोई जबर्दस्ती नही है। तुम्हारे इन्कार कर देने पर मैं दूसरा उपाय कर लूगा।

अर्जुन–गुरुदेव! इन्कार कर देने की बात ही नही उठती। हम लोग क्षत्रिय हैं। हम ऐसे पतित नहीं हैं कि गुरु के याचना करने पर भी गुरु–दक्षिणा देने से इन्कार कर दे।

वास्तव मे समर्थ होने पर क्षमा करना बडा कठिन काम है। द्रोणाचार्य इस समय समर्थ हैं। सभी कौरव और पाण्डव उनके शिष्य हैं। इस स्थिति मे दुपद द्वारा किये हुए अपमान को भूल जाना सरल बात नहीं है। असमर्थता की स्थिति मे तो वे स्वय चुप रह गये थे।

अन्त मे कौरव और पाण्डव मिलकर द्रुपद को बाधने के लिए चले। धर्मराज ने यो तो द्रोणाचार्य को समझाया था परन्तु जब वे नही समझे, तब किसी का साथ तो उन्हे देना ही था। बडे आदमियो का यह तरीका होता है कि वे अकेले नही रहते किसी के साथ ही रहते हैं।

दुर्योधन सोचने लगा–कर्ण हमारी ओर है ही। अगर आचार्य भी हमारे साथ हो जाए तो क्या ही अच्छा हो! किसी उपाय से इन्हे प्रसन्न करना चाहिए। अगर पाण्डव साथ मे न आते और अकेले हम द्रुपद को बाध लेते तो गुरुजी हमारे ऊपर बहुत प्रसन्न होते। युधिष्ठिर से तो यह असन्तुष्ट हो ही गए है। इस अवसर से लाभ उठा लेना चाहिए।

इस प्रकार विचार कर पाण्डवो को पीछे छोडकर दुर्योधन अपने अन्य भाइयो के साथ आगे बढ गया। उसने सोचा–अगर हम पहले ही द्रुपद को बाध लेगे तो कीति के साथ आचार्य की प्रसन्नता भी हमको ही प्राप्त होगी।

कौरवो को आगे बढते देख कर भीम ने धर्मराज से कहा–भ्राता कौरव आगे बढ रहे है। वे दुपद को बाध लेगे तो हम लोग गुरु–दक्षिणा नही दे सकेगे।

धर्मराज ने कहा—जो बढता है, उसे बढने दो। हम उन्हे नहीं छोडते। वे ही अपने को छोडकर यश लेने के लिए जाते हैं तो जाने दो और यश लेने दो। हा कदाचित् वे हार कर भागने लगे तो उस समय हमे पीछे नही रहना होगा। उस समय हम लोग उनके साथ हो आएगे और उनकी सहायता करेगे।

भीम ने अर्जुन से भी कहा—आचार्य को गुरु—दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा तुमने ही की है। कौरवो ने द्रुपद को बाध लिया तो तुम्हारी प्रतिज्ञा कैसे पूरी होगी?

अर्जुन ने उत्तर दिया—भ्राता, आचार्य का प्रण पूरा होना चाहिए फिर किसी के भी हाथ से क्यो न हो? अगर द्रुपद को जीतने का यश इन्ही को मिलना है तो इन्हे मिलने दे। हर्ज क्या है?

पाण्डवो को पीछे छोडकर कौरव आगे बढ गए।

दूत द्वारा द्रुपद को मालूम हुआ कि द्रोण की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए कौरवो और पाण्डवो ने चढाई कर दी है। वे द्रोण के अपमान का बदला लेने आये हें। द्रुपद सोचने लगा—मैंने द्रोण का अपमान करके अच्छा नहीं किया। मगर दूसरे ही क्षण उसे विचार हुआ—अब इस बात का विचार करने से क्या लाभ हे? अगर मुझ मे वीरता हे तो डटकर सामना करना ही अब एकमात्र कर्त्तव्य है।

द्रुपद ने अपनी सेना सजाकर लडने की तैयारी की। दोनो ओर की सेनाओ का सामना हुआ। युद्ध छिड गया। जब तक द्रुपद का सामना नही हुआ तब तक तो कोरवो के पाव टिके रहे उसके सामने आते ही कोरव अपनी सेना के साथ भाग खडे हुए। द्रुपद की वीरता के सामने कोरवो की एक न चली। कोरवो को बडी निराशा हुई।

उधर पाण्डव भी समीप आ पहुचे थे। उन्होने कोरवसेना को भागते देखा ओर परिणाम समझ लिया। अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—भ्राता आप यही ठहरिये। आप हमारे साथ आये यह बडी कृपा हे। आपने गुरुजी को युद्ध के विरुद्ध समझाया था अत आपका युद्ध मे शामिल न होना ही अच्छा हे।

युधिष्ठिर ने कहा—ठीक हे। में भी यही चाहता था।

युधिष्ठिर वही ठहर गये आर चारा पाण्डव आगे वढे। उन्हाने कोरवा का ललकार कर कहा—क्या आप लाग कारव—कुल की कीर्ति म कलक की कालिमा लगान यहा आय है? यदि द्रुपद स युद्ध करन की शक्ति नही थी ता फिर आग वटन का हासला ही क्या किया था?

कौरव कहने लगे– हम यह सोचकर आगे आये थे कि आप लोगो को कष्ट न उठाना पडे। लेकिन फिर सोचा–द्रुपद को बाधने का काम अर्जुन के हाथ से होना ही उचित है। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की है। यही सोचकर हम लोग मन लगाकर नही लडे।

पाण्डव उनकी धूर्तता समझ गये। बोले–ठीक है, चलो, अब चलते हैं।

पाण्डव द्रुपद के सामने पहुचे। पाण्डवो को देखते ही द्रुपद उनकी वीरता से प्रभावित हो गया। इतने मे अर्जुन के बाणो ने उसे एकदम निरुत्साह कर दिया। थोडी ही देर के पश्चात् अर्जुन ने द्रुपद को नाग–पाश से बाध लिया। द्रुपद ने पाण्डवो के आगे अपना अभिमान छोड दिया।

दुपद को बाधकर पाण्डव द्रोणाचार्य के सामने ले गये और उनसे कहा– महाराज! अपनी गुरु–दक्षिणा लीजिए।

द्रुपद द्रोण के सामने खडा हुआ। द्रोण ने उससे कहा–'भिखारी राजा का मित्र नही हो सकता यह बात तुम्हे याद है, द्रुपद?'

द्रुपद ने कहा–जब मैं आपके सामने बदी की हालत मे खडा हू, तब तो आपको ऐसी बात नही कहनी चाहिए थी। पीजडे मे पडे शेर पर प्रहार करना कोई वीरता नही है। फिर भी आप पूछते हैं तो मैं यही कहता हू कि मुझे सब कुछ याद है।

द्रोण–तुमने तो मुझे सखा नही कहा था, मगर मैं तुम्हे सखा कहता हू और पाचाल देश का उत्तरी भाग तुम्हे देता हू और दक्षिण–भाग मैं लेता हू। बोलो यह बात स्वीकार है?

द्रुपद–ठीक है अस्वीकार कैसे किया जा सकता है?

द्रोणाचार्य ने अर्जुन को आज्ञा दी कि द्रुपद को छोड दो। अर्जुन ने उसे छोड दिया। द्रोणाचार्य और द्रुपद गले लगकर मिले। पर कहना चाहिए कि सिर्फ दो गले तो मिले दो हृदय नही मिले। अपमान की ज्वाला को हृदय मे दबाये हुए द्रुपद अपने राज्य को लौट गया।

दुपद के लौट जाने पर धर्मराज ने द्रोणाचार्य से कहा–गुरुजी आपने अनावश्यक ही द्रुपद से वैर बढाया है। द्रुपद आपके गले से लगकर मिला तो सही परन्तु उसका हृदय आपके हृदय से नही मिला। उसके हृदय मे अपमान की आग जल रही है।

द्रोण–आखिर तुम धर्मराज ही ठहरे न? इसी से ऐसी बात कहते हो। इस विचार वाले से राज्य नही चलता। तुम जानते नही हो कि मैंने द्रुपद को

किस प्रकार निर्बल बना दिया है। उसके राज्य का श्रेष्ठ भाग मेने ले लिया है और निकृष्ट भाग उसके पास रहने दिया है। अब वह मुझ से बदला केसे ले सकता है?

युधिष्ठिर–महाराज आप कुछ भी कहे। मुझे लगता है कि यह सब ठीक नही हुआ। किसी से भी अनावश्यक वैर बाधना बुरा है। इसके सिवाय ब्राह्मण को राज्य के प्रपच मे पडने की भी क्या आवश्यकता है? हम आपके इतने सेवक हैं फिर आपको कमी किस चीज की थी?

द्रोणाचार्य ने इसका कुछ उत्तर नही दिया।

16 बदले की भावना

द्रोणाचार्य को भीष्मजी ने विदाई मे अच्छी सम्पत्ति दी थी और ऊपर से द्रुपद का आधा राज्य भी मिल गया। द्रोणाचार्य अब विदा होकर द्रुपद से लिये हुए अपने राज्य मे चले गये।

दुपद ने दोण को आधा राज्य दे दिया, मित्र भी कह दिया और गले से भी लगा लिया फिर भी उसके हृदय की आग नही बुझी। वह कहने लगा—द्रोण, तुमने मुझे क्रोध के मारे अपने शिष्यो को भेजकर पकड मगाया। क्या यह तुम्हारी विद्या कुविद्या नही है? ब्राह्मण को तो शाति रखनी चाहिए। हा पकडने वाला अवश्य वीर है और उसकी वीरता को मैं स्वीकार करता हू। परन्तु तुम ब्राह्मण होकर क्रोध करते हो। तुमने मुझे पकडवाकर मगाया और ऊपर से वाग्बाण मारे? मैं अगर द्रोणरहित भूमि न कर दू तो मेरा नाम द्रुपद नहीं।

एक बार द्रोण ने द्रुपद से बदला लिया, अब द्रुपद द्रोण से वैर भजाना चाहता है। शास्त्र मे कहा है—

वैराणु बधीणि महब्भयाणि।

द्रोण द्वारा किया हुआ अपमान द्रुपद के हृदय मे काटे की तरह चुभने लगा। वह इसी विचार मे डूबा रहता कि मैं कब द्रोण से बदला लू। खाते—पीते उठते—बैठते उसे बस यही एक—मात्र चिन्ता थी। वह खाना—पीना भोगविलास आदि सब कुछ भूल गया। उसे एक—मात्र यही स्मरण रहने लगा कि द्रोण अभी तक जीवित है।

चिन्ता मनुष्य को सब कुछ भुला देती है। एक कवि कहता है—

चिन्ता ज्वाला शरीर मे, दव लागी न बुझाय।
बाहर धुआ न देखिये, भीतर ही धधकाय।।
भीतर ही धधकाय जरे ज्यो काच की भट्टी।
रक्त मास जरि जाय रहे पिजर की टट्टी।।
कह गिरधर कविराय सुनो रे प्यारे मिन्ता।
वे नर कैसे जिये जिन्हे तन व्यापै चिन्ता।।

चिन्ता बडी बुरी बलाय होती हे। छोटे आदमी को छोटी और बडो को बडी चिन्ता लगी रहती हे।

दुपद ने विचार किया कि तप किये विना काम नही चलेगा। द्रोण [illegible] है। कोरव आर पाण्डव उसके शिष्य है ओर अव उसने मेरा

आधा राज्य भी ले लिया है। फिर भी तप के सामने उसकी क्या ताकत हे? मै तप की सहायता से उसे नष्ट कर दूगा। तप किये बिना उसके नाश का और कोई सरल उपाय नही है।

शास्त्रानुसार बडे–बडे तपस्वियो ने तप के फल की कामना (निदान) की है। तप के प्रभाव से उनका मनोरथ तो पूर्ण हुआ, किन्तु मोक्ष के लिहाज से इस प्रकार किया हुआ तप व्यर्थ हुआ।

महाभारत मे लिखा है कि द्रोण को नष्ट करने के लिए द्रुपद ने यज्ञ किया। उसे दो ब्राह्मण मिल गये जिन्होने यज्ञ कराया। यज्ञ की अग्नि की ज्वाला से एक पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ।

महाभारत का यह कथन जचता नही है। अग्नि की ज्वालाए निकलना ही यज्ञ नही है। यज्ञ धातु के कई अर्थ होते हैं। तप भी एक प्रकार का यज्ञ है। इसी प्रकार के यज्ञ की ज्वाला से अर्थात् निदान–युक्त तप के प्रभाव से द्रुपद को आश्वासन मिला होगा कि तुझे तीन सन्तानो की प्राप्ति होगी, जिनमे से एक भीष्म को, एक द्रोण को और एक कौरव–कुल को नष्ट करेगी।

शास्त्र मे कहे हुए वैराणुबधीणि महब्भयाणि की सत्यता का यह प्रमाण हे। एक वैर को वैर से मिटाने गये कि दूसरा वैर उत्पन्न हो जाता है। द्रुपद एक अपमान को मिटाने गया तो दूसरा वैर बढा। इतिहासकार कहते हैं कि केवल कौरवो और पाण्डवो के विरोध से ही महाभारत नही हुआ था बल्कि पाचालो–कोरवो का तथा गाधारो और पाण्डवो का वैर भी महाभारत का कारण था। हो सकता है कि इतिहासकारो का यह कथन सत्य हो।

द्रुपद आश्वासन पाकर घर आया। कुछ समय बाद रानी ने शुभ स्वप्न देखकर धृष्टद्युम्न नामक पुत्र को जन्म दिया। जव धृष्टद्युम्न का जन्म हुआ तो आकाश–वाणी हुई कि–हे राजा! इस पुत्र द्वारा तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। यह पुत्र द्रोण का नाश करेगा।

धृष्टद्युम्न के पश्चात शिखण्डी का जन्म हुआ। उस समय भी यह भविष्यवाणी हुई कि इस पुत्र द्वारा भीष्म का विनाश होगा।

शिखण्डी के पश्चात द्रुपद की रानी से एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका नाम द्रापदी हुआ। द्रोपदी वडी सुन्दरी थी। इसके जन्म–समय आकाशवाणी हुइ कि इसकी शक्ति स कुरुवश का नाश होगा।

द्रुपद दा पुत्र ओर एक पुत्री पाकर प्रसन्न हुआ। वह अपनी इच्छा–पूर्ण हान का स्वप्न दखन लगा।

भावना फलती ही है फिर चाहे बुरी हो या अच्छी हो। जब बुरी भावना भी फलती है तो क्या अच्छी भावना नही फलेगी? दोनो ही भावनाए फलती है लेकिन विचारना यह चाहिए कि परिणाम मे कौन-सी भावना हितकर और शातिपद है? शुभ भावना से ही कल्याण हो सकता है।

दुपद को तीन सतानो के रूप मे मानो तीन अनमोल रत्न मिल गये। वह सोचता-धृष्टद्युम्न धीर-वीर है। दौपदी कन्या है और शिखण्डी दीखता तो पुरुषसा है परन्तु है नपुसक। ससार मे पुरुष, स्त्री और नपुसक यही तीन पकार के मनुष्य होते हैं। मेरे यहा ये तीनो प्रकार के मनुष्य आये हैं। देखे, ये क्या करते हैं? लेकिन तप की शक्ति से इनकी प्राप्ति हुई है। शिखण्डी के विषय मे आकाशवाणी ने कह दिया है कि यह भीष्म को मारने वाला होगा। इसलिए नपुसक है तो हर्ज नही। मुझे किसी प्रकार की चिन्ता करने की भी आवश्यकता नही है।

शिक्षा के योग्य होने पर द्रुपद ने धृष्टद्युम्न और शिखण्डी को शस्त्र-विद्या मे पारगत किया। धृष्टदयुम्न भी कर्ण और अर्जुन के समान महारथी माना जाने लगा। उसे देखकर द्रुपद सोचता-मेरा यह पौधा कब बडा हो और कब मेरी आशा पूरी हो?

उधर द्रौपदी को उसकी माता ने चार प्रकार की शिक्षा दी। कन्या को चार पकार की शिक्षा दी जाती हैं। पहले कुमारी-अवस्था की शिक्षा दी जाती है जिसमे अक्षर-ज्ञान का, भोजन-विज्ञान और सदाचार के सस्कार आदि का समावेश होता है। दूसरी शिक्षा वधूधर्म की दी जाती है, जिसमे यह बतलाया जाता है कि ससुराल मे जाकर सास श्वसुर और पति आदि के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। तीसरी शिक्षा मातृधर्म की दी जाती है। कन्या के आगे चलकर जब बालक होते हैं और वह माता बनती है तो उस पर सतान का उत्तरदायित्व आ पडता है। उस समय उसे क्या करना चाहिए सतान का पालन-पोषण किस प्रकार करना चाहिए यह मातृधर्म कहलाता है। चौथी शिक्षा मे उसके जीवन के अन्तिम भाग का कर्त्तव्य सिखलाया जाता है। विधवाधर्म का भी इसी मे समावेश होता है। कर्मयोग से कदाचित् विधवा होना पडे तो किस प्रकार वैधव्य-अवस्था बितानी चाहिए खानपान रहन-सहन किस पकार का होना चाहिए इत्यादि बातो की शिक्षा दी जाती है।

विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा था-आपके घर मे एक विधवा अवश्य होनी चाहिए क्योकि विधवा धर्म को जानने वाली होती है और घर मे होने पर धर्म [illegible] वाली देवी का दर्शन हो जाता है।

विदुर ने ऐसा कहा था, लेकिन आजकल के लोग घर की विधवा का तिरस्कार करने मे, उसकी अवहेलना करने मे और किसी तरह उसे घर से बाहर निकाल देने तक मे सकोच नहीं करते। लोग विधवा स्त्री का मुह तक नहीं देखना चाहते—मुह देखने मे अपशकुन समझते हैं। लेकिन वही स्त्री अगर पुनर्विवाह कर ले तो फिर सुहागिन बनकर शकुन करने वाली हो जाती है। इस प्रकार का अन्याय होने पर भी उन विधवाओ को धन्य है जो अपनी मर्यादा का पालन करती हैं। किसी भी स्त्री को सिर्फ विधवा होने के कारण अपमानित करना सतीत्व का अपमान करना है। यह शील का और धर्म का अपमान है। विवेकी पुरुष इससे सदैव बचते रहते हैं।

कहा जा सकता है कि पहले—से ही विधवाधर्म की शिक्षा देने से क्या लाभ है? उन्हे यह भी सोचना चाहिए कि पहले से ही मातृधर्म या वधूधर्म की शिक्षा देने से क्या लाभ है? वास्तव मे प्राथमिक अवस्था मे जीवन भर की भूमिका तैयार हो जानी चाहिए। कब कैसा अवसर आ जाता है यह नहीं कहा जा सकता।

17 द्रौपदी का स्वयवर

दौपदी उत्कृष्ट रूप–यौवन से सम्पन्न हुई। द्रौपदी को विवाह के योग्य देखकर दुपद विचार करने लगे कि इसका विवाह किसके साथ किया जाय? अगर मैं अपनी पसदगी के वर के साथ विवाह करूगा तब तो वह मेरी ही पसदगी होगी दौपदी की नही। ऐसा करना उचित नही। अच्छा यही है कि कन्या स्वय ही अपना पति पसन्द कर ले और यह कन्या उत्कृष्ट बुद्धि वाली है। मेरा पसन्द किया हुआ वर इसे पसन्द न आया तो जीवन भर का दु ख हो जायेगा।

भारत मे बुद्धिमती स्त्रिया तो अनेक हुई है, लेकिन द्रौपदी अपने ढग की एक ही बुद्धिमती हुई है। वह राजनीति की जटिल समस्याओ को भी हल कर देती थी। सभा मे कृष्ण के सामने भाषण देकर उन्हे अपनी बात का समर्थक बना लिया था। बुद्धिमत्ता के साथ उसमे नम्रता भी थी। अतएव वह युधिष्ठिर के उत्तर के आगे झुक भी जाती थी। नम्रता तो सीता मे भी थी किन्तु द्रौपदी मे नम्रता के साथ दृढता भी थी।

द्रुपद ने सोचा–यह असाधारण कन्या स्वय अपना पति चुन ले तो अच्छा है। इस प्रकार विचार कर उसने द्रौपदी को बुलाकर कहा–पुत्री! मैं तेरा स्वयवर करना चाहता हू। साथ ही एक परीक्षा भी करने की इच्छा है। उस परीक्षा के साथ स्वयवर करने पर यह भी हो सकता है कि तुझे कुमारी ही रह जाना पडे। मैं चाहता हू कि सोने का एक स्तम्भ बनवाकर उस पर राधा नाम की पुतली लगाऊ। उसके नीचे आठ चक्र रख कर चलाऊ और तेल का कडाह रखू। तेल के कडाह मे राधा की परछाई देखकर जो उस की ऑख बेध देगा वही तेरा पति होगा। उसे कोई न बेध सका तो तू कुमारी रह जाएगी। अब बता तू क्या कहती है?

आज तो कहा जाता है कि कन्या और गाय को जहा दे वहीं जाना पडेगा। उन्हे बोलने का हक नही है। फिर चाहे किसी बूढे के साथ रुपयो के बदले मे ही हम क्यो न बेच दे? लेकिन इस प्रकार धर्म की घात करने से घात करने वाला सकुशल नही रह सकता और फिर पश्चात्ताप ही शेष रहता है।

द्रुपद की बात सुनकर दोपदी कुछ–कुछ मुस्करा दी। द्रुपद ने समझ लिया कि कन्या को मेरी बात स्वीकार है।

द्रुपद ने सुन्दर स्वर्ण–स्तम्भ खडा करवाया। उसके ऊपर एक पुतली लगवाई । आठ चक्र लगवाये। चार चक्र एक ओर घूमते थे और चार दूसरी तरफ घूमते थे। इतना करके स्तभ के नीचे तेल का कडाह रखा जिसमें देखकर पुतली की आख बेधी जा सके।

द्रुपद ने द्रौपदी के स्वयवर की घोषणा कर दी। सब राजाओ को आने के लिए आमत्रण भेज दिये। श्रीकृष्ण के पास भी आमत्रण भेजा गया कि दसो दशार्ह राजकुमारो को लेकर पधारे। धृतराष्ट्र जरासध और शिशुपाल आदि के पास भी निमत्रण गये। नियत समय पर सभी राजा महाराज सज–धज कर तैयारी के साथ द्रुपद के यहा आये। कौरव और पाण्डव भी स्वयवर मे सम्मिलित हुए।

यहा एक बात विचारणीय है, जिसका अपमान किया गया था उसी द्रुपद की कन्या का स्वयवर था। प्रथम तो द्रुपद ने इस बात का विचार न करके उन्हे आमत्रण भेजा। आमत्रण पाकर भी कौरव–पाण्डव सोच सकते थे कि द्रुपद के यहा जाना चाहिए या नहीं? बात यह है कि वीर पुरुष मकोडो की तरह वेर नही रखते । कौरव और पाण्डवो ने विचार किया–कन्या उत्कृष्ट हे और द्रुपद वीर है। उसे द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए ही बाधना पडा था। लेकिन इस घटना के कारण द्रुपद की कन्या के स्वयवर मे न जाना अनुचित होगा। बल्कि सभव है, द्रुपद को बाधने वाला ही द्रुपद की कन्या पाएगा।

इधर दुर्योधन ने कर्ण से कहा–बडा अच्छा अवसर आया हे। तुम बडे धनुर्धर हो। स्वयवर मे द्रुपद की कन्या को राधाबेध करके जीत लोगे तो तुम्हारा सूतपुत्र होने का अपवाद मिट जायेगा। कर्ण ने दुर्योधन की सलाह मान ली। वह भी साथ हो गया।

स्वयवर के निमित्त आये हुए सभी राजाओ की यही इच्छा थी कि द्रोपदी हमे मिले तो अच्छा। पर वे यह नही देखते थे कि राधाबेध की शक्ति हम मे हे या नहीं?

जैसे द्रोपदी को सभी चाहते हैं उसी प्रकार मुक्ति भी सभी चाहते हे। किन्तु जेस आठ चक्र भेद कर पुतली भेदने पर ही द्रोपदी प्राप्त की जा सकती ह उसी प्रकार आठ कर्मों को भेदने पर आत्मा को पूर्ण रूप से अन्तर्मुख करने पर ही मुक्ति मिलती ह। जिस प्रकार द्रोपदी के लिए किसी का पक्ष नही ह–जो राधावध कर वही उस पा सकता हे उसी प्रकार मुक्ति के लिए भी किसी का पक्षपात नही ह जा आठ कर्म भेद वही मुक्ति पा सकता हे।

आजकल क्रियात्मक धर्म के विषय मे बहुत आलस्य फैल गया है, लेकिन आलस्य से काम नही चलता। जैसे राधाबेध के लिए पहले के अभ्यास की आवश्यकता है उसी प्रकार मुक्ति प्राप्त करने के लिए निरन्तर धर्म के अभ्यास की आवश्यकता है।

विद्या की उन्नति के लिए पाचीन–काल मे ऐसे–ऐसे आयोजन किये जाते थे। व्याकरण के पण्डित भी कभी–कभी घोषणा किया करते थे कि जो विद्वान् अमुक प्रयोग सिद्ध करेगा उसे मैं अपनी कन्या दूगा। इससे विभिन्न विद्याओ की उन्नति होती थी और लोग आलस्य मे नही पडे रहते थे। मगर आजकल तो कन्या का विवाह धन के अधीन रखा जाता है, चाहे कोई बूढा है खिजाब से बाल काले किये हुए है, नकली दात लगवाये है, फिर भी अगर उसके पास धन है तो वही कन्या पाएगा। इस घातक पद्धति से समाज अत्यन्त दुर्बल और दूषित हो गया है।

द्रुपद ने कन्या को ब्याहने की शर्त आमत्रण–पत्र मे स्पष्ट लिख दी थी जिससे कोई अपना अपमान न माने और कलह या युद्ध का प्रसग उपस्थित न हो। द्रुपद का आमत्रण पाकर कई राजा सोचने लगे–हमने कई धनुष चढाये हैं हम द्रुपद के यहा भी धनुष चढाएगे और लक्ष्य को भेद देगे। हम अपने कुल का अपमान न होने देगे।

अनेक राजागण इसी आशा से स्वयवर मे आये थे। भीष्म और धृतराष्ट्र आदि कई महानुभावो के आगमन का उद्देश्य दूसरा था। उन्होंने सोचा था कि इस अवसर पर देश–देश के वीर नरेशो और क्षत्रियो का समागम होगा और पारस्परिक परिचय बढेगा। इसीलिए वे अपने कुमारो के साथ उपस्थित हुए थे।

कृष्ण ने सोचा–मुझे विवाह तो करना नहीं है और राधा–बेध करना कौन जानता है और द्रौपदी किसे मिलेगी, यह भी मैं जानता हू। लेकिन इस बात को प्रकट करना योग्य नही है। फिर भी वहा जाने से सबके साथ मुलाकात होगी ओर क्षत्रियो की वास्तविक स्थिति का प्रत्यक्ष परिचय होगा।

बलदेव भी कृष्ण के सेवक थे। राधाबेध करना उनके लिए कोई कठिन काम नही था। लेकिन उन्हे नया विवाह करना अभीष्ट ही नही था।

ग्रन्थकार का कथन है कि द्रुपद के यहा पन्द्रह दिन तक राजाओ का आगमन होता रहा। सोलहवा दिन स्वयवर का था। राजा द्रुपद पन्द्रह दिनो तक आगत राजाओ के स्वागत–सत्कार मे ही लगे रहे।

ग्रन्थ मे द्रौपदी के स्वयवर के निमित्त जिन–जिन राजाओ के नाम और स्थान का उल्लेख किया गया है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्वयवर–वर्णन भारत के तत्कालीन राजाओ का और कुछ अश मे भारत की स्थिति का एक इतिहास है। उसमे लिखा है कि स्वयवर मे यवन राजा भी आया था। निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि यवन राजा वास्तव मे ही आया था अथवा यह कल्पना है। परन्तु प्रश्न उपस्थित होता है कि कदाचित् यवन राजा द्रुपद की प्रतिज्ञा पूरी कर देता तो उसे द्रौपदी विवाही जाती या नही? इसके उत्तर मे यही कहा जा सकता है कि यवनराज बिना आमत्रण पाये स्वयवर मे सम्मिलित होने का साहस ही नहीं कर सकता था। उसे आमत्रण मिला होगा। लेकिन हमे इस विषय मे गहरा उतरने की आवश्यकता नही है। हमे तो यह देखना है कि उस समय भारत का सम्बन्ध कहा तक था?

इतिहास एव जैन सूत्रो के चरितानुयोग के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन समय की तरह उस समय यह समस्या जटिल नही बनी थी ओर परहेज नही किया जाता था। परस्पर कन्या ली व दी जाती थी। इसका प्रमाण यह है कि चक्रवर्ती और वासुदेव दिग्विजय करके प्रत्येक देश के राजा की कन्या को ब्याहते थे और इसी कारण चक्रवर्ती की बत्तीस हजार जनपद कल्याणी रानिया व वासुदेव की सोलह हजार रानिया जैन सूत्रो मे बताई गई हैं। रानिया तो अधिक होती हैं परन्तु प्रधान राजकन्या होती थी। यह प्रणाली महाराज चन्द्रगुप्त और अशोक तक रही। बाद मे मुगल लोग इस देश मे आये और बलात्कार करने लगे तब घृणा पैदा हुई हे और तब से खान–पान व कन्या के लेन–देन का व्यवहार बन्द हुआ है।

स्वयवर का दिन आया। पिछली रात्रि के समय ही अपने वेभव के साथ स्वयवर–मण्डप मे पधारने की सूचना सब राजाओ को कर दी गई थी। विशाल मण्डप तेयार किया गया था। ग्रन्थ मे यह भी बतलाया गया हे कि मडप मे किस प्रकार की शिल्पकला से काम लिया गया था। मडप की रचना का वर्णन करते हुए वतलाया गया हे कि उसमे ऐसी योजना की गई थी कि सब आमत्रित नरशगणो के अतिरिक्त राजकुल की महिलाए तथा अन्य दर्शक स्त्रिया आर पुरुष भी सुभीते से वेठ सक। इसी प्रकार राजा द्रुपद तथा उनके पुत्रा क लिए अलग वठके वनाई गई थी। द्रोपदी के खडे रहन का स्थान अलग था। मडप क मध्य म स्तभ आर स्तम्भा पर पुतलिया बनाई गइ थी।

इस प्रकार वह स्वयवर–मडप शिल्पकला मे कुशल कारीगरो द्वारा निर्मित हुआ था।

राजा लोग स्वयवर–मडप मे जाने के लिए तैयार होने लगे। जो राजा लोग श्रीकृष्ण के पक्ष के थे वे तो शान्त और गम्भीर थे किन्तु जरासध के पक्ष के राजा अपनी–अपनी हेकडी की बाते बघारते थे। उनमे से काई कहता था–धनुर्विद्या मे कौन मेरी बराबरी कर सकता है? मैं लक्ष्य बेध कर कन्या का वरण करूगा।

दूसरा कहता–तुम मेरा मुकाबिला नही कर सकते। तुमने धनुर्विद्या सीखी तो है पर मेरे समान नही। यह स्वयवर तो हमारे भाग्योदय से हुआ है। दूसरे राजा तो दर्शक बनकर आये हैं।

तीसरा कहता–अजी मैं किसी की दाल नही गलने दूगा। द्रौपदी का मेल मेरे साथ हुआ तब तो ठीक है, वर्ना उसे मौत के साथ विवाह करना पडेगा।

चौथा कहता–वृथा गाल मत बजाओ। मारना सरल नही है। द्रुपद बहुत चतुर है। इसीलिए उसने इतनी कठोर शर्त रखी है, जिसका पूरा होना ही कठिन है। पहले तो धनुष चढाना ही कठिन है। कदाचित् चढ भी गया तो चक्रो के चक्कर मे होकर बाण का पार होना अतिशय कठिन है। कदाचित बाण पार भी हो गया तो राधा की बारीक आख को छेदना तो सर्वथा असम्भव है। इस प्रकार धनुर्विद्या मे तो सभी हार जाएगे। उसके बाद रूप–सौन्दर्य की पूछ होगी। देखते हैं रूप के बाजार मे किसे अधिक कीमत मिलेगी? मेरा रूप कामदेव से कुछ भी कम नहीं है। हम अपना सारा समय रूप सजाने मे ही लगाते है। रूप ही स्त्री के हृदय को अपनी ओर खीचता हैं। इस प्रकार रूप की कीमत होने पर हमारे ही गले मे वरमाला पडेगी। धनुष तो बेचारा धरा रह जायेगा।

पाचवे ने कहा–अजी कुल के आगे रूप को कौन पूछता है।

कोई कहे कुल है बडा रूप न आये काम।
वरे द्रौपदी हम सही कुल मे मेरा नाम।।

तुम रूप–रूप चिल्लाकर भाडो वाले तमाशे किया करो रूप से होता कुछ भी नही हे। ऐसा रूप तो बहुरूपिया भी बना सकता है । सजधज को देखकर द्रौपदी किसी को अपना पति बनाने वाली नही। वह कुलीन है कुल का महत्त्व समझती हे। क्या उसने यह शिक्षा नही पाई होगी कि कुल मे ओर रूप मे बडा अन्तर ह। वह अवश्य जानती होगी कि रूप का प्रभाव कब तक

रहता है और कुल का प्रभाव कब तक रहता है। कुल की विशेषता तो वृक्षो मे भी देखी जाती है। जो वृक्ष कुलवान होते हैं उनके फूल देखने मे चाहे अच्छे न हो परन्तु सुगधयुक्त होते हैं और कुलहीन वृक्षो के फूल देखने मे सुन्दर होने पर भी सुगधहीन होते हैं। हम कुलवान् हैं इसलिए द्रौपदी हमारे ही गले मे माला डालेगी। रूप का बखान मत करो। अन्त मे आपका मुह फीका पड जायेगा।

छठा बोला–भाई, कुल से भी बडी चीज गुण है। चमत्कार को नमस्कार होता है।

सातवा बोला–आप लोग मन के लडडू खाकर सतुष्ट हो रहे हैं, इसमे मैं बाधा डालना ठीक नही समझता। लेकिन सचाई यह है कि असली चीज बल है। मै सबसे अधिक बलवान् हू। मैं गदायुद्ध कर सकता हू, मल्लयुद्ध कर सकता हू और अपने बल की श्रेष्ठता सिद्ध कर सकता हू। सच पूछो तो मुझ बलवान् का ही द्रौपदी पर अधिकार है।

क्षुद्र प्रकृति के लोग इस प्रकार अकड रहे थे। भली प्रकृति वाले कहते थे–तुम अकेले ही विद्यावान्, रूपवान कुलवान् या बलवान नही हो। स्वयवर–मण्डप मे चलकर देखना, क्या होता है! पहले का अभिमान पीछे अपमान वन जाता है।

राजा लोग सज–धज कर स्वयवर–मण्डप मे उसी प्रकार प्रवेश करने लगे जेसे समुद्र मे नदिया प्रवेश करती हैं। द्रुपद ने पहले से ही ऐसी सुव्यवस्था कर रखी थी कि किसी प्रकार की गडवड न हो ओर सव आने वाले अपने–अपने आसनो पर वेठ जाए।

श्रीकृष्ण के आने पर द्रुपद ने उठकर आदर के साथ उनका स्वागत किया। फिर द्रुपद ने कहा–इस सभा–भवन मे शाति रही इसमे मे आपका ही प्रभाव समझता हू। किसी की आकृति व प्रकृति का ही ऐसा प्रभाव होता हे कि जिससे शाति का वातावरण बना रहता हे। आपने यहा पधार कर बडी कृपा की हे। मेरा गोरव वढाने के लिए आप पधारे हे इसलिए में आपका आभारी हू।

इस प्रकार की स्तुति करके द्रुपद ने उन्हे विठलाया। कृष्ण की आज्ञा से द्रुपद भी उनके पास वेठ गये। भीष्म आदि समीप ही वेठे थे।

कृष्ण का इतना सम्मान करते देखकर द्रुपद को दूसरे राजा वडे गोर स दखन लग। आपस म काना–फूसी होने लगी–द्रुपद न कृष्ण का इतना सम्मान करक पक्षपात किया ह। स्वयवर–भवन मे कोन वडा ओर कोन छाटा? यहा ता सवका समान सत्कार हाना चाहिए? कृष्ण का इतना सत्कार करन

की क्या आवश्यकता थी? पकट मे कुछ कह नही सकते नही तो बतला देते कृष्ण कैसे हैं? लेकिन क्या हुआ? राधाबेध के समय सब शूरवीरता प्रकट हो जाएगी।

एक ओर महिलाए मगलगान कर रही थी और दूसरी ओर मगल-वाद्य बज रहे थे। उसी समय दुपद ने दौपदी को लाने की आज्ञा दी। दौपदी शृगार करके अपनी सखियो के साथ पालकी मे बैठकर आई। दुपद की आज्ञा से पालकी के पर्दे उठा दिये गये दौपदी बाहर आई।

जब सीता रावण के यहा से पालकी मे बैठकर रामचन्द्र के पास आने लगी थी तब उसके दर्शन करने के लिए लोग एक दूसरे पर टूट पड रहे थे। कोलहल सुनकर राम ने पूछा-यह कोलाहल क्यो है? उत्तर मिला-सीताजी आ रही हैं। उनके दर्शन के लिए लोग टूट पडे हैं। तब राम ने कहा सीता को मैने अकेले ने नही जीता है सबने सहायता दी है। इसलिए सीता को नीचे उतार दो ताकि सब देख ले।

दुपद की आज्ञा से पालकी का पर्दा हटा दिया गया और द्रौपदी बाहर आ गई। दौपदी उस समय ऐसी जान पडती थी जैसे बादलो के हट जाने पर पूर्णिमा का चन्द्रमा निकला हो। जो लोग धीर थे, वे तो गम्भीर बने रहे परन्तु कामीजन कहने लगे-चाहे राज्य ही क्यो न चला जाय परन्तु द्रौपदी को बिना जीते न रहेगे।

कुमारी दौपदी नीचे दृष्टि किये सभा मे आई। द्रौपदी को भवन मे आई देखकर राजा लोग चित्रलिखित-से रह गए। वे कल्पना करने लगे कि यह देवकन्या है अप्सरा है या स्वर्गीय विभूति है? यह जिस घर मे रहेगी वह स्वर्ग बन जायेगा।

कुछ लोग सोचने लगे-अच्छा हुआ कि इस स्वयवर मे आ गये अन्यथा यह अनुपम सौन्दर्य-राशि कहा देखने को मिलती है? हम क्षत्रिय हैं भूमि और भामिनी के लिए कट मरते हैं। अत या तो कटकर मर जाएगे या इसे व्याहेगे ही।

ससार की शक्ति पुण्य भी उत्पन्न करती है और पाप भी। काम दोनो ही होते हे परन्तु आप देखे कि आपको क्या करना हे? आज द्रौपदी नही है लेकिन रूपवती स्त्रिया तो आज भी हैं उन्हे देखकर आपको क्या विचार करना चाहिए यह देखे। जब कोई सुन्दरी दृष्टि मे आ जाये तो पाप-भावना न करके यही सोचना चाहिए कि यह स्त्री पुण्य का प्रभाव प्रकट कर रही है। इस स्त्री ने पुण्य किया होगा दान दिया होगा और तप किया होगा तभी

इसे ऐसा सोन्दर्य मिला है। इस प्रकार सौन्दर्य पर मुग्ध न होकर सौन्दर्य के असली कारणो पर मुग्ध होना चाहिए। बिजली के प्रकाश को देखकर पतग यह नही सोचता कि यह प्रकाश कहा से आया है? वह उस पर टूट पडता है और अक्सर अपने प्राणो से हाथ धो बैठता है। वैज्ञानिक ऐसा नही करता। वह प्रकाश उत्पन्न होने की सारी प्रक्रिया पर विचार करता है। सुन्दरी स्त्री को देखकर आपको भी पतग की भाति अविवेक से काम नहीं लेना चाहिए।

स्वयवर–मडप मे द्रौपदी बिजली के प्रकाश की तरह है। कामी लोग उसे देखकर पतग की तरह जलते हैं। चरित्रवान राजा गम्भीर होकर निर्विकार भाव से उसे देख रहे हैं।

सभा को शात देखकर द्रुपद ने अपने पुत्र धृष्टद्युम्न से कहा–आये हुए सब राजाओ का स्वागत करके प्रण सुना दो।

धृष्टद्युम्न ने खडे होकर कहा–नरेन्द्रगण! आपने हमारा निमन्त्रण स्वीकार करके यहा पधारने का कष्ट किया है, इसलिए मैं आप सबका आभारी हू। आप लोग मेरी बहिन द्रौपदी के निमित्त से आये हैं। मेरी बहिन एक हे ओर आप अनेक हैं। अतएव मै आपके कर्त्तव्य पर कुछ प्रकाश डालना चाहता हू।

आप लोग राजा है, क्षत्रिय हैं। धर्म की रक्षा करना आप सबका कर्त्तव्य हे। सबल से निर्बल की रक्षा करना यहा तक कि निर्बल की रक्षा करने मे अपने प्राण भी होम देना क्षात्रधर्म है और इस धर्म को धारण करने वाला क्षत्रिय कहलाता हे। धर्म की रक्षा के लिए ही आपका आगमन हुआ हे। धर्मरक्षा का भार में आपको सोंपता हू। आप अनेक हे ओर इस कारण आप चाहे तो इस राज्य के टुकडे–टुकडे कर सकते हें लेकिन आप सब उच्च कुलीन हें। अतएव मुझे विश्वास हे कि आप मेरे पिताजी को शाति पहुचाएगे और धर्म की रक्षा करेगे।

मेरी वहिन सवके समक्ष उपस्थित हे। आप वहुतो मे से वह किसी एक को ही वरण करेगी। हम भी किसी एक को देने के लिए तेयार ही हें। लकिन शेप राजाओ को यह नही सोचना चाहिए कि द्रोपदी अमुक को क्यो दी गई आर अमुक को या हमको क्या नही दी गई? जिस शर्त की पूर्ति पर वहिन का विवाह निर्भर हे आप उस शर्त की पूर्ति म सहायक वन यही मेरी प्रार्थना ह। आप मर अतिथि ह ओर म आपका सवक हू। कहावत हे– घर आया मा का जाया। अर्थात घर पर आया चाह वह शत्रु ही क्या न हो भाई

के समान है और उसका सत्कार करना नैतिक धर्म है। मै आपका सत्कार करना चाहता हू लेकिन वह औचित्य और शक्ति के अनुसार ही हो सकता है।

मेरी पार्थना है कि आप हमे सेवक समझकर हमारे धर्म की रक्षा करेगे। आपको पतिज्ञा का भलीभाति पता है और उस प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिए ही आप पधारे हैं। फिर भी मैं सक्षेप मे उसे दोहराता हू–

हे सभ्य! उपस्थित,
हे धर्म–धुरन्धर!
धर ध्यान सुनो,
जिसे पूर्ण करना है।
वह लखो सामने!
जिसकी चोटी पर मीन बनी
है जड मे उस ही खभे की
उसके निकट
जो वीर तेल मे मछली
शर चढा आख को बेधे
बस उसी वीर धनुर्धारी के
जयमाल गले मे पहनाकर
कृष्णा उसे वरेगी
वही वीर मैदान मे उठकर आये।
अपने भुजबल को यहा किस्मत से आजमाये।
क्योकि सोना
और शस्त्र
बस इसी तरह
है वीरवरो के
अस्तु उठो भूपाल गण!
लक्ष्य बेध कर
इम्तिहान है कौमी
देखे कितना पानी
निज वश के नाम
कुल का गौरव
देखे तुम मे से कौन वीर

जो वरे द्रौपदी भगिनी?
इतना कहकर वे खामोश हुए
जोशीले शब्दो को सुनकर
आखो ने फौरन रग बदला
हडबडा के झटपट
फिर तुरन्त चले आधी–से
दातो से ओठ काटते थे,
मन्थन के शर–जाल से बिधे
देखते परस्पर वीरवर।

धृष्टद्युम्न ने स्पष्ट कर दिया कि द्रौपदी घमण्ड से नही, पराक्रम से मिलेगी। जो भी राधाबेध करेगा, वही द्रौपदी के हाथ से वरमाला पहनेगा। इसलिए उठो और अपना पराक्रम दिखलाओ।

धृष्टद्युम्न की घोषणा सुनकर राजा लोगो को जोश चढा। वे उत्तेजित होकर उठे और दातो से होठ चबाते हुए धनुष उठाने लगे आपस मे कहने लगे–पहले मैं बेधूगा पहले मैं बेधूगा। मार्ग मे खडे प्रतिहारी ने विनम्रता–पूर्वक प्रार्थना की–धैर्य से काम लीजिए क्रमश पधारिये।

द्रौपदी की सखी प्रत्येक राजा का मुह काच मे दिखला कर परिचय देती ओर कहती थी– यह राजा ऐसे बलवान् हैं। अगर यह लक्ष्य बेधे और तुम इनके गले मे वरमाला डालो तो अच्छा है।'

सखी की बात सुनकर द्रोपदी मुस्कुरा देती। द्रौपदी की दृष्टि सब राजाओ पर से हटकर अर्जुन पर चली गई थी। उसका हृदय अर्जुन को ही चाहता था।

राजा लोग स्तम्भ के निकट पहुचकर लक्ष्य वेधने का प्रयत्न करने लगे परन्तु धनुष का उठाना ही कठिन हो गया। न जाने द्रोपदी का सत्य धनुष मे आ गया था या उसका मनोबल धनुष को भारी बना रहा था या ओर कोई बात थी। लेकिन जोश खाकर उठाने के लिए आये हुए राजा लोगो से धनुष नही उठा। लक्ष्य वेधने की बात तो दरकिनार रही कई राजा तो धनुष खिसका ही नही सके।

धनुष उठान आर लक्ष्य वधने के लिए राजा लोग आते तो थे सिह की तरह गरजत हुए लकिन लाटत थ उतरा हुआ मुह लकर। कई एक ता धनुष उठान क प्रयत्न म स्वय गिर पड। यह दशा दखकर दर्शक हसते ओर कहत कुल का खूब उज्ज्वल किया।

धनुष न उठने पर और ऊपर से अपना उपहास सुनकर राजा लोग बडे लज्जित होते और सोचते–स्थान मिले तो जमीन मे ही धस जाना अच्छा।

कृष्ण पर विश्वास रखने वाले उनके पक्ष के राजा कृष्ण की ओर देखते थे और सोचते थे कि उनकी आज्ञा के बिना धनुष उठाने और लक्ष्य बेधने के लिए जाना ठीक नही है। कृष्ण की इच्छा के बिना कुछ भी नही होगा। अब तक जो राजा गये उन्होने कृष्ण की सम्मति नही ली और इसी कारण उन्हे लज्जित होना पडा।

धनुष उठाने मे असफल हुए राजाओ को देखकर दुर्योधन सोचने लगा–धिक्कार है इन्हे। यह भी कोई राजा हैं? यह धनुष कोई राक्षसी धनुष तो है नही मगर इनमे शक्ति ही नही है। मैं अभी धनुष उठाकर और चढाकर बेधता हू।

दुर्योधन कमर कसकर उठा। उसे उठते देख गाधारी सोचने लगी–दौपदी मेरी बहू बनकर जब मेरे पैरो मे पडेगी तो मेरा बडा सौभाग्य होगा।

यह सोचकर गाधारी ने द्रौपदी पर निगाह डाली। उसे विश्वास हो गया था कि जब द्रौपदी दुर्योधन को चाहेगी तभी धनुष उठ सकेगा और तभी लक्ष्य–बेध होगा। लेकिन गाधारी ने द्रौपदी का मुह उतरा हुआ देखा। वह निराश होकर सोचने लगी–जब द्रौपदी ही दुर्योधन को नही चाहती तो धनुष उठना कठिन है। और ऐसी बहू किस काम की जो बिना इच्छा के मेरी बहू बनी हो?

दुर्योधन गर्व के साथ धनुष के पास आया और धनुष उठाने की चेष्टा करने लगा लेकिन धनुष न उठ सका। दुर्योधन अत्यन्त लज्जित हुआ। वह सोचने लगा–मै दूसरे राजाओ को ही धिक्कार रहा था, अब मैं स्वय धिक्कार का पात्र बन गया। कौन जाने इस धनुष मे क्या करामात है?

स्वयवर–मडप मे रखा हुआ धनुष क्यो नही उठता था? इस पर यह प्रश्न होता है कि दु शासन द्वारा दौपदी के वस्त्र क्यो नहीं हरण किये जा सके थे? जिस शक्ति के कारण वस्त्र नही हरे गये थे उसी शक्ति के कारण धनुष भी नही उठा। यह सती की शक्ति है। एक मेस्मेरिज्म वाला भी जब किसी बच्चे पर पावर डाल देता है तब वह बच्चा लकडी की तरह कडा हो जाता है और वह झुकता नही है। जब मेस्मेरिज्म मे यह शक्ति है तो सती कहलाने वाली सतियो की दृष्टि मे कैसी शक्ति होनी चाहिए? द्रौपदी की सशक्त दृष्टि

जब तक धनुष पर या उसके उठाने वाले पर क्रूर थी तब तक धनुष कैसे उठ सकता था?

एक मदारी ने प्राणीशास्त्र के वेत्ता के सामने रस्सी को साप बना दिया जिसे देखकर वह आश्चर्यपूर्वक कहने लगा कि वास्तव मे यह साप ही है। लेकिन जो आदमी नजरबन्दी की सीमा से बाहर खडा था, वह कह रहा था कि मुझे रस्सी ही दिखाई देती है। फिर भी मदारी ने तो प्राणीशास्त्रवेत्ता को भी आश्चर्य मे डाल दिया। जब मेस्मेरिज्म मे इतनी शक्ति है तो सत्य की शक्ति का क्या कहना है?

दुर्योधन धनुष के पास से हट गया। वह कर्ण के पास जाकर कहने लगा—क्या द्रुपद ने सब राजाओ को लज्जित करने के लिए ही यह षड्यत्र रचा है? इस धनुष ने सभी की इज्जत किरकिरी कर दी। अब तुम राजाओ की लाज रखोगे या नहीं?

कर्ण ने कहा—यद्यपि मुझे विवाह करने की इच्छा नही है, फिर भी मैं धनुष चढाता हू।

कर्ण धनुष के पास जाने को उद्यत हुआ तो वहा उपस्थित सब लोग कहने लगे—इस सभा मे धनुर्विद्या के विशेष ज्ञाता और बलवान् कर्ण तथा अर्जुन ही हैं। अतएव आशा है कर्ण धनुष चढाकर लक्ष्य को बेधेगा।

गभीरता के साथ पृथ्वी को कम्पित करता हुआ कर्ण धनुष के पास पहुचा। देखते—देखते उसने धनुष उठाकर चढा दिया। सब लोग कर्ण को धन्य—धन्य कहने लगे। किसी ने कहा—यह राजपुत्र ही राधावेध करेगा।

कर्ण ने धनुष चढा दिया, यह देखकर द्रौपदी चिन्तित हुई। उसने सोचा—क्या मेरी मनोकामना पूर्ण न होगी? क्या मैं इच्छित वर प्राप्त न कर सकूगी? इस प्रकार विचार कर उसने कर्ण से कहा— हे सूतपुत्र आप धनुष के पास से हट जाओ। मैं क्षत्रियकन्या हू। अगर आपने लक्ष्य बेध दिया तो भी मैं आपको वरण नहीं करूगी। मैं सूतपुत्र को अपना पति नही बना सकती।

द्रौपदी की बात सुनकर द्रुपद ने कहा—पुत्री तुम शात रहो। तुम्हे ऐसा कहने का अधिकार नही है। यह सभा क्षत्रियो की ही नही वरन् वीरो की है। इस सभा मे आया जो भी कोई लक्ष्य को वेधेगा वही तुम्हारा पति होगा चाहे जन्म से वह कोई भी हो।

द्रौपदी—पिताजी ऐसा करने से मेरा धर्म चला जाएगा। मैं क्षत्रिय को छोडकर दूसरे को नही चाहती।

कर्ण ने विचार किया–उचित तो यह है कि कन्या मुझे चाहे और मै कन्या को चाहू। दोनो मे से एक की चाह के बिना दाम्पत्य–सबध स्थापित करना अनुचित है। जब कन्या ही मुझे नही चाहती तो मैं भी उसे बलात ब्याहना नही चाहता। यद्यपि मैं राधा–बेध कर सकता हू परन्तु इस स्थिति मे ऐसा करना मेरा धर्म नही है।

इस पकार विचार कर कर्ण ने धनुष रख दिया और वह अपने स्थान पर जा बैठा। लोग उससे कहने लगे–आप भी खूब है, जो लडकी की बात मानकर लौट आये।

कर्ण ने कहा–मेरी वीरता धर्म की रक्षा करने के लिए है। मैं अधर्म करके अपनी वीरता को कलकित नही करना चाहता। जब कन्या मुझे नही चाहती तो उसे पाने का मुझे क्या अधिकार है? बिना हृदय का शरीर लेकर मैं क्या करूगा? ऐसा करना तो कुत्तो का काम है। वीर पुरुष ऐसी इच्छा भी नही करते। कन्या पर जबर्दस्ती करना, न वीरता है और न धर्म है। वीर होने के कारण मैं धर्म की उपेक्षा नही कर सकता। आखिर तो धर्म ही सद्गति का दाता है।

हारे हुए राजा कर्ण को भडकाने लगे। कहने लगे–अगर ऐसा होना था तो कर्ण को आमन्त्रण ही क्यो दिया गया? निमन्त्रण देकर किसी वीर का अपमान करना अत्यन्त अनुचित है। वीर कर्ण आप लक्ष्य को बेधिए, पीछे हम लोग सभाल लेगे।

बुद्धिमान और विवेकशील राजा कर्ण के विचारो की प्रशसा करने लगे। उन्होने कहा–कर्ण ने उचित किया है। यही वीरो के योग्य कर्त्तव्य है।

कोलाहल करने वालो से कर्ण ने कहा–मैं आपके भडकाने से नही भडक सकता। तुम कुछ और प्रेरणा करते हो तथा धर्म कुछ और ही प्रेरणा करता है। मै धर्म की प्रेरणा को समझता हू।

धर्म का तत्त्व बहुत गभीर है। साथ ही सर्वसाधारण जनता को धर्म का तत्त्व समझना आवश्यक है। ऐसी दशा मे यही उपाय किया जाता है कि गम्भीर धर्म को सरलता से समझाने के लिए धर्मकथा का आश्रय लिया जाय। धर्मकथा सुनने का यही पयोजन है। धर्मकथा मे से धर्म का सार ग्रहण करना चाहिए।

[illegible] कहा था कि द्रोपदी ने अपने दिल मे कहा था– हे धनुष! तू उसी [illegible] जिसे मै चाहती हू। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि धनुष अपनी

गुरुता के कारण नही उठा था अथवा द्रौपदी की भावना के कारण? इसी विषय पर केनोपनिषद् मे आई एक कथा कहता हू। वह इस प्रकार है–

ब्रह्मा ने असुरो को जीता, परन्तु देव लोग गर्व करने लगे कि असुरो को हमने जीता है। ब्रह्मा विचारने लगे कि देवो मे यह विचार नहीं रहने देना है। ब्रह्मा यक्ष का रूप बनाकर देवो के पास गये। ब्रह्मा रूपी यक्ष को देखकर देव सोचने लगे–यह कौन है? यह जानने के लिए देवो ने यक्ष के सामने सब से आगे अग्नि (देव) को भेजा। अग्नि जब यक्ष के पास पहुची तो यक्ष ने पूछा– तू कौन है?' उसने उत्तर दिया– मैं अग्नि हू। यक्ष ने पूछा– तू क्या कर सकती है? उसने उत्तर दिया–'मै सारे ससार को भस्म कर सकती हू। यक्ष ने उसके सामने एक तिनका रखकर कहा–'इसे जला। अग्नि ने तिनके को जलाने की बहुत चेष्टा की, पर तिनका न जला। अग्नि लज्जित होकर लौट गयी।

इसके बाद देवो ने यक्ष का पता लगाने के लिए पवन को भेजा। यक्ष ने पवन से भी उसी प्रकार के प्रश्न किये। पवन ने कहा–मैं ससार को उडा सकता हू। यक्ष ने वही तिनका उडाने के लिए कहा मगर तिनका न उडा। इसी प्रकार जल आया और वह भी तिनके को न बहा सका। तब ब्रह्मा वही अन्तर्धान हो गये।

यहा विचारणीय बात यह है कि उस तृण मे ऐसी शक्ति कहा से आ गई कि अग्नि उसे जला न सकी पवन उडा न सका और जल बहा न सका। वह शक्ति तृण की खुद की थी या ब्रह्मा की थी? उपनिषदो ने वह शक्ति ब्रह्मा की बतलाई हे।

ऐसी ही बात धनुप के विषय मे क्यो नहीं कही जा सकती? वह धनुष द्रोपदी की इच्छाशक्ति के बिना नही उठ सकता था।

प्रश्न किया जा सकता हे कि अगर यही बात होती तो कर्ण ने धनुष को केसे उठा लिया? उस समय द्रोपदी की शक्ति कहा चली गई थी?

यह प्रश्न सामने रखकर लोग कह देते हें–धर्म हे कहा? धर्म के प्रताप से अग्नि भी शीतल ओर विष भी अमृत हो जाता हे तो हम विष देकर देखे कि वह अमृत होता ह या नही? इस प्रकार लोग धर्म की परीक्षा करने की इच्छा तो करत हें पर यह नहीं देखते कि एक कार्य के अनेक कारण हा सकते ह। उदाहरणार्थ–मस्मरिज्म एक वालक पर ता अपना प्रभाव दिखलाता हे पर आत्मवली पर उसका कुछ भी प्रभाव नही पडता। एसी दशा म मस्मरिज्म का झूटा कहा जाय या सच्चा? अगर झूठा ह ता दृढ इच्छाशक्ति वाल आत्मवली

पर उसका असर क्यो नही पडता? अब सोचिए किस सिद्धान्त को लेकर आप उसे झूठा या सच्चा साबित करेगे?

यही बात स्वयवर–मडप मे रखे हुए धनुष के विषय मे समझनी चाहिए। दौपदी के मनोबल मे कोई कमी नही थी और न इस कथन मे ही आश्चर्य की बात है कि दौपदी के बलवान् विचारो के कारण धनुष नही उठा। रह गई कर्ण के धनुष उठा लेने की बात। सो इसका समाधान ऊपर के दृष्टात से हो जाता है। दौपदी की इच्छाशक्ति अन्य राजाओ को प्रभावित करने मे समर्थ हो सकी किन्तु कर्ण पर उसका प्रभाव न पडा। कर्ण कोई साधारण व्यक्ति नही था। वह भी कुन्ती का पुत्र था। वह धर्मनिष्ठ, पराक्रमी रूपवान् और बलवान् था। उसका मनोबल दौपदी के मनोबल से पराजित नहीं हो सका। जिसका मनोबल प्रबल होता है उसी की विजय होती है। यह भी सम्भव है कि कर्ण जब उठा तब द्रौपदी भयभीत हो गई थी और इसी कारण उसके मनोबल मे कमी हो गई हो। कुछ भी हो, परिणाम यह है कि कर्ण का मनोबल द्रौपदी के मनोबल से उस समय प्रबल था। इस कारण कर्ण का मनोबल विजयी हुआ। तब द्रौपदी को दूसरा उपाय खोजना पडा।

कर्ण बलवान तो था ही, साथ ही धर्मात्मा भी था। लोग समझते है कि ससार–व्यवहार के साथ धर्म नही निभाया जा सकता। इस गलत समझ के कारण ही वे व्यवहार मे धर्म को भूल जाते हैं। वे मानने लगते हैं कि ससार–व्यवहार और धर्म मे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। इस कारण लोग धर्म से पतित हो जाते है। वास्तव मे धर्म जीवनव्यापी तत्त्व है। वह सिर्फ धर्म–स्थानो की वस्तु नही है वरन आत्मा के साथ सदा–सर्वदा रहने वाला है। यह विचार कर प्रत्येक क्षण धर्म की साधना करना उचित है।

कर्ण चाहता तो द्रौपदी से कह सकता था– 'तुझे बोलने का कोई अधिकार नही है तू लक्ष्यबेध के अधीन हे। जो लक्ष्य बेधेगा उसे तुझे वरण करना होगा।

कर्ण ऐसा कहता तो क्या झूठ कहता? उसके कथन का विरोध भी नही किया जा सकता था। बल्कि द्रुपद ने तो द्रोपदी से यह बात कह भी दी थी। मतलब यह है कि कर्ण अगर लक्ष्य बेध देता तो उसे द्रौपदी को पाने का [illegible] अधिकार था। फिर भी उसने द्रोपदी के हृदय का विचार करके [illegible] को रख दिया। आज ऐसा कौन ह जो दोपदी जैसी अनुपम सुन्दरी को [illegible]

और साथ ही असाधारण कीर्त्ति को पाने का अधिकारी होकर भी त्याग दे? कर्ण ने कह दिया कि मैं अपना बल कन्या का हक लूटने मे नही लगाना चाहता। लुटेरेपन मे काम आने वाला बल वास्तव मे बल नहीं है। बल वह है, जो धर्म की रक्षा मे लगा हुआ हो।

जिस प्रकार दरिद्रता की स्थिति मे दान करना कठिन है और जो दान करता है, वह शूर है उसी प्रकार वीर होते हुए जो धर्म का विचार करता है वही वास्तव मे शूर है।

आज लोक–निन्दा के कल्पित भय से भी बहुत–सी कुचाले चल पडी हैं। लोग यह विचारकर कुकृत्य करते लगे हैं कि ऐसा न करेगे तो लोकनिन्दा होगी। मगर वीर पुरुष ऐसी बातो की परवाह नही करते। कर्ण ने लोगो की बातो की परवाह नहीं की और धर्म का विचार करके सन्तोष के साथ बैठ गया। वास्तव मे हमारे सामने कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का ही विकल्प होना चाहिए। लोकनिन्दा या लोक–प्रशसा के ध्येय से किसी अच्छे कार्य से विमुख नहीं होना चाहिए और बुरे कार्य मे प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

कर्ण के बाद बडे अभिमान के साथ भगदत्त राजा उठा। उसने सोचा–धनुष उठने का मगलाचरण हो चुका है तो अब मैं क्यो पीछे रहू? उसने बहुत जोर मारा मगर धनुष नही उठा। धनुष न उठने के कारण अभिमानी भगदत्त के चित्त की क्या दशा हुई होगी यह कौन जाने? लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता हे कि अभिमान से बढकर कोई बुराई नही है। लोग इसके वश होकर क्षुद्र से क्षुद्र ओर अधम से अधम काम करने लगते हैं। भगदत्त नीची गर्दन करके बेठ गया। अन्य राजा हसने लगे। भूरिश्रवा कहने लगा–तुम्हारे उठते ही छीक हुई थी। इसी कारण धनुष नही उठा। अब देखो मैं उठाता हू। वह मन मे कहने लगा–'हे कुलदेव! हे इष्टदेव! तुम सब मेरे अनुकूल होओ। में केवल क्षत्रियो की लाज रखने के लिये उठ रहा हू। मुझे स्त्री की आवश्यकता नही है।

भूरिश्रवा गरजता हुआ गभीरतापूर्वक धनुष के पास गया। द्रोपदी सोचन लगी– यह मूर्ख हे इसी कारण धनुष उठाने का साहस करने को तेयार हुआ है। यह क्या धनुष उठाएगा?

सखी कहने लगी– भूरिश्रवा कुलवान ओर बलवान हे। यह धनुप उठा ल आर लक्ष्य बध द ता अच्छा ह।

मगर भूरिश्रवा की भी वही हालत हुई जो भगदत्त की हुई थी। वह भी द्रापदी क वदल लज्जा का वरण करता हुआ अपन स्थान पर बेठ गया।

अब जयदथ की बारी आई। वह सोचने लगा–ज्योतिषी ने हमे अच्छा मुहूर्त दिया है। इस मुहूर्त मे अवश्य ही लक्ष्यबेध होना चाहिए। यह सोचकर वह धनुष के पास पहुचा। मगर धनुष ने उठने का नाम ही न लिया।

इसके बाद शल्य और फिर दु शल्य उठे। उन्हे भी हार मानकर बैठ जाना पडा। तब जरासिन्धु जो अपने आपको राजाओ का भी राजा मानता था बडे अभिमान के साथ खडा हुआ। उसे उठते देख लोग सोचने लगे कि अब लक्ष्य बिधा बिना नहीं रहेगा। लेकिन द्रौपदी ने धीरे से अपनी सखी से कहा– जरा इस बूढे को तो देखो। जवानो का स्वाग बनाये जा रहा है। बलवान् है तो तप करने जाना चाहिए, उसके बदले ब्याह करने चला है।' सखी ने कहा–अजी यह सम्राट है। सम्राट से लक्ष्य बिधा गया तो निहाल हो जाओगी। द्रौपदी बोली–साम्राज्य से किसी के हृदय की भूख नही मिटती। धनुष उठ ही नही सकता। मै कह जो रही हू।

इतने मे जरासिन्धु धनुष के पास जा पहुचा। उसने धनुष उठाने के लिए अपना सारा बल लगा दिया लेकिन धनुष तो जैसे जमीन पर चिपक गया था। उसने उठने का नाम ही न लिया। जरासिन्धु का मुह फीका पड गया। लज्जित होकर सोचने लगा–इस धनुष ने मेरा यश कलकित कर दिया। आज तक मैंने हार नही जानी थी कि हार किसे कहते हैं? लेकिन आज इससे भेट हुई। इस अपमान से तो मौत ही भली थी।

जरासिन्धु को तसल्ली देते हुए शिशुपाल कहने लगा–आप चिन्ता न करे। आप वृद्ध हैं इसी से धनुष नही उठा सके। जब मैं लक्ष्य बेधूगा तो मेरी विजय आपकी ही विजय होगी।

शिशुपाल जोश के साथ धनुष की ओर जाने लगा। इधर द्रौपदी मुस्करा कर अपनी सखी से कहने लगी–इस मूर्ख को अपने मान–अपमान का भी ख्याल नही हैं।

सखी–ऐसा मत कहो सखी। शिशुपाल बडा वीर है इसके पीछे 99 राजाओ का बल है। यह जरासिन्धु से सम्मानित है। जरासिन्धु इसी का बल पाकर बलवान है। अगर यह लक्ष्य बेध दे और आप इसके गले मे वरमाला डाल दे तो अच्छा ही है।

द्रौपदी– ऐसे अभिमानी को मैं अपना पति नही बनाना चाहती।

सखी–आपको तो बस सभी राजा नापसन्द हैं। क्या जन्म भर [illegible] बनकर रहना है? कुवारी रह गई तो हाय–हाय करोगी।

द्रौपदी–घबरा मत देखे जा।

द्रोपदी धनुष पर क्रूर और उग्र दृष्टि करके बैठ गई। शिशुपाल धनुष से भिडा। पर धनुष इतना भारी हो गया मानो सारे ससार का भारीपन सिमटकर उसी मे आ गया हो। शिशुपाल धनुष के आसपास देखने लगा कि कही वह अटका हुआ तो नही हे। लेकिन धनुष कही अटका न था और कर्ण एक बार उसे उठा चुका था। गहरी निराशा के साथ उसे अपना स्थान ग्रहण करना पडा।

शिशुपाल के बैठते ही सारे सभामडप मे सन्नाटा छा गया। जब जरासिन्धु और शिशुपाल जैसे वीर, वीर–शिरोमणि गिने जाने वाले राजाओ की आबरू भी किरकिरी हो गई तो अब किसमे साहस था कि वह धनुष के पास जाकर उसे उठाने की चेष्टा करे? सब राजा चुप थे। वातावरण निराशा से परिपूर्ण हो गया।

सभा की यह स्थिति देखकर द्रुपद को भी चिन्ता हुई। उसने धृष्टद्युम्न से कहा– पुत्र क्या द्रौपदी अविवाहित ही रहेगी? क्या इस सभा मे कोई ऐसा वीर नही हे, जो लक्ष्य बेध सके? तुम खडे होकर यह घोषणा कर दो कि या तो आप लोग घोषणा कर दे कि अब कोई वीर नही है और यदि कोई अपने को वीर समझता है तो वह आगे आवे।

धृष्टद्युम्न ने खडे होकर कहा–क्या कोई ऐसा वीर इस सभा मे नही हे जो हमारे प्रण को पूर्ण कर सके? अगर कोई हो तो वह आकर अपना बल क्यो नही आजमाता? नहीं तो अब इस प्रदर्शिनी की क्या आवश्यकता है? पिताजी को पता होता कि इस भारतवर्ष मे अब कोई धनुर्धारी या राधाबेधी नही हे तो वे ऐसा प्रण ही क्यो करते? भारत के महान् क्षत्रियो की यह स्थिति देखकर पूर्वज क्या सोचते होगे?

धृष्टद्युम्न की बात–वक्तृता सुनकर राजा लोग ओर भी अधिक लज्जित हुए मगर कृष्णजी उस समय मुस्करा रहे थे। उनके अनुयायी दल के राजा ओर राजकुमार शात थे। वे सोचते थे–भलाई–बुराई का जिम्मा बडे पर हैं। कृष्ण महाराज हमारे मुखिया हे। वह जो आज्ञा द वही हमारा कर्त्तव्य ह।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन की ओर देखत हुए कहा–अरे अर्जुन तुम अपनी माजूदगी म भी क्या पृथ्वी को क्षत्रियहीन कहलाओगे? क्या तुमने धृष्टद्युम्न की चुनाती नहीं सुनी? फिर चुप क्या वठ हा? उठो राधावेध करा।

कृष्ण का आदेश पाकर अर्जुन खडा हुआ। कृष्ण को प्रणाम करके वह कहने लगा—मै गर्व नही करता। आपकी आज्ञा से खडा हुआ हू। सबका अपमान मेरा अपमान और सबका आदर मेरा आदर है। इसलिए मै राधाबेध करने को तैयार हू।

अर्जुन को खडा हुआ देखकर दुपद पसन्न हुआ। वह अपने मन मे कहने लगा—भला हो— इस वीर ने दोण की पतिज्ञा पूरी करने के लिए मुझे बाधा ही था अब मैं चाहता हू कि यह पेम—पाश मे भी मुझे बाध ले।

उधर दोपदी अर्जुन को खडा देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुई। वह कहने लगी—मैं इसी नरकेसरी को चाहती हू। मेरी आत्मा इसी वीर की ओर आकर्षित है।

अर्जुन ने खडे होकर कहा—वीरगण! आप सब एकाग्रचित्त से मेरा कार्य देखे। मैं यह नही कहता कि केवल मैं ही वीर हू किन्तु मैं भी आप सब मे एक हू। मैं जो कुछ करूगा उसका यश आप सभी को है। जाति का कार्य कोई एक करता है फिर भी वह जाति का ही गिना जाता है। धृष्टद्युम्न की बात आप सबके साथ मुझे भी खटकी है। इसी कारण मैं खडा हू।

अर्जुन को खडा देख कई राजा ईर्ष्या से जलने लगे। उन्हे भय होने लगा कि कही अर्जुन विजयी हो गया तो हमे नीचा देखना पडेगा। अगर धनुष अन्त तक किसी से न उठा तब तो सभी एक—से रहेगे। किसी ने उठा लिया तो पतिष्ठा अप्रतिष्ठा का प्रश्न पैदा हो जायेगा। कई राजा कहने लगे—जान पडता है अर्जुन बडा अभिमानी है। जरासिन्धु, शिशुपाल, भगदत्त आदि के सामने यह किस गिनती मे है? जब इनकी ही न चली तो यह क्यो खडा हुआ है?

उसी समय भीम ने उठकर कहा—सब लोग शाति से देखे अर्जुन राधावेध करता है। किसी ने अशाति की तो मेरी गदा भी अशाति कर देगी। वह चुप नही रहेगी। हमने भी अभी तक अशाति नही की है।

राजाओ मे जो भले थे वे अर्जुन की प्रशसा करने लगे। कहने लगे—अर्जुन मे कितनी नमता और कितनी सभ्यता है? और सब तो द्रौपदी को पाने की इच्छा से उठे थे पर इसे यह भी कामना नही है।

अर्जुन धनुष के पास पहुचा। उसने धनुष उठा लिया और गम्भीरता [illegible] के साथ उसे चढा लिया।

राजाओ के आश्चर्य का पार नही रहा। वे सोचने लगे—इस धनुष मे क्या कोई जादू था कि औरो से नहीं उठा और अर्जुन से उठ गया? किसी ने कहा—मालूम होता है, द्रुपद ने धनुष को मत्रित करके रखा है। दूसरे ने उत्तर देते हुए कहा—ऐसा होता तो कर्ण उसे कैसे उठा सकता था? वास्तव मे अर्जुन वीर है और अपनी वीरता के प्रभाव से ही उसने धनुष उठाया है। अर्जुन की सफलता देखकर जिन्हे बुरा लग रहा था, उनमे दुर्योधन आदि कौरव भी सम्मिलित थे।

धनुष उठाकर अर्जुन ने अपने मन को साधा। असली ताकत तो मन मे ही रहती है। शारीरिक शक्ति का स्थान गौण है। मन के बिगड जाने पर शारीरिक शक्ति किसी काम नहीं आती।

मन को साधकर अर्जुन ने तेल के कडाह मे देखते हुए बाण छोड दिया। चक्रो को भेदकर बाण राधा की आख की पुतली मे जा लगा। सभा मे जय—जयकार का तुमुल नाद गूज उठा और फूल बरसने लगे। कृष्ण अर्जुन की प्रशसा करने लगे। राजा द्रुपद भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ। और द्रौपदी? शायद वही सबसे अधिक प्रसन्न थी।

18 पच–भर्तारी

चित्त को भलीभाति एकाग्र कर लेने के कारण ही अर्जुन को वह असाधारण ओर अपूर्व सफलता मिल सकी जिसके लिए उस समय के बडे–बडे पख्यात–राजा महाराजा और समाट भी तरस–तरस कर निराश हो गए थे। अन्य राजाओ का चित्त दौपदी मे था तो लक्ष्य बिधता केसे? अर्जुन का मन दौपदी मे नहीं लक्ष्य मे था। इसीलिए वह लक्ष्य बेध सका ओर उसके फलस्वरूप दौपदी भी उसे मिल गई। वास्तव मे चित्त जब कामना से युक्त होता है तब वह ठीक लक्ष्य को नही बेध सकता। यही कारण है कि शास्त्रकार कामना का परित्याग करने की शिक्षा देते हैं। इस व्यावहारिक उदाहरण से यह बात भलीभाति समझ मे आ सकती है।

लक्ष्य बेध देने के बाद भी अर्जुन को यह उत्सुकता नही थी कि दौपदी मेरे गले मे वरमाला क्यो नही डालती है? वह अपने कर्त्तव्य को पूरा कर डालने मे ही सन्तुष्ट है। उसे दौपदी के कर्त्तव्य की चिन्ता करके व्यग्र होने की क्या आवश्यकता थी?

अर्जुन ऐसे सहज भाव से अपने स्थान पर आ बैठा, जैसे कोई विशेष बात हुई ही नही है। बीच मे युधिष्ठिर थे और बगल मे दोनो ओर शेष पाण्डव थे। पाचो भाई समान दिखाई देते थे। द्रौपदी वरमाला डालने आई तो पाचो पाण्डवो को समान देखकर अचकचा गई कि किसके गले मे माला डालू? इतने मे द्रुपद और धृष्टद्युम्न कहने लगे–लक्ष्य बेधा जा चुका है। अब विलम्ब किसलिए करती हो? पिता तथा भाई की बात सुनकर द्रौपदी अर्जुन के गले मे माला डालने लगी। परन्तु माला पाचो भाइयो के गले में पड गई। यह देखकर द्रोपदी हर्षित हुई और सोचने लगी–मैं जो चाहती थी वही हो गया।

नीतिज्ञ लोग यह देखकर कहने लगे–एक कन्या के पाच पति कैसे हो सकते है?

विरोधी राजा बोले–यह कन्या कोई जादूगरनी मालूम पडती है। इसने एक ही माला पाच पुरुषो के गले मे डाल दी। यह ठीक रहा अच्छा फजीता होगा।

द्रुपद का खून सूख गया। वह चकित था। उसकी समझ मे नहीं आता था कि एक माला पाच के गले मे कैसे जा पडी? द्रुपद सोचने लगा–यह क्या गजब हुआ? अब क्या होगा?

धृष्टद्युम्न सोचने लगा–क्या मेरी बहिन के पाच पति होगे? मुझे पाच [illegible] कहना?

इतने मे आकाश से फूलो की वर्षा होने लगी ओर ध्वनि सुनाई दी—'पाच पति अच्छे वरे!'

यह ध्वनि सुनकर सारी सभा दग रह गई। इसी समय एक चारण मुनि आते हुए दिखाई दिये। आकाश से उतरने वाला प्रकाश देखकर लोग सोचने—लगे आश्चर्यो की भरमार है। आज न जाने क्या—क्या देखने को मिलेगा।

मुनि समीप आ पहुचे। राजा कहने लगे—मुनि का अचानक आगमन निष्कारण नही है। यही मुनि हमारे आश्चर्य का निवारण करेगे।

उपस्थित राजाओ ने मुनि का यथायोग्य सत्कार—सम्मान किया। मुनि ने धर्म का उपदेश दिया। धर्मोपदेश समाप्त हो जाने के पश्चात् कृष्ण और द्रुपद ने प्रश्न किया—महाराज, आप धर्म की बात कहते हैं पर एक स्त्री के पाच पति कैसे निभेगे? इस विस्मयकारक घटना का क्या कारण है? कृपा कर हमारा भ्रम मिटाइये।

मुनि ने शात और गम्भीर वाणी मे कहा—नृपतिगण कर्म की गति वडी ही विचित्र है। कर्म के प्रभाव से अनहोनी घटना भी घट जाती है और होनी अनहोनी बन जाती है। अतएव पाच पति होने की बात मे क्या अचरज हे? कर्म का ही यह फल है। सम्पूर्ण विचार जाने बिना आदमी गडबड मे पड जाता हे।

कर्म की गति के विषय मे भतृहरि कहते है—

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासकटे
रुद्रो येन कपालपाणि पुटके भिक्षाटन सेवते
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नम कर्मणे

कर्म ने ब्रह्मा को कुम्हार बनाया जिससे उसे हडिया की तरह सृष्टि घडनी पडी। स्वर्ग घडने मे तो उसे प्रसन्नता हुई होगी पर नरक घडने के समय कितनी ग्लानि हुई होगी? कर्म की मर्यादा बताने के लिए ही विष्णु को दस अवतार लेन पडे। जिन्हे लोग शकर मानते हैं वे मुण्डमाल पहनकर ओर नर—कपाल हाथ मे लेकर भीख मागते हैं। सूर्य को रात—दिन भ्रमण करना पडता ह। यह सव कर्म की विचित्रता ह।

प्रश्न हाता है—आज कोई स्त्री पाच पति करके अपने काम का कर्म की गति क मत्थ मढ द ता क्या ठीक होगा? इसका उतर यह हे कि रारार

की रीति ऐसे चरित्र से नही चलती किन्तु धर्म की बतलाई हुई मर्यादा से चलती है। चोरी मे जाने वाला माल कर्म के उदय से ही जाता हे परन्तु सरकार ऐसा कह दे तो सरकार की मर्यादा भग होती है। सरकार की मर्यादा अलग है और कर्म की मर्यादा अलग है। चोरी होने मे हम तो कर्म को ही प्रधान कारण कहेगे लेकिन सरकार ऐसा नही कहेगी। तात्पर्य यह है कि शास्त्रो मे धर्म की जो मर्यादा बतलाई है उसका उल्लघन करके चरित्र का सहारा लेकर मर्यादा के विरुद्ध कार्य करना ठीक नही है। ऐसा करने से धर्मशास्त्र व्यर्थ हो जाएगे। कर्म का हिसाब कोई समर्थ ज्ञानी ही बता सकते है। कर्म का आश्रय लेकर सब ऐसा करने लगे तो मर्यादा भग हो जायेगी। मतलब यह है कि मर्यादित को मर्यादा का पालन करना ही चाहिए।

चारण मुनि कहने लगे–द्रौपदी ने पूर्व भव मे तप करके यह फल चाहा था कि मेरे पाच पति हो। पूर्व तप का फल मिलना और पाच पति होना द्रौपदी के लिए कर्म रूप दोष है। पाच पति वाली बात को धर्म मे कोई नही गिनता।

विचारशील आस्तिक के लिए यह बात ठीक हो सकती है परन्तु कर्म का उदाहरण लेकर अपना कर्म बिगाडना उचित नहीं है। ऐसा करने से बिगाड होगा। पूर बहती जमुना नदी को कृष्ण ही पार कर सकते हैं। दूसरा उनकी नकल करने जाएगा तो डूब मरेगा।

कुछ यूरोपीय लोग भारत की सभ्यता का मर्म न समझते हुए इस पकार की घटनाओ को आगे करके कहते हैं–भारतीय सभ्यता भी कोई सभ्यता है जहा एक स्त्री के पाच पति माने जाते हैं और फिर भी वह सती कहलाती है। यह तो निरा जगलीपन है। बल्कि जगली लोगो मे भी ऐसा नही होता। हा कई जगली जाति मे यह प्रथा अवश्य है कि दो–चार भाई हो तो उनमे कोई एक पत्नी रखी जाती है अन्यथा नही। यही जगलीपन उस समय भारत मे भी था।

केवल यूरोपीय नही वरन भारत मे भी द्रौपदी के पाच पति होने की बात कई लोग स्वीकार नही करते। वे मानते हैं कि द्रौपदी अकेले अर्जुन की ही पत्नी थी। पाचो भाइयो की पत्नी होने की बात पीछे के भ्रष्ट लोगो ने प्रसिद्ध कर दी है। लेकिन प्राचीन साहित्य मे और शास्त्र मे स्पष्ट लिखा है कि द्रौपदी के पाच पति थे फिर भी वह सती थी।

चारण मुनि ने कहा—द्रौपदी ने सुकुमारिका के भव मे ऐसा कठिन तप किया था वैसा प्रत्येक स्त्री नही कर सकती। तप करके उसने अपने तप के फल की कामना की। उसके शरीर मे बीमारी थी। इस कारण उसे कोई पुरुष नही चाहता था। तप करते हुए उसने एक वेश्या को देखा। वेश्या अपने पाच जार—पतियो द्वारा आदर पा रही थी। यह देख कर सुकुमारिका के मन मे आया कि मैं भी पाच पतियो द्वारा आदर पाऊ।

शास्त्र मे कामना पूर्वक किये गये तप की प्रशसा नहीं की गई है पर ऐसा भी नही होता कि जो गिर गया, वह फिर उठ ही न सके। गिरा हुआ भी उठता है। इसी प्रकार पूर्व कर्म के कारण द्रौपदी को पाच पति तो मिले परन्तु पाच पति पाकर भी वह अपनी करनी के प्रताप से सती कहलाई।

लोकापवाद मिटाना महापुरुषो का काम है। राम जानते थे कि सीता निर्दोष है। फिर भी लोकापवाद मिटाने के लिए सीता की अग्नि—परीक्षा कराई गई। इसी प्रकार पाचाली के विषय मे भी चारण मुनि ने साक्षी दी।

19 द्रौपदी का विवाह और विदाई

शुभ मुहूर्त मे द्रौपदी का विवाह हुआ। द्रुपद और कृष्ण ने पाण्डवो को खूब सम्पत्ति दहेज मे दी। द्रौपदी अन्य रानियो के साथ अपनी सास कुन्ती के पास गई।

द्रौपदी के परिवार वालो को और खास तौर पर उसकी माता को विदाई के समय कितना दु ख हुआ होगा यह बात भुक्तभोगी गृहस्थ ही समझ सकते हैं। लडकी की विदाई का करुण दृश्य देखा नही जाता। कन्या का वियोग हृदय को हिला देता हे। साधारण घरो मे भी कन्या की विदाई के समय कोलाहल मच जाता है तो राजकुमारी द्रौपदी की विदाई का किन शब्दो मे वर्णन किया जा सकता है।

द्रौपदी की माता ने द्रौपदी को दिलासा देते हुए कहा—बेटी, जेसे मैं अपने पिता का घर छोडकर यहा आई हू, उसी प्रकार तू भी यह घर छोडकर ससुराल जा रही है। यह तो लोक की परम्परा ही है। इसका उल्लघन नही किया जा सकता। तेरी जैसी पुत्री पाकर मैं निहाल हुई हू, अब अपने कुल की लाज रखना तेरे हाथ की बात है। तूने मेरे स्तनो का दूध पिया है इसलिए ऐसा कोई काम मत करना जिससे मेरा मुह काला हो। अपने जीवन मे कोई भी अपवाद न लगने देना।

अच्छी माता ऐसी ही शिक्षा देगी। वह बतलाएगी कि तुझे पति, सास ससुर ओर नौकर—चाकरो के साथ केसा शिष्टतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। कोई समझदार माता अपनी लडकी को यह नहीं समझाएगी कि अब तुम रानी हो सो मनमानी करना।

खेद है कि आजकल की अशिक्षित माताए अपनी पुत्रियो को उलटा पाठ पढाती हुई कहती हैं—देख बेटी हमने तुझे बेचा नही। तेरे बदले मे कुछ लिया भी नही है। इसलिए सास आदि से बने तो ठीक नही तो जामाता को अलग दुकान करा देगे। ऐसी शिक्षा गीतो द्वारा भी दी जाती है। प्रारम्भ मे ही इस पकार के बुरे सस्कार डालने के कारण लडकी का भविष्य बुरी तरह बिगड जाता है।

द्रौपदी की माता ने उसे सीख दी थी कि—बेटी अपने घर की आग बाहर मत निकालना। इसी तरह बाहर की आग घर मे मत लाना। जो देने लायक हो उसे देना जो न देने योग्य हो उसे न देना। इसी प्रकार दोनो को दान तथा घर की अग्नि आदि से देवो की पूजा करना।

ये बाते आलकारिक ढग से कही गई हैं। घर की आग बाहर मत निकालना और बाहर की आग घर मे मत लाना इस कथन का अर्थ यह हे कि कदाचित् घर मे क्लेश हो जाय तो दूसरो के आगे इसका रोना मत रोना। उसे बाहर प्रकट नही करना बल्कि घर मे ही बुझा देना। इसी प्रकार बाहर की लडाई घर मे न आने देना। दूसरो की देखा–देखी अपने घर मे कोई बुराई न आने देना।

आज भारतीय बाहर की–यूरोप की आग अपने घरो मे ले आये हैं। यूरोप की अनेक बुराइया आज भारत मे घर कर रही हैं। इसी कारण भारतीय जीवन मलिन और दु खमय बन गया है। भारत की उज्ज्वल सस्कृति नष्ट हो रही है और उसका स्थान एक ऐसी सस्कृति ले रही है, जिसके गर्भ मे घोर अशाति, घोर असतोष, घोर नास्तिकता और विनाश भरा हुआ है। द्रौपदी को मिली हुई शिक्षा भारतीयो के लिए इस समय बहुत उपयोगी साबित हो सकती हे।

'देने योग्य देना' का अर्थ यह है कि व्यवहार मे किसी को उधार देना ही पडता हे। ऐसा उधार देने का समय आने पर या किसी और प्रकार से देने का समय आने पर जो देने योग्य हो उसे अवश्य देना। किन्तु उसे देना जो उधार लेकर भाग न जाय और न लडने पर ही आमादा हो जाय।

'न देने योग्य को न देना' इसका आशय यह है कि जो लेकर देना ही न सीखा हो उसे मत देना। यह हमारी वस्तु वापस लोटा देगा या नही यह बात सोच–विचार कर ही किसी को देना। और जो दी हुई वस्तु का दुरुपयोग करता हो उसे भी मत देना। जेसे–बालक ने चाकू मागा ओर उसे दे दिया तो वह अपना हाथ काट लेगा। रोष मे आकर किसी ने अफीम मागी आर उसे दे दी तो वह आत्महत्या कर लेगा। इसलिए देने से पहले सुपात्र–कुपात्र का ध्यान रखना। न देने से तो ऐसे को थोडा ही दु ख होगा मगर दे देने से घोर अनर्थ हो सकता हे ओर फजीता अलग होता हे।

कुछ लोगो की ऐसी आदत होती हे कि वस्तु मोजूद रहते ही वे झूठ बोलत ह–कह दत हैं मेर पास नही हे। इस प्रकार झूठ बोलकर कुपात्र बनने की क्या आवश्यकता हे? देन का मन न हो तो सच–सच क्यो नही कह दत कि हम दना नही चाहत। अपनी वस्तु के लिए जा कुपात्र ह उस कुपात्र न कहकर स्वय झूठ बालन क कारण कुपात्र बनना अच्छी बात नही हे। दा याग्य का न दना आर अयाग्य का दना मूर्खता ह।

इससे आगे कहा है–योग्य और अयोग्य दोनो को देना। इसका अर्थ
ह है कि कोई भूखा आदमी रोटी पाने की आशा से तुम्हारे द्वार पर आवे तो
उस समय योग्य–अयोग्य का विचार न करना। उसे रोटी दे देना ही धर्म है।
करुणा के समय कुपात्र–सुपात्र का विचार मत करना। करुणा करके सभी
को देना नीति मे कहा है–

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृत दत्वा, पुण्यमादाय गच्छति।।

जिसके घर से अतिथि अभ्यागत निराश होकर लौट जाता है वह
पाप का भागी होता है।

ग्रामो मे कई–एक भद्र लोग ऐसे देखे गये हैं कि उनके घर से रोटी
न ली जाय तो वे रोने लगते हैं। उन्हे यह विचार तो होता नहीं कि साधु सदोष
आहार नही लेते–निर्दोष ही लेते हैं। वे केवल यही जानते हैं कि साधु हमारे
घर आये और खाली हाथ लौट गये। यही विचार कर वे रोने लगते हैं। जो
अतिथि कष्ट का मारा आपके द्वार पर आया है वह दया पाने की आशा से
आया है। उसे निराश कर देना उचित नही है। अगर आप निराश करते हैं तो
नीतिकार के कथनानुसार उसका पाप आपने ले लिया है ओर आपका पुण्य
उसने ले लिया है।

पुण्य–पाप का लेनदेन कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यह है–वह
आपको पुण्यवान समझकर आपके पास आया था। आपने उसे गालिया
सुनाई पीट दिया या कटुक वचन सुना दिये। उसने दीनता एव नम्रता के साथ
आपसे याचना की और आपने उसे झिडक दिया। तो वह अतिथि अपनी नम्रता
से पुण्य लेकर जाता है और आपको पापी बना जाता है।

द्रौपदी की माता ने उसे इस प्रकार की शिक्षा दी। वहा जो दूसरी
स्त्रिया मोजूद थीं वे समझती थीं कि महारानी हम सभी को शिक्षा दे रही हैं।
द्रौपदी की माता तथा अन्य सभी कुटुम्बीजनो की आखे आसुओ से भरी हुई
थी।

जब कन्या पीहर से ससुराल जाती है तो पीहर को देखकर वह
सोचती है–मै इस घर के आगन मे खेली हू और आज यही घर छूट रहा है।
अदृष्ट मुझे ओर कही ले जा रहा है। जीवन मे जिन्हे अपना माना था वे पराये
बनते जा रहे है ओर जिन्हे देखा भी नही जाना नही उन्हे आत्मीय बनाना
होगा। स्त्रीजीवन की यह कैसी विचित्रता है? मानो एक ही जीवन मे स्त्री के
दो एक दूसरे से भिन्न जीवन हो जाते है। क्षण भर मे ममता' का क्षेत्र बदल
जाता है।

तत्त्व की दृष्टि से देखा जाय तो जो बात स्त्री के जीवन मे घटित होती है वह मनुष्यमात्र के जीवन मे यहा तक कि जीवमात्र के जीवन मे घटित होती है। अन्तर है तो केवल यही कि स्त्री–जीवन की परिवर्त्तन–घटना आखो के सामने होती है जबकि दूसरो की आखो से ओझल होती है। इतना अन्तर होने पर भी असली चीज दोनो जगह समान है। इसे कोई इन्कार नही कर सकता। आज जिन्हे तुम अपना मान रहे हो वे क्या अनादि काल से तुम्हारे हैं और अनन्त काल तक तुम्हारे रहेगे? ठीक ही कहा है–

पहले था मैं कौन कहा से आज यहा आया हू?
किस–किसका सबध अनोखा तज कर क्या लाया हूं?
जननी–जनक अन्य हैं पाये, इस जीवन की वेला
पुत्र अन्य हैं पौत्र अन्य हैं अन्य गुरु हैं चेला।
चिरकालीन सगिनी पहले, मैंने जिसे बनाया,
कुछ ही क्षण मे छोड उसे अब आज किसे अपनाया?
अन्य धाम, धन, धरा जीव ने इस जीवन मे पाया,
आगामी भव मे पाएगे, अन्य किसी की माया।
पूर्वभवो मे जिस काया को बडे यत्न से पाला,
जिसकी शोभा बढा रही थी मणिया–मुक्तामाला।
वह कण–कण बन भूमण्डल मे कही समाई भाई
इसी तरह मिटने वाली वह नूतन काया पाई।

भक्तजन कहते हें–हम भी कन्या हें। ससार हमारा ससुराल है और ईश्वर का घर पीहर हे। कर्म की प्रेरणा से आत्मा को ससार मे निवास करना पडता है। जैसे कन्या ससुराल मे आकर भी अपने पीहर को नही भूलती उसी प्रकार ससार मे रहकर भी भगवान् को भूलना उचित नही हे।

कुन्ती माद्री ओर गाधारी को यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि पुत्रवधू द्रापदी आ रही हे। उन सवको विदित हो चुका हे कि द्रोपदी कोई साधारण वधू नही हे। स्वयवर मे उसकी चेष्टाए देखकर उन्होने उसका महत्त्व जान लिया हे। इस कारण पुत्रवधू के आगमन को जान कर उनकी प्रसन्नता का पार न रहा। दूसरी आर द्रोपदी की माता के दिल की वेदना को कोन जान सकता ह? सर्वज्ञ उस वदना का जान सकते हे पर अनुभव वे नही करते। अनुभव ता वही स्त्री कर सकती ह जा स्वय माता हा ओर जिसन अपनी प्राण–प्यारी कन्या का विदाई दी हा। द्रापदी की माता सावन लगी–जिराक

लिए भारत के बडे-बडे राजा दौडकर आये थे वही आज जा रही है। यह घर सूना हो रहा है ओर साथ ही मेरा हृदय भी।

द्रौपदी तथा उसकी माता आदि के आने पर कुन्ती आदि खडी हो गई। सबका यथायोग्य आदर-सत्कार किया भेट की उचित आसन दिया। तब कुन्ती ने द्रौपदी की माता से कहा-महारानीजी आपने अपनी कन्यारूपी लक्ष्मी से हमे खरीद लिया है। आपकी उदारता की कितनी सराहना की जाय सो कन्या और धन-सम्पति लेकर आप स्वय देने के लिए पधारी हैं। आपने हमे बहुत सम्मानित किया है, बहुत उपकृत किया हे।

द्रौपदी की माता ने कहा-समधिनजी कन्या का दान करना कोई एहसान की बात नही। यह तो समाज का अटल विधान है। एहसान तो आपका है जो आपने इसे स्वीकार किया है। देना तो मेरे लिए अनिवार्य था मगर लेना आपके लिए अनिवार्य नहीं था। फिर भी आपने अनुग्रह करके मेरी कन्या को ग्रहण कर लिया यह मेरे ऊपर आपका उपकार है।

कुन्ती-आप बहुत गुणवती हैं, इसी से आप ऐसा कहती हें। नही तो द्रौपदी जैसी लक्ष्मी को पाने के लिए कौन लालायित नही होता?

द्रौपदी की माता ने द्रौपदी की ओर मुह फेरकर और गहरी सास लेकर कहा-बिटिया। देख तू बडभागिनी है, तुझे ऐसी सास मिली हे।

फिर वह कुन्ती से कहने लगी-आप हमारी बडाई न करे। आपने हमे जो दिया है वह कम नही है। आपने मेरी लडकी को सुहाग दिया है। स्वयवर-मण्डप मे हमारी लाज रख ली है। आप अपने विनीत कुमारो के साथ हमारे यहा पधारी। यह सब आपकी बहुत कृपा है। आपके साथ सबध होने से अब देव भी हमे छल नहीं सकते, जीत नहीं सकते। आपका कौरव-वश धन्य है जिसमे ऐसे-ऐसे वीररत्न उत्पन्न हुए हैं।

इसके बाद द्रोपदी की माता आदि लौटने को तैयार हुई। फिर नेत्रो के मेघ बरसने लगे। सबके हृदय गद्गद् हो गए। अन्त मे द्रौपदी सबको प्रणाम करके अपनी सास के पास खडी हो गई।

कुन्ती ने द्रौपदी को आशीर्वाद देते हुए कहा-हे पुत्री। हे कुलवधू। तेरा सुहाग अचल रहे। तेरी गोद भरी रहे। तू पाण्डवो के घर वेसी है जैसी हरि के यहा लक्ष्मी इन्द्र के यहा इन्द्रानी और चन्द्र के यहा रोहिणी। तुम्हारे पति सार्वभौम शक्ति के विजेता हो और तुम सदैव उनकी सहायिका रहो। हे

वधू! तू मेरे कुल की समस्त सम्पत्ति की स्वामिनी है, परन्तु मेरे घर जो मुनि या दीन–दु खी या भिखारी आवे तो उनके यथायोग्य सत्कार मे कमी मत रखना पुण्य की रक्षा करना और उसे सम्पदा की तरह बढाना। मेरे घर किसी अतिथि का अनादर न हो। आज से हम तेरे भरोसे हैं। तू घर के सब छोटे–बडो का आशीर्वाद लेना। हे द्रौपदी! ऐसा समय आवे कि तेरे पुत्र हो और वधू तेरे जैसी गुणवती हो। जिस प्रकार आज मैं तुझे आशीर्वाद दे रही हू, उसी प्रकार तू भी उन्हे आशीर्वाद देना।

20 उपसहार

धर्म सर्वव्यापी है और ईश-भजन धर्म है। ईश्वर का नाम जप सदाकाल जपता नही रह सकता परन्तु काम के साथ धर्म मिला है तो वह दूर न होगा। रोटी सदा खाई जाती है परन्तु आठो पहर नहीं खाई जाती रहती। एक-दो घन्टे तक खाई हुई रोटी आठ पहर काम देती है। इसी प्रकार मन लगाकर थोडी देर भी भजन करके प्राणीमात्र को आत्मतुल्य देखो तो थोडी देर का भजन भी सब समय काम आ सकता है। ससार का कोई भी व्यवहार धर्म से अछूता नहीं रहना चाहिए। जिस घर मे जब तक धर्म रहा तब तक वे घर भी रहे अन्यथा बडे-बडे घर मिट्टी मे मिल गये।

धर्म की महिमा को पहचानना ही धर्मकथा का सार-ग्रहण है। पाण्डवो के प्रत्येक व्यवहार मे धर्म की आभा दिखाई देती है। यही कारण है कि उन्हे कीर्ति के साथ द्रौपदी भी मिली और अन्त मे युधिष्ठिर तथा अर्जुन आदि मुक्ति के भी अधिकारी हुए।

आपके व्यवहार मे धर्म बस जायेगा तो अधर्म की ओर आपकी प्रवृति भी नहीं होगी। यह स्थिति प्राप्त कर लेना ही मनुष्य-जीवन का कर्त्तव्य होना चाहिए। वे भाग्यशाली हैं जो निरन्तर धर्म की शीतल छाया मे रहकर शाति का अनुभव करते हैं। आपको सद्बुद्धि प्राप्त हो और आप भी शाति का अनुपम रसास्वादन करे।

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर
– एक परिचय –

स्थानकवासी जेन परम्परा मे आचार्य श्री जवाहरलाल ... सा एक महान् क्रातिकारी सत हुए है। आषाढ शुक्ला ... भीनासर मे सेठ हमीरमलजी बाठिया स्थानकवासी जैन ... उन्होने सथारापूर्वक अपनी देह का त्याग किया। उनकी ... यात्रा के बाद चतुर्विध सघ की एक श्रद्धाजलि सभा आयोजित ... जिसमे उनके अनन्य भक्त भीनासर के सेठ श्री चम्पालाल जी ... ने उनकी स्मृति मे भीनासर मे ज्ञान–दर्शन चारित्र की आराधना ... एक जीवन्त स्मारक बनाने की अपील की। तदन्तर दिनाक 29.4.19.. को श्री जवाहर विद्यापीठ के रूप मे इस स्मारक ने मूर्त रूप लिया।

शिक्षा–ज्ञान एव सेवा की त्रिवेणी प्रवाहित करते हुए सस्था ने अपने छह दशक पूर्ण कर लिए हैं। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा के व्याख्यानो से सकलित, सम्पादित ग्रथो को 'श्री जवाहर किरणावली के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। वर्तमान मे इसकी 32 किरणो का पकाशन सस्था द्वारा किया जा रहा है इसमे गुफित आचार्यश्री की वाणी को जन–जन तक पहुचाने का यह कीर्तिमानीय कार्य है। आज गौरवन्वित है गगाशहर–भीनासर की पुण्यभूमि जिसे दादा गुरु का धाम बनने का सुअवसर मिला और ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा की कालजयी वाणी जन–जन तक पहुच सकी।

सस्था द्वारा एक पुस्तकालय का सचालन किया जाता हे जिसमे लगभग 5000 पुस्तके एव लगभग 400 हस्तलिखित ग्रथ है। इसी से सम्बद्ध वाचनालय मे दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक–कुल 30 पत्र–पत्रिकाये उपलब्ध करवाई जाती है। प्रतिदिन करीब 50–60 पाठक इससे लाभान्वित होते हैं। ज्ञान–प्रसार के क्षेत्र मे पुस्तकालय वाचनालय की सेवा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और क्षेत्र मे अद्वितीय हे।

महिलाओ को स्वावलम्बी बनाने हेतु सस्था द्वारा ि
बुनाई, कढाई प्रशिक्षण केन्द्र का सचालन किया जाता है, जिसं
अध्यापिकाओ द्वारा महिलाओ व छात्राओ को सिलाई, बुनाई, क
पेन्टिग कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है। इससे वे अपने गृह
कार्यो मे योगदान दे सकती हैं और आवश्यकता पडने पर इर
के सहारे जीवन मे स्वावलम्बी भी बन सकती हैं।

सस्था के सस्थापक स्वर्गीय सेठ चम्पालाल जी बाठि
जन्म जयन्ती पर प्रत्येक वर्ष उनकी स्मृति मे एक व्याख्यानमा
आयोजन किया जाता है जिसमे उच्च कोटि के विद्वानो को ब्
प्रत्येक वर्ष अलग–अलग धार्मिक, सामाजिक विषयो पर
आयोजित किए जाते है।

उपरोक्त के अलावा प्रदीप कुमार जी रामपुरिया स्मृति पु
के अन्तर्गत भी प्रतिवर्ष स्नातकस्तरीय कला, विज्ञान एव व
सकाय मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त
वाले विद्यार्थियो को नकद राशि, प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह
सम्मानित किया जाता है एव स्नातकोत्तर शिक्षा मे बीकानेर विश्ववि
मे सर्वाधिक अक प्राप्त करने वाले एक विद्यार्थी को विशेष यं
पुरस्कार के रूप मे प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्
किया जाता है।

विद्यापीठ द्वारा ठण्डे मीठे जल की प्याऊ का सचालन
जाता है। जनसाधारण के लिए इसकी उपयोगिता स्वय–सि
इस प्रकार अपने बहुआयामी कार्यो से श्री जवाहर विद्यापीठ नि
प्रगति–पथ पर अग्रसर है।